विचार
↓
चिंतन
↓
शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed
Research Journal of Humanities

वर्ष : 09 | अंक : 37 | जुलाई - सितम्बर, 2024

Year - 09 | Volume - 37 | July - September, 2024

प्रधान-संपादक

डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ० सुधीर कुमार तिवारी

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 09 | अंक - 37 | जुलाई-सितम्बर, 2024

Year - 09 | **Volume - 37** | **July-September, 2024**

प्रधान-संपादक

डॉ. सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ. योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**

संपादकीय / प्रकाशकीय पता :–

सृजनश्री न्यास,

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,

उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	500	1800	16,000
संस्थागत	600	2000	18,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो. गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. माधवेन्द्र पाण्डेय,** पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय।
- **प्रो. अरविंद कुमार झा,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **प्रो. सच्चिदानंद मिश्र,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- **प्रो. दयाशंकर त्रिपाठी,** बी–17, नीलकंठ बंग्लोज, वल्लभ विद्यानगर, आनंद।
- **प्रो. एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **प्रो. सुमन जैन,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
- **प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल,** इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
- **प्रो. अनूप शुक्ल,** रामजानकीपुरम्, सिविल लाइन, फतेहपुर।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** लाल बहाकुर शास्त्री पी. जी. कॉलेज, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, चंदौली (उ. प्र.)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. ऋषभ कुमार मिश्र**, डॉ. बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. योगेश कुमार करसनभाई चाडसणिया,** उच्च शिक्षा विभाग, गुजरात सरकार।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** चंद्रधारी मिथिला कॉलेज, दरभंगा (बिहार)।
- **डॉ. हरीश पाण्डेय,** महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदू विश्वविद्यालय, वर्धा–महाराष्ट्र।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी।
- **डॉ. आनंद कुमार,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर, (उ. प्र.)।
- **श्रीमती आकांक्षा अग्निहोत्री,** सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, आनंद–गुजरात।
- **डॉ. वर्षा तिवारी,** पं. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल–(म. प्र.)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जवाबदेही नहीं होगी। किसी भी प्रकार के विवाद–संवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में ही होगा।

संपादकीय

इधर कुछ दिनों से भारतीय ज्ञानधारा की चर्चा खूब हो रही है या कहूँ उड़ाने भरी जा रही हैं, और ये जो उड़ाने हैं, इसको मजबूत बनायेगी या कमजोर– यह आने वाला समय निर्धारित करेगा, किन्तु यह जान लेना आवश्यक है कि भारतीय चिंतनधारा का विकास अपने अनुभवों एवं स्मृतियों के आधार पर धीरे–धीरे हुआ है। इस विकास प्रक्रिया में वह अपने उद्देश्य को पूर्ण रूप से समाज के हित में केंद्रित करते हुए– कार्य करती रही है। इसका मानना भी रहा कि यदि हमारे ज्ञान, विज्ञान और जीवन का महत्त्व समाज–हित से नहीं जुड़ा है, तो वह निरर्थक है। इस आधार पर भारतीय चिंतनधारा की प्रक्रिया अत्यंत विस्तृत और गहन दिखाई देती है। इसी कारण दुनिया के हर देश या व्यक्ति– भारतीय ज्ञानधारा के सामने झुकता नजर आया है। हमेशा पूरी दुनिया इससे सीखती रही है। भारतीय चिंतनधारा के जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य यह बताया कि समाज और प्राणी मात्र के हित हेतु कार्य करना ही– मानव जीवन का सबसे बड़ा धर्म है। इसी आधार पर उसने जीवन को बेहतर बनाने के लिय सरल से सरल तरीकों की खोज की।

भारतीय चिंतनधारा को आज के समय में समझना कई बार कठिन है, क्योंकि लोग इसे अपने व्यक्तिगत अनुभवों और वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर समझने की कोशिश करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि आज का समाज भारतीय चिंतनधारा को महत्व देता दिखता तो है, लेकिन उसकी गहराई को समझने में पूरी तरह से असमर्थ है। यह समस्या मुख्य रूप से औपनिवेशिक प्रभाव के कारण ही उत्पन्न हुई है। हमारी वर्तमान सोच और नगरीय व्यवस्था– औपनिवेशिक समाज की देन है, जो पश्चिम से आयातित उपभोक्तावाद और पूंजीवादी दृष्टिकोण पर आधारित है।

ऐसे में भारतीय चिंतनधारा को सही तरीके से समझना कठिन हो जाता है। भारतीय जीवन के वे मनीषी, जिन्होंने अपने जीवन को समाज–हित के लिए पूर्णतः समर्पित कर दिया, उनकी सोच और त्याग आज के समाज में महत्त्वहीन से दिखते हैं। आज तुलसीदास की वैचारकिता को कौन समझता है, उसे धर्म विशेष के केन्द्र में रखकर ही देखते हैं। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन– लोकहित के लिए समर्पित करते हुए लिखा, "स्वातः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा", जिसका अभिप्राय है कि 'मेरा सुख वही है, जिसमें सबका हित हो।' यह विचार मनुष्य को मनुष्यता के सच्चे स्परूप से अवगत कराता है। ऐसे ही, हमारे यहाँ जितने भी मनीषी और विद्वान हुए हैं, उन्होंने कभी भी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए जीवन यापन नहीं किया।...

दुर्भाग्यवश, लगभग 2000 वर्षों की गुलामी के कारण भारत– अपने मूल संस्कारों, परंपराओं, नैतिकताओं और धारणाओं से दूर हो गया।... अब, जब हम भारतीय चिंतनधारा को समझने की कोशिश करते हैं, तो उसे अक्सर गलत तरीके से व्याख्यायित या संदर्भित कर देते हैं। जैसे कि– हमारे यहाँ ये था, वो था, ये ले गये, वो ले गये, इसने बर्बाद कर दिया, उसने बर्बाद कर दिया आदि आदि...– ये सभी बातें उसे कमजोर करती है।...

भारतीय चिंतनधारा की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि यह प्राणी–मात्र के कल्याण की बात करती है। इसे समझने के लिए आवश्यक है कि हम व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर समाज और मानवता के हित में सोचें, समझें, जानें और करें। आज औपनिवेशिक शिक्षा के प्रभाव के कारण अधिकांश लोग भारतीय चिंतनधारा को सही रूप में समझने में असमर्थ हैं। वे भारतीय इसको अपनी दृष्टि या अनुभव के आधार पर ही देखते हैं, न ही सुनते हैं या समझते भी हैं। यह विडंबना है कि जब किसी को छोटा दिखाना होता है, तो उसे जाति, धर्म, लिंग, या स्थान आदि के आधार पर बाँकर देखते हैं। "तुम बाहर के हो," "तुम इस जाति के हो," या "तुम इस धर्म के हो" जैसे भेदभाव के आधार पर व्यक्ति बंटते जा रहे हैं। इस दृष्टिकोण से व्यक्ति का अस्तित्व सीमित हो जाता है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि ज्ञान की सभी विधाओं का अपना–अपना वैचारिक क्षेत्र होता है। इसी वैचारिक क्षेत्र के माध्यम से व्यक्ति दुनिया को देखता, सुनता और समझता है। अगर हम भारतीय चिंतनधारा के आधार पर वर्तमान समाज को देखें, तो उसमें कुछ कमियाँ अवश्य दिखेंगी, किन्तु यदि आज के समय के दृष्टिकोण के आधार पर भारतीय चिंतनधारा को देखेंगे, तो हजार कमियाँ निकाल देगें। यह विडंबना है कि भारतीय चिंतनधारा– जो आज भी चरम ऊँचाई पर है, औपनिवेशिक मानसिकता के प्रभाव के चलते लगातार प्रश्नांकित होती है।

भारतीय ज्ञान– ज्ञान, मूल्य, और आचरण के आधार पर संचालित होता है। किन्तु आज की शिक्षा केवल जानकारी और लाभ कमाने तक सीमित हो गई है। वह सिर्फ जानकारी को महत्व देती है, जिसमें दूर–दूर तक न तो ज्ञान है, न मूल्य हैं और न ही आचरण।

तीसरी बड़ी विडंबना यह है कि जब हम भारतीय धर्म की बात करते हैं, तो यह धर्म– विज्ञान, दर्शन, और ज्ञान का विरोधी कभी नहीं रहा, बल्कि इसने विज्ञान, दर्शन, और ज्ञान को नई ऊंचाइयां प्रदान की हैं। जब हम भक्ति काल की चिंतनयात्रा पर विचार करते हैं, तो वहाँ दार्शनिक ऊंचाइयों को वखूबी देखते हैं। धर्म और विज्ञान में कोई विरोधाभास नहीं दिखता– यही भारतीय धर्म की विशिष्टता है।

आज की औपनिवेशिक मानसिकता ने मनुष्य में हजारों कमियाँ पैदा कर दी हैं। इसी मानसिकता के तहत मनुष्य को भूगोल और सांस्कृतिक परिवेश के आधार पर देखा जाने लगा है। भारत की जो सांस्कृतिक एकता थी, वह अब राजनीतिक इकाइयों में विभाजित हो गई है। लगातार समाज को बांटने की प्रक्रिया जारी है। भारतीय चिंतन, जो सांस्कृतिक–एकता की बात करती थी, अब जाति, धर्म, और क्षेत्रीय विभाजनों में बंट गई है। यह विभाजन मनुष्यता के लिए बहुत बड़ा बाधक है।

संक्षेप में, भारतीय चिंतनधारा को समझने के लिए हमें प्राणी–मात्र के हित की अवधारणा– से सोचना होगा। जब हम इसी हित के लिए सोचेंगे, तभी भारतीय चिंतन को सही अर्थों में समझने की पहल कर सकेंगे। यह धारा इतनी विशाल और गहन है कि इसकी समाप्ति की कोई संभावना नहीं है। यह एक ऐसी वैचारिक वनस्थली है, जिसमें प्रवेश करने पर व्यक्ति अपने अनुभवों और स्मृतियों के आधार पर ज्ञानी बनता है और समर्पण के साथ इसे आत्मसात करते हुए नित–नवीन अनुसंधान करता रहता है।

उपरोक्त पत्रिका का यह अंक कुल 23 शीर्षकों में प्रकाशित हो रहा है, जिसमें हिंदी–भाषा के 17 (सत्रह, पुस्तक समीक्षा सहित), संस्कृत–भाषा के– 2 (दो), और अंग्रेजी–भाषा के 4 (चार) शोध–पत्र शामिल हैं। सभी शोध–पत्र या लेख अपने–अपने क्षेत्र के विद्वानों की महनीय अभिव्यक्तियाँ हैं। इस लेखों से हमारे पाठक निश्चित रूप से लाभांवित हुए हैं।

इस अंक के संपादन हेतु 'आलोचन–दृष्टि परिवार' को सादर आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग और सहकार से ही– पत्रिका का यह अंक अपना कलेवर ग्रहण कर रहा है। साथ ही, पाठकों–लेखकों के स्नेह एवं लगाव के प्रति भी, कृतज्ञ हूँ। शेष....

30 सितम्बर, 2024।

विषयानुक्रमणिका

- संपादकीय iii-iv
- विषयानुक्रमणिका v-vi

1. विजयदेवनारायण साही 1-10
श्रीप्रकाश मिश्र
2. हिन्दी आदिवासी कविता के संवेदनात्मक आयाम 11-14
डॉ. योगेश कुमार तिवारी
3. चन्द्रकिशोर जायसवाल की कहानियों में स्वैर कल्पना 15-21
धनेश दत्त पाण्डेय
4. भारतीय चिन्तन में नारी का स्वरूप 22-24
आकांक्षा अग्निहोती
5. तिरुवल्लुवर के कुरल में निहित जीवन दर्शन 25-26
सूरज कुमार
6. बाल सर्जनात्मक लेखन की विषयवस्तु 27-30
डॉ. सुनील कुमार मानस
7. भारत में समावेशी शिक्षा : वैश्विक नीतियों के परिप्रेक्ष्य में 31-34
डॉ. सुधीर कुमार तिवारी
8. श्रीरामचरितमानस : मनोभाषिक महाकाव्य 35-45
प्रो. गंगाधर वानोडे एवं दीपेन्द्र कुमार
9. स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में अस्तित्व एवं अधिकार के प्रति सचेत नारी 46-50
कुमारी मनीषा
10. रेणु एवं ताराशंकर के आंचलिक उपन्यासों में समरूपता 51-53
विजयता दुबे
11. अवधी-लोकभाषा का साहित्य 54-56
सुशील कुमार राम
12. नागार्जुन की कविता में व्यंग्य 57-60
बबिता कुमारी
13. ममता कालिया की कहानी 'बोलनेवाली औरत' में स्त्री संघर्ष के निहितार्थ 61-63
डॉ. वसीम आलम

14.	उपभोक्तावाद और सामाजिक संरचना : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण *डॉ. योगेशकुमार करशनभाई चावडसणीया*	64-67
15.	शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन *डॉ. ईश्वर जे. सुतरिया*	68-71
16.	विशेष शिक्षा में प्रशिक्षु शिक्षकों के दृष्टिकोण पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों का प्रभाव *कृणाल ठक्कर एवं ज्योति*	72-74
17.	ध्वन्यालोकलोचने भ्रम धार्मिक. इत्यस्मिन् स्थले प्रयुज्यमानाः लौकिकन्यायाः *विपाशा जैनः एवं प्रो.रामकुमारशर्मा*	75-77
18.	गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता णावितिसूत्रस्यनियामकत्त्वविमर्शः *अश्वनीकुमारठाकुरः एवं प्रो. विष्णुकान्तपाण्डेयः*	78-81
19.	**Transforming Blended Learning with Artificial Intelligence : A...** *Dr. Archana Pandey*	82-84
20.	**The Diversity and Innovation inherent in The Antiquity of the Indian...** *Aziz Ibrahim Chhrecha*	85-88
21.	**A Case Study on Accesibility and Tourism Related Problems Faced by...** *Mr. Satish Singh & Mr. Charu Dutt Sharma*	89-92
22.	**Occupational Stress, Job Satisfaction & Loyalty (A Comparative Case...)** *Mr. Satish Singh & Mr. Charu Dutt Sharma*	93-101
23.	'कबीर की विरासत' पुस्तक की समीक्षा *डॉ. सुनील कुमार मानस*	102-102

विजयदेवनारायण साही

श्रीप्रकाश मिश्र*

मित्रो! इस वर्ष तमाम साहित्यकारों का शताब्दी वर्ष मनाया जा रहा है, उनमें से कुछ हिंदी के भी हैं। सुखद है कि उनमें से कुछ पर साहित्य अकादमी परिचर्चा करा रही है। अमृत राय और विजयदेव नारायण साही पर यह चर्चा इलाहाबाद में हुई। दोनों इलाहाबाद के थे, इसलिए बहुत अच्छा लगा। इसमें साही जी पर चर्चा इसलिए महत्वपूर्ण लगी कि उन्हें साहित्य अकादमी क्या,कोई भी महत्वपूर्ण सम्मान नहीं मिला था, फिर भी उनके लेखन को महत्वपूर्ण मान कर आयोजन किया गया। अमृत राय को साहित्य अकादमी सम्मान मिला था। सुखद यह था कि उसमें कुछ अपेक्षाकृत युवा अकादमिक लोगों ने हिस्सा लिया था, इससे जाहिर हुआ कि आगे की पीढ़ियां उनके लेखन को किस तरह से लेने जा रही हैं।

इधर मेरे मित्र बार बार मुझसे कह रहे हैं कि मुझे वीडीएन साही (वे लोगों के बीच इसी नाम से जाने जाते थे) पर लिखना चाहिए, क्योंकि उन्होंने मुझे पढाया था, इसलिए कुछ स्मृतियां होंगी। उस जमाने की बात करने वाले चश्मदीद बहुत कम लोग रह गये हैं। बात तो ठीक है। पर साही जी से मेरी कोई व्यक्तिगत अंतरंगता नहीं थी, इसलिए उसमें कोई गहराई न होगी, यह शुरू से ही जाहिर है। गहराई से अध्ययन मैंने उनके लेखन का किया था और दो लेख,एक कविता पर और एक आलोचना पर पहले ही लिख चुका हूँ और वे प्रकाशित भी हैं। साही जी की कुछ छवियां मेरे मन पर अंकित हैं,कुछ देखी हुई, कुछ सुनी हुई। उन्हीं को प्रस्तुत करना चाहूँगा। उससे मित्रों को कितना संतोष होगा, मैं कह नहीं सकता।

छविः एक

एक बड़ा सा उपस्थिति भरने का रजिस्टर लेकर वे क्लास में जाने के लिए निकले हैं। रजिस्टर खासा लम्बा चौड़ा, पर पतला सा है, बायें हाथ के सहारे कमर पर टिका कुछ नीचे की ओर सरकता। पतला ज्यादे कुछ इसलिए भी लग रहा है कि उसे पकडने वाला व्यक्ति कुछ स्थूल है। मुंह में पाइप खुसी है। उसके धुंआ उठ रहा है। यानी अंतिम कश उन्होंने कस के खींच ली है। दायें हाथ को उठा कर पाइप पकड़ते हैं, पर मुंह से निकालने के पहले रजिस्टर को कांख में दबा कर वायां हाथ भी वहां लगाते हैं और एक कश और जोर से खींच कर पाइप निकाल कर राख झाड़ कर दाहिने हाथ की मुठ्ठी में ले क्लास की ओर बढ जाते हैं। हाफ ह्वाइट कमीज–पैंट पहने हुए हैं। शायद उनको पहनने का दूसरा दिन है, वे उतनी ताजी नहीं दिख रही हैं। कमर में पेटी बंधी है, पेट कुछ उभरा लग रहा है। यह छवि १६६२ के किसी महीने की किसी दिन की है। निश्चय ही जाड़े का महीना नहीं है। मैं बी.ए. पार्ट 1 का छात्र हूँ और अपने अध्यापकों को पहचानने का प्रयास कर रहा हूँ।

छवि : दो

दूसरी छवि भी पाइप पीने की है। पर स्थान भिन्न है– अंग्रेजी विभाग का स्टाफ रूम। साही जी बार–बार पाइप मुंह से निकाल रहे हैं और दहाड़ रहे हैं। वे कुर्ता–पायजामा पर थोड़ा ढीला बंद गले का कोट पहने हैं। ऊपर के दो तीन बटन खुले हुए हैं। सामने से हट कर कुर्सी पर बैठे प्रकाशचंद्र गुप्त तिरछे देख रहे हैं। अमर सिंह खड़े–खड़े मूंछों में मुस्करा रहे हैं। यदुपति सहाय अपने कमरे से निकल कर स्टाफ रूम में आ रहे हैं। के.के.मेहरोत्रा की जर्मन पत्नी स्टाफ रूम से बाहर आ रही हैं। उनके सम्मान में हम पांच–सात छात्र दरवाजे के सामने से हट जा रहे हैं। हमें जिज्ञासा तो है कि बहस किस बात पर हो रही है, पर जानने का कोई रास्ता नहीं है। उस जमाने में हम छात्रों की हिम्मत नहीं होती थी कि अध्यापकों के स्टाफ रूम में अनाहूत चले जांय। एक सिनीयर छात्र बताते हैं कि या तो राजनीति पर बहस हो रही होगी या साहित्य पर। प्रवोक हो जाने पर साही जी दहाड़ते हैं और दूसरे सुनते हैं। जब वे दहाड़ते हैं तो दूसरे चुप हो जाते हैं। दोनों का अगाध ज्ञान उन्हें है। बस वे छात्रों को नहीं देते। मेरी रुचि दोनों में नहीं है, इसलिए साथ के छात्रों के साथ हट जाता हूँ।

*** प्रख्यात साहित्यकार एवं समीक्षक, 406 त्रिवेणी रोड किट गंज प्रयागराज –211003।**

छवि : तीन

वीडीएन साही से पढ़ने का मौका अगले साल मिला सेमिनार के क्लास में। सेमिनार क्लास के लिए आठ–दस लड़कों का एक ग्रुप बना दिया जाता था जो एक वरीष्ठ अध्यापक की देख–रेख में महीने में दो बार मिलते थे। अध्यापक उन्हें एक विषय पर पेपर लिखवाते थे। उसके लिए आधारभूत बातें वे स्वयं बताते थे, उसे विकसित करने का स्रोत बता देते थे। उपयोग अक्सर इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका का होता था। उनको खोजकर छात्र सामुहिक रूप से पेपर लिखते थे, जिसपर अगली बैठकों में डिस्कशन होता था।उन दिनों आइ ए यस/आइ पी यस/एलाइड सर्विस आदि की परीक्षा में डेढ़ सौ नंबर का एक पेपर एसे का होता था, साक्षात्कार में ग्रूप डिस्कशन होता था। उसका अच्छा अभ्यास इन सेमिनारों में हो जाता था। इसके अलावा पाठ्यक्रम से बाहर की भी तमाम बातों की जानकारी हो जाती थी। साही जी ने एकबार ऐसे पेपर का विषय "उत्तर आधुनिकता" दिया। खुलासा करते हुए बताया कि इसका प्रयोग एर्नाल्ड टायनबी ने अपनी विश्व इतिहास की पुस्तक के अन्तिम खंड में किया है। आधुनिकता संबंधी तमाम बातों के बीच उसने बताया है कि यह मूल्यबोध और जीवन–दृष्टि है जिसका उपयोग ज्ञान और जीवन के सभी क्षेत्रों में होता है। विज्ञान और मानविकी में, वाणिज्य और विधि में, मनोविज्ञान और दर्शन में, सैन्य विज्ञान और चिकित्सा में, इंजिनियरिंग और कृषि में, सभी जगह यह सोचने और काम करने की रास्ता बताती है। हमारे खान–पान, संबंध–रीति रिवाज, जीने की शैली और विश्व दृष्टि को अनुशासित करती है। हमारी जिज्ञासा को शांत करते हुए उन्होंने आगे बताया कि पुरातन और मध्यकाल में जोर आत्मा पर था, आधुनिक काल में आत्म पर। वही हमारी तमाम व्यक्तिगत और सामूहिक क्रियाकलापों का संचालक है। एडम स्मिथ कहता है कि व्यक्ति बिना स्वार्थ के कोई काम नहीं करता। मनोविज्ञान में यह मनोविश्लेषण की ओर ले जाता है। अर्थशास्त्र में देश के भीतर खुली प्रतियोगिता और देश के बाहर राज्य का संरक्षण वाणिज्य में। विज्ञान में यह निरीक्षण, विश्लेषण और सामान्यीकरण की पद्धति की वकालत करता है। कानून में यह लेजिस्लेशन को वरीयता देता है। राजनीति शास्त्र में यह संविधान की संप्रभुता, कानून की व्यवस्था, विधायिका, कार्यकारिणी, न्यायपालिका में शक्तियों का बंटवारा, स्थानीय निकायों, प्रांतों, केंद्र में शक्तियों का बंटवारा, जनता के मौलिक अधिकार, उपनिवेशों को आत्मनिर्णय का अधिकार प्रदान करता है। साहित्य में यह एक तरफ यह कहता है कि दुनिया का केंद्र ध्वस्त हो गया है और परिधि छिन्न–भिन्न होकर अराजक ढंग से नाच रही है (डब्ल्यू बी यिट्स), क्योंकि ईश्वर मर चुका है (नित्से), धरती बंजर हो गयी है (टी एस इलियट) और मनुष्य को अपना मसीहा स्वयं बनना है, यह काम कवि सुगमता से कर सकता है (बादलेयर)। संभावना अतीतोंमुखता में है (इलियट)। कविता अब बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से लिखी जाएगी (एजरा पाउंड), उसके लिए क्रियापदों और विराम चिह्नों की जरूरत नहीं रहेगी (अर्टेगा)। इस आधुनिकता का भिन्न भिन्न स्वरूप, स्तर और उपयोग विभिन्न महाद्वीपों और उनके देशों में है। जर्मनी में इसने अस्तित्ववाद का दर्शन रचा है, इक्बाल में खुदी का। फ्रांस में स्वतंत्रता और समानता का। अमेरिका में मूलाधिकार और लिखित संविधान का। टायनबी कहता है कि केंद्रीय बात यह है कि मूल्य और यथार्थ में फांक पड़ गयी है। (इसका उदाहरण देते हुए साही ने कहा था कि हमारे यहां आदर्श यह है कि जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता रमते हैं, पर यथार्थ यह है हमारे यहां तीन वर्ष की बच्ची के साथ भी बलात्कार हो जाता है जो दुनिया में कहीं नहीं होता)। आगे यह फांक बढ़ती जाएगी कि इनमें एका होगा यह स्पष्ट नहीं है। उत्तर आधुनिकता का दर्शन इसी पर आधारित है।

आगे की तलाश हमें स्वयं करना था। हमारे ग्रुप में नागेन्द्र नारायण चौधरी थे, जो तेजपुर, असम के रहने वाले थे। वे अमिया राय चौधरी के परिवार के थे, जिन्होंने आजादी की लड़ाई के दौरान असम की अलग अस्मिता के लिए राष्ट्रीयता के भीतर उपराष्ट्रीयता की बात कही थी। असम में तो वह नहीं हो पाया, सिवाय कुछ पर्वतीय जनजातिय इलाकों के, पर कश्मीर में वह कश्मीरियत के नाम पर बना। गौर करने की बात है कि दोनों जगह यह इनसर्जेंसी और होस्टिलीटी की ओर ले गया। (विस्तार के लिए देखिए मेरा उपन्यास "नदी की टूट रही देह की आवाज")। उनके बड़े भाई गौरेंद्र नारायण राय चौधरी सी.एम.पी. डिग्री कालेज में पढ़ाते थे और कमिश्नर के बंगले के पीछे काष्टकलावाले पालिटेकनिक के बगल में ढलान पर एक मकान की दूसरी मंजिल में रहते थे। हमने उनसे बातचीत कर काफी सामाग्री इकट्ठी की। उन्हीं से हमने पहली बार नोम चोमस्की और देरिदा का नाम सुना। लेख को लिखा सूर्य विक्रम मिश्र ने जो बहराइच के रहनेवाले थे और बहुत अच्छी अंग्रेजी लिखते थे। उसे पालिश किया महेन्द्र सिंह फौजदार और हृदय

नारायण ने। महेंद्र सिंह भरतपुर राजघराने के थे। ह्रदय नारायण आइ ए एस एलाइड में गये। चौधरी के ही घर पर हमारी मुलाकात आर एन गोयल से हुई, जो दो तीन साल पहले अंग्रेजी साहित्य से एम ए प्रथम रह कर प्रथम श्रेणी में किया था और अब सी एम पी कालेज में पढा रहे थे। उन्होंने साही से मिल्टन पढ़ा था। बताते थे कि साही जितना जानते थे उतना बताते नहीं थे। कह नहीं सकता कि वे कृपण थे,कि व्यक्त नहीं कर पाते थे। बाहर तो वे हिंदी में बहुत अच्छा भाषण देते थे, पर क्लास में अंग्रेजी बोलनी पड़ती थी। शायद वह व्यवधान डालती हो। हम लोगों ने अपने पेपर में नोम चोम्स्की और देरिदा का सिर्फ नाम लिखा था। उनके विचार इतने जटिल लगे कि हम कुछ समझ न पाये या गोयल जी समझा नहीं पाये थे। फिर भी दूसरे ग्रुप वालों पर हम रोब झाड़ते थे, जिन्होंने वह नाम नहीं सुन रखा था। जब पेपर पढ़ा गया तो उस पर डिस्कशन के दौरान साही जी ने अब तक के प्राप्त उनके विचारों का खुलासा किया। इससे दो बातें प्रमाणित हुई। एक तो यह कि हम अपने सिनियरों से सुनते थे कि साही जी फ्रांसिसी में सोचते हैं, फारसी में पढ़ते हैं, अंग्रेजी में पढ़ाते हैं और हिंदी में लिखते हैं, वह काफी हद तक सही है। दूसरी बात का भान तब हुआ जब रूस के पतन के बाद हिंदी आलोचना में एकबैग उत्तर आधुनिकता की चर्चा होने लगी। विशेषतः नामवर सिंह जहां भी भाषण देते किसी न किसी बहाने वह शब्द जरूर लाते। तब लगता कि हिंदी की अकादमिक बौद्धिकता अंग्रेजी से कितना पीछे है। जबकि विनोद कुमार शुक्ल और चंद्रकांत देवताले उसके प्रभाव में कविताएं लिख रहे थे। उनका जादुई यथार्थ उसी का एक पक्ष था जो बरास्ते बर्खेस आ रहा था। अशोक बाजपेई, अरुण कोलटकर वगैरह यथाप्रसंग भारत भवन में चर्चा करते थे। हालांकि दर्शन के स्तर पर अस्मिता, पहचान, स्विकृति और अन्यता अभी स्थापित नहीं हो पाई थी, पर साहित्य में टेक्स्ट, विखंडन, पोएट्री आन पेज की चर्चा होने लगी थी। साही से प्राप्त कर रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रकारांतर से इसका उपयोग यांत्रिक नहीं, रचनात्मक ढंग से करने लगे थे। पर स्वयं साही इसका प्रयोग करते नहीं दिखते। वे समाजवादी थे और उसमें भी राममनोहर लोहिया से जुड़े हुए। इसलिए उनका सरोकार यथार्थ से था, पर उतना यांत्रिक या टेक्निकल नहीं, जितना मार्क्सवादियों का था। खैर....

नामवर सिंह प्रगतिशील लेखक संघ से थे और साही परिमल से। इसलिए दोनों एक दूसरे के मंच पर नहीं जाते थे। इसलिए लगता था कि दोनों में सीधा संवाद नहीं था। पर इलाहाबाद में तो था। बालकृष्ण राव विवेचना की गोष्ठियां चलाते थे, जहां गहरा बौद्धिक विमर्श होता था। साही समेत परिमल के सदस्य वहां जाते थे। नामवर जी भी वहां आते थे। और दोनों एक–दूसरे के विचार से परिचित होते थे। उन दिनों साहित्य के केंद्र में कविता थी और उसका केंद्रीय स्वरूप नयी कविता का था। यद्यपि कि अकविता लिखी जाने लगी थी, पर उसे नयी कविता की ही एक प्रवृत्ति इलाहाबाद में मानी जाती थी। जगदीश गुप्त ने "किसिम–किसिम की कविता" वाले लोग में इसे दिखाया था। इस नयी कविता का व्याकरण लिखने का प्रयास लक्ष्मी कांत वर्मा ने अपनी दो पुस्तकों "नयी कविता : पुराने निकष" और "नयी कविता के प्रतिमान" में किया था। उसमें प्रगतिशील खेमें के कवियों को नोटिस में नहीं लिया गया था। इसलिए वह खेमा काफी नाराज़ था और हमले कर रहा था। धर्मवीर भारती इलाहाबाद से जा चुके थे और हमलों का मुकाबला करने की ज़िम्मेदारी साही जी पर आन पड़ी थी। उनकी पुस्तक "छठां दशक" आ चुकी थी। उन्होंने ने लघुमानव की स्थापना कर दिया था।

लघु मानव के प्रतिकार के रूप में आम आदमी की अवधारणा सामने लाई गयी, हालांकि वह मार्क्सवादियों के बीच लम्बे समय से काम कर रही थी, पर अपरिभाषित थी। जब नामवर सिंह ने "कविता के नये प्रतिमान" लिखने का बीड़ा उठाया तो उम्मीद की गयी थी कि वे आम आदमी को परिभाषित करेंगे। पर वैसा हुआ नहीं। उन्होंने एक लम्बा सर्वेक्षण किया केदारनाथ नाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन आदि की कविता से होते हुए अपने समय की कविता तक और निचोड़ में मुक्तिबोध और धूमिल को स्थापित किया अपने मानदंड के रूप में। यह रामविलास शर्मा की स्थापनाओं के विपरीत अधिक था, साही के कम। दर असल अपनी स्थापनाओं को न्यायोचित ठहराने के लिए और ऐसे भी यथा प्रसंग साही को उन्होंने इतना उद्धरित किया था कि जब उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला तो, मजाक में ही सही, लोग कहने लगे कि आधी राशि साही को दे देना चाहिए।

छवि : चार

डा.राममनोहर लोहिया इलाहाबाद आए हुए थे। वर्ष ठीक–ठीक याद नहीं आ रहा है। चौसठ या पैंसठ था। लोहिया का इलाहाबाद में बड़ा प्रताप था। छात्रों और नौजवानों में उनकी पक्की पैठ थी। वे

हफ्ते–दस दिन यहां रहने वाले थे। इसलिए यह तबका बड़ा उत्साहित था। कोई और कार्यक्रम न हो तो वे काफी हाउस पहुंच जाते थे। वहीं लोगों से घंटों बात करते थे। एक दिन हम भी अपने मित्रों के साथ उनको देखने गये। कई मेंजों को घसीट कर सटाकर जैसे एक बड़ी सी मेज बना दी गई थी। जो भी आता एक कुर्सी घसीट कर उसके किनारे बैठ जाता। अब तक बैठे हुए लोगों में सालिक राम जायसवाल, छुन्नन गुरु, नरेंद्र पंडा, धर्मवीर, जैसे नेताओं के अलावा जगदीश गुप्त, वी डी एन साही, रामकमल राय, रघुवंश, लक्ष्मी कांत वर्मा, उनके भाई रजनीकांत वर्मा वगैरह बैठे थे। हम लोगों में हिम्मत उस मेज पर बैठने की नहीं थी। विजय कुमार सिनहा "बेबी" जो साइंस फैकल्टी से उदियमान नेता थे और एसवाइएस के कार्यकर्ता के साथ हम चार–पांच छात्र एक पास की मेज पर बैठे। लगा कि पूरा काफी हाउस लोहिया जी को सुनना चाह रहा है। वे भारतीय संस्कृति पर कुछ बोल रहे थे। सार–संक्षेप यह था कि भारतीय संस्कृति से कुछ नाम हटा दिए जांय, तो उसमें बचता ही क्या है। जैसे राम, कृष्ण, शिव, बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, रामानुज,माध्वाचार्य, अशोक, चंद्रगुप्त, अकबर, गांधी, राजा राममोहन राय, विवेकानंद, कबीर, निज़ामुद्दीन, तुलसी, कंब, नांबलियार...। वे हमारी संस्कृति के एक–एक प्रवृति के द्योतक हैं। हमारी संस्कृति की समरसता उनके समुच्चय से बनती है। मुझे याद आता है कि साही जी ने अपने कुर्ते की जेब से पाइप निकाला और मेज पर यूं ही रख दिया। फिर खुरुचनी खोजते हुए कहा कि इनमें जो विरोध हैं वे इस समरसता में बाधा नहीं डालते क्या। लोहिया ने पट कहा कि जो सामुहिक जीवन प्रवाह होता है वह उन विरोधों को बहा ले जाता है, दबा देता है। संभवतः लक्ष्मी कांत वर्मा ने कहा कि विरोधों पर ध्यान लिखे पढे लोगों का ही अधिक जाता है, जीवन जीने वालों का नहीं। वे उस पर कभी बहस करते ही नहीं। लोहिया का कहना था कि इन एक–एक लोगों के अवदानों पर नये सिरे से ध्यान दिया जाना चाहिए। आज मैं सोचता हूँ कि रामायण मेला का विचार इसी भाव से उपजा होगा।

वहां बातों का लम्बा सिलसिला था। आज सोचता हूँ कि इन व्यस्त रहने वाले लोगों के पास इतनी फुरसत थी कि बैठे–ठाले घंटों इधर–उधर की बात कर सकते थे। वे आज की तरह के लोगों की तरह कैरियरिस्ट लोग नहीं थे, जीवन को पूर्णता में जीने वाले लोग थे। हम लोग उठ गये। रमणिका गुप्ता अपनी मंडली के साथ आईं थीं। उनके लिए हमने जगह बनाई। वे बिहार से एम एल ए थीं। बहुत कम उम्र में चुनाव जीती थीं। लोहिया जी उन्हें काफी महत्व देते थे।

१९६८ में होली के अवसर पर इलाहाबाद में भयंकर हिन्दू–मुस्लिम दंगा हुआ था। कई दिनों तक कर्फ्यू लगा था। लोग घरो में बंद हो गये थे। हमारी परिक्षाएं टाल दी गयी थीं। जब स्थिति कुछ सामान्य हुई तो हम लोग इधर उधर जाने लगे। एक दिन सत्येंद्र त्रिपाठी के साथ हम काफी हाउस पहुंचे। वे रसायन शास्त्र में शोध कर रहे थे छात्र संघ के अध्यक्ष पद का अगला चुनाव कांग्रेस के समर्थन से लडने वाले थे। उनकी ख्याति एक गंभीर और अच्छे नंबर प्राप्त करने वाले छात्र की थी, इसलिए अध्यापक लोग भी उन्हें यथोचित सम्मान देते थे। शाम का समय था। साही जी बृजभूषण तिवारी और लक्ष्मी कांत वर्मा के साथ बैठे थे। दो–एक लोग और थे। सत्येंद्र त्रिपाठी उनके पास जा कर बैठ गये। हम पास की दूसरी टेबुल पर बैठे। वहां जगह नहीं थी। वैसे भी साही जी के साथ बैठने का साहस हम सामान्य छात्रों में नहीं था। बात कुछ गंगा–जमुनी तहजीब पर हो रही थी। जो धुंधला सा याद आता है, उसमें चार बातें साही की कहीं थीं। एक तो यह कि गंगा–जमुनी तहजीब कहना अपने आप में गलत है। यह स्पष्ट नहीं है कि इसमें गंगा कौन है और जमुना कौन। अक्सर मान लिया जाता है कि हिंदू बहुसंख्यक हैं, इसलिए गंगा हैं, मुसलमान जमुना। जमुना गंगा से छोटी हैं, इसलिए मुस्लिम संस्कृति हिंदू संस्कृति से छोटी है। जबकि बात दोनों संस्कृतियों को बराबर बताने के लिए कही जाती है। बहुसंख्यक होने के कारण कोई संस्कृति बड़ी नहीं हो जाएगी। वृजभूषण तिवारी छात्रनेता थे। यहां के छात्र संघ के अध्यक्ष रह चुके थे। अब सोहरतगढ़ की कचहरी में वकालत सीख रहे थे। बाद में वे कई बार राज्यसभा के सदस्य हुए। बड़े जिज्ञासु थे। बात किसी तरह मुस्लिम मानसिकता पर गयी। साही जी ने बताना शुरू किया। शुरुआत बुद्धिजीविओं से की और अमीर खुसरो का नाम लिया।कहा कि किसी फारसी कवि ने पूछा बहुत अच्छी फारसी जानने के बावजूद आप हिंदवी में लिखते हैं। खुसरो ने कहा कि वह मेरे वतन की भाषा है। मैं अपने वतन से प्यार करता हूँ, इसलिए उसकी भाषा में लिखता हूँ। यदि तुम्हारा कोई वतन है और उससे प्यार करते हो तो उसकी भाषा में लिख। साही जी क्षण भर के लिए चुप हो गये, फिर अपने चिर–परिचित अंदाज में दहाड़ते हुए बोले कि वही मीर खुसरो जब फारसी में लिखता है तो सोमनाथ के मंदिर के ध्वस्त होने का वर्णन करते हुए कहता

है कि शिखर समुद्र में गिरा तो लगा कि जैसे झुक कर पहले खुदा को सलाम किया हो फिर आबे जमजम के पवित्र जल में स्नान करने के लिए कूद गया हो। यहां वह कम्युनल हो जाता है। कुछ देर चुप रहकर लक्ष्मी कांत वर्मा ने जिज्ञासा रखी कि यह भी तो हो सकता है कि खुसरो ने एक बिंब का वर्णन किया है। साही ने उसी तरह दहाड़ते हुए कहा कि तब उसके लिए धार्मिक प्रतीकों की क्या जरूरत थी? उसके अचेतन में अपने मत की सुपीरियारिटी काम कर रही थी, तभी यह बात निकली। उसे सुनकर हम लोगों ने आत्मनिरीक्षण किया तो पाया हमारे मन में अपने मत के प्रति आग्रह रहता ही है। बहुत कम लोग उस आग्रह से ऊपर उठ पाते हैं। वे ही हमारे वास्तविक नायक होते हैं।जो भी हो बृजभूषण तिवारी ने जिज्ञासा रखी कि क्या भाषा भी कम्युनल होती है। साही जी ने जवाब दिया कि भाषा साधन है। वह निर्भर करता है कि कौन उसका उपयोग किस काम के लिए करता है। उसमें स्वयं भाषा का क्या दोष? वहीं से बात समरसता पर गयी। साही जी ने स्पष्ट बताया कि समरसता का मतलब एकरूपता नहीं होता। समरसता की जरूरत ही इसलिए पड़ती है कि बहुरूपता होती है। इरादा होता है उनका सह–अस्तित्व बनाने का। प्रसंग याद नहीं आ रहा है, पर चौथी बात उन्होंने यह कही कि सूक्ष्म मूर्त का होता है, अमूर्त का नहीं। इसलिए मूर्त का विलोम सूक्ष्म नहीं है, अमूर्त है। ऐसे प्रसंगों से जाहिर होता है कि तबका काफी हाउस कैसा था और हिंदी वालों की इंटेलेक्चुएलिटी का स्तर क्या था।

छवि : पांच

यह छवि भी काफी हाउस की है। सन् याद नहीं है। भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यास "गंगा मैया" का फ्रांसीसी अनुवाद आया था। अनुवादक फ्रांस के ही थे। उपन्यास को संक्षिप्त कर उन्होंने अनुदित किया था। कहते हैं कि इसीलिए अनुवाद के साथ–साथ उपन्यास भी अच्छा बन गया था। पर भैरव जी को फ्रांसीसी आती नहीं थी। जिज्ञासा स्वाभाविक थी कि अनुवाद कैसा है। लेहाजा उसकी प्रति लेकर वे काफी हाउस गये। संयोग से साही जी रामस्वरूप चतुर्वेदी के साथ खाली बैठे थे। मित्रगण अभी आने को थे। भैरव जी ने पुस्तक साही जी को दिया और कहा कि बताइये अनुवाद कैसा हुआ है। साही जी ने पुस्तक बड़े उत्साह से लिया। कवर के पिछले हिस्से पर भैरव जी का परिचय छपा था। ध्यान उसी पर पहले गया। उसे पढ़ते हुए चौंक कर बोले, "आपके पिता थवई थे क्या? हम तो जानते थे कि भड़भूजा थे।" भैरव जी चौंकने के साथ–साथ नाराजगी में बोले, "क्या लिखा है?" साही ने कहा, "मैसों यानी मैसन यानी थवई यानी राजगीर।" भैरव जी ने कहा"यह तो सरासर गलत है।" उनकी आवाज में क्रोध था। उसे सुनकर आप–पास के लोग चुप हो गये। सन्नाटा टूटा बगल की मेज से। किसी ने कहा," बहुत बढ़िया फ्रेंच लेदर में बाइंडिंग हुई है।" इसे सुनकर भैरव जी भड़क गये। उन्हें लगा कि व्यंग कर रहा है। लगभग खड़े होते हुए कहा, "क्या कहा?" माहौल बजनी का होने जा रहा था। साही जी ने उन्हें शांत करते हुए,हाथ से बैठ जाने का इशारा करते हुए कहा," आप छीछालेदर भेज दीजिए। उनके फ्रेंच लेदर की ऐसी की तैसी हो जाएगी।" हम लोग समवेत स्वर में हंस पड़े। ऐसा था साही जी का 'विट'। काफी हाउस से जुड़ा एक और प्रसंग मैंने रामस्वरूप चतुर्वेदी और जगदीश गुप्त से सुना था। वैसे इलाहाबाद में यह किस्सा आम है।

कवि, अध्यापक रघुपति सहाय "फिराक गोरखपुरी" छायावाद काल की हिंदी, विशेष कर जयशंकर प्रसाद की भाषा नापसंद करते थे। उसको लेकर सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" से उनका कुछ विवाद हुआ था। बात १९५०–५२ के बीच की कभी है। उन दिनों रामबिलास शर्मा प्रगतिशील लेखक संघ का विस्तार करने इलाहाबाद आए थे और श्रीकृष्ण दास के यहां रुके हुए थे। इस विवाद का उन्हें पता चला तो दो लेख प्रकाशित कराया। उन्हें लेकर इलाहाबाद के बौद्धिक समाज में बहुत गहमागहमी थी। काफी हाउस में खूब चर्चा होती थी, विशेष कर परिमल से जुड़े लोगों के बीच। साही जी उसमें आगे रहते थे। वहां फिराक साहब भी जाते थे और आते–जाते साही पर अक्सर व्यंग करते थे कि हिंदी वाले आजकल बड़ा "विमरस" कर रहे हैं। एक दिन फिराक साहब अकेले बैठे थे। अपनी मित्र–मंडली की ओर जाते हुए साही फिराक साहब की मेज के बगल से गुजरे तो फिराक ने वही बात व्यंग में कही कि आजकल हिंदी वाले बड़ा विमरस कर रहे हैं। साही अपने मित्रों की मेज तक गये, फिर लौटे कि जैसे बाहर जा रहे हों। फ़िराक़ की मेज के सिरों को हाथों से पकड़ कर थोड़ा झुककर जोर से कहा कि जिससे पूरा हाल सुन ले," हां, उर्दू वालों की तरह गुप्तगूऽऽऽ। नहीं कर रहे हैं।" गू पर जोर ने उसका निहितार्थ बदल दिया और तमाम सुनने वाले ठठा कर हंस दिए।फिराक साहब खिसिया कर रह गये।

साही जी से जुड़ी निम्नलिखित घटना को भी हमने रामस्वरूप चतुर्वेदी से सुना था। अमर सिंह भी सुनाते थे। वैसे यह किस्सा इलाहाबाद में आम है।

बात तबकी है जब हरिवंशराय "बच्चन" भी पढ़ाते थे। उन्होंने डब्ल्यू बी यिट्स की कविता पर शोध किया था। उस संबंध में दोनों के बीच पत्राचार हुआ था। वह अब भी जारी था। जब यिट्स का पत्र आता था तो उसे पढ़ कर बच्चन पुनः उसी पता लिखे लिफाफे में डाल स्टाफ रूम की मेज पर उसके बीचोबीच रख देते थे कि दूसरे देंखे कि बच्चन को यिट्स का पत्र मिलता है। ऐसा ही पत्र छोड़ कर बच्चन एकतरफ बैठे थे। तभी फिराक आए, एक नजर लिफाफे पर डालकर बैठ कर अखबार खोल कर पढ़ने लगे। साही आए तो दृश्य देख कर बैठने से पहले खखार कर पत्र को फिराक की ओर सरका दिया। फ़िराक़ ने चेहरे से अखबार नहीं हटाया। कुछ समय बीता तो साही ने कहा कि बच्चन जी के पास यिट्स के पत्र आते हैं, पर कभी आप के पास नहीं आते साहब। फिराक काफी देर तक वैसे ही अख़बार में मुंह गड़ाये रहे। फिर उसे एक तरफ रखते हुए कहा कि एक कवि को दूसरे कवि को पत्र लिखने के लिए दिमाग लगाना पड़ता है। शोध छात्र को लिखने के लिए उसकी जरूरत नहीं पड़ती। इसलिए इन्हें लिखता रहता है। बात सुन कर दूसरे हंस पड़े। बच्चन जी खिसिया कर रह गये।

दरअसल फिराक और साही में बिल्कुल नहीं पटती थी। इसलिए जब भी मौका मिलता था, वे फिराक को अड़सा में डालते थे। कारण यह था कि फिराक का बेटा लक्ष्मण सहाय उनका गहरा मित्र था। दोनों गवर्नमेंट इंटर कालेज में साथ पढ़ते थे। लक्ष्मण सहाय का एक खत्री दोस्त था, जिसके साथ फिराक ने किसी दिन उचित व्यवहार नहीं किया था। उसकी शिकायत उसने लक्ष्मण सहाय से की। पुत्र ने पिता से कैफियत मांगी तो फिराक ने कोई लगने वाली बात कह दी। उससे आहत होकर लक्ष्मण प्रयाग स्टेशन के पास ट्रेन से कट मरे। इससे साही इतना दुखी हुए कि फिराक को जिंदगी भर माफ नहीं कर पाए।

छवि : छः

कुछ लोग कहते हैं कि साही जी छात्रों के बीच बहुत लोकप्रिय थे, दूसरे कहते हैं कि लोकप्रिय नहीं थे। बात दोनों सही है। जिन छात्रों को वे क्लास में पढ़ाते थे, उनके बीच लोकप्रिय नहीं के बराबर थे। हमारे समय में वे एम ए के क्लासों को रेगुलर पढ़ाते थे और उसमें भी विशेषकर मिल्टन। जब वे पढ़ाने लगते थे तो अपनी बात कहते चले जाते थे और इस बात पर ध्यान नहीं देते थे कि छात्र उन्हें ग्रहण भी कर रहे हैं या नहीं। वे क्लास में प्रश्न पूछा जाना नापसंद करते थे। बाहर स्टाफ रूम या घर पर छात्रों से मिलते नहीं थे। इसलिए शंकाओं का समाधान नहीं हो पाता था। इसलिए लड़के उन्हें नापसंद करते थे। वैसे उनके लेक्चर को समझने वाले कहते थे कि वह हाई क्लास का होता था, उद्धरणों से भरा होता था, पक्ष और विपक्ष दोनों तरह के तर्क वहां एक साथ मिल जाते थे। ऐसे छात्र उन्हें क्लास में समझने के बजाय उनका लेक्चर शब्दशः नोट करने का प्रयास करते थे और घर पर पढ़ कर समझने का प्रयास करते थे। साही जी तमाम अध्यापकों की तरह छात्रों को नोट नहीं लिखाते थे, बस लेक्चर देते थे।

लोकप्रिय वे उन छात्रों के बीच थे जो आंदोलनों में भाग लेते थे। वैसे तो उन दिनों इलाहाबाद विश्वविद्यालय में वामपंथी, कांग्रेसी, जनसंघी समी तरह के विचारवाले छात्र सक्रिय थे, पर दबदबा छात्रसंघ पर समाजवादियों का था, जो लोहिया से प्रभावित थे। पदाधिकारियों के चयन के बाद वे लोग कोई न कोई मुद्दा लेकर आंदोलन छेड़ देते थे, जो साल भर चलता रहता था। उनको समर्थन विश्वविद्यालय के बाहर शालिक राम जायसवाल और छून्नन गुरु से मिलता था, भीतर रघुवंश, साही जैसे अध्यापकों से। इनका समर्थन अप्रत्यक्ष और विचारधारा के स्तर पर होता था। सबके बीच समन्वय का काम पंडा नरेंद्र गुरु करते थे। अक्सर जब छात्रनेता छात्रसंघ भवन पर या फक्कड़ चौराहे के कुंआ पर भाषण देते थे तो साही रघुवंश, राम कमल राय, आर एस भटनागर, हरिशंकर तिवारी आदि के साथ हिंदी भवन के सामने फौवारे के पास खड़े होकर उनका भाषण सुनते थे। भाषण होता भी था बहुत बढ़िया, विद्वतापूर्ण, तथ्यों से भरा हुआ। मुझे याद है जब अंग्रेजी हटाओ आंदोलन चला था १६६७ में तो शहर में कुछेक बार प्रदर्शन के बाद गिरफ्तारी देने का सिलसिला आरंभ हुआ। कोई नेता पब्लिक सर्विस कमीशन का अध्यक्ष बन कर गिरफ्तारी देता था, तो कोई एकाउंटेंट जेनेरल बन कर। उसके पहले छात्रसंघ भवन पर भाषण होता था छात्रनेता श्यामकृष्ण पांडेय, नागेंद्र मणि त्रिपाठी 'मंजुल', बृजभूषण तिवारी, मजहर हुसैन, विनोद चंद्र दूबे, सतीशचंद्र अग्रवाल, मोहन सिंह,वगैरह का जो बहुत प्रभावशाली होता था। सिर्फ जगदीश चंद्र दीक्षित गाली–गलौज का प्रयोग

करते थे। तब मैं प्रतिदिन साही को अपने मित्रों के साथ हिंदी विभाग के फौवारे के पास खड़े होकर उन्हें सुनते देखता था। वे उनके बोलने की कला की प्रशंसा करते थे। एक बात और थी। रघुवंश और दूसरे अध्यापक कभी–कभार आंदोलनकारी छात्रों के बीच में चले जाते थे, पर साही कभी नहीं जाते थे। पर साही उनका भाषण सुन रहे हैं इसे जानकर छात्रनेता बड़े उत्साहित होते थे।

छवि : सात

साही जी की पुत्री सुष्मिता श्रीवास्तव ने पूछा है कि क्या मैंने उन्हें कविता पाठ करते देखा था। स्मृति पर जोर देता हूँ तो एक अवसर याद आता है। बात १६६६के मार्च/अप्रैल की होगी। एम ए में मेरा एक पेपर भारतीय राजनैतिक चिंतन का था। उसे कोई पढ़ाने वाला नहीं था। मुझे राय दिया गया था कि जब भी मौका मिले मैं गोरखपुर विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रामकृष्ण मणि त्रिपाठी से मदद लूं। वे मदद करते भी बहुत ढंग से थे। उन्होंने मुझे यू एन घोषाल की पुस्तक 'द हिंदू सोसल एंड पोलिटिकल थियरी' पढने को दी थी और मुलाकात होने पर स्वयं भी खूब मनोयोग से बताते थे। एक दिन दोपहर उनके घर गया तो वे कहीं जाने के लिए तैयार थे।देखते ही कहा, "बहुत गलत मौके पर आए।" वहीं उनके कलीग जगदीश नारायण तिवारी भी थे। उन्होंने कहा कि इन्हें भी ले चलते हैं। पता चला कि हिंदी विभाग में काव्यपाठ हो रहा है। उन दिनों हिंदी विभाग निउ ब्लाक में था। तब गोरखपुर विश्वविद्यालय में दो ही ब्लाक थे, एक मजिठिया ब्लाक, दूसरा निउ ब्लाक। मजिठिया ब्लाक में साइंस के विभाग थे, निउ ब्लाक में मानविकी के। तब हिंदी के हेड प्रो केशरी नारायण शुक्ल थे, रीडर देवर्षि सनाढ्य। दोनों साहित्य में काफी रुचि रखते थे। वहां काव्य पाठ के लिए सात–आठ कवि आए हुए थे, जिनमें केदारनाथ सिंह, वीडीएन साही, देवेन्द्र बंगाली को पहचानता था। काव्य पाठ शुरू हुआ तो संचालन परमानंद श्रीवास्तव ने किया। केदारनाथ सिंह और साही का परिचय देते हुए उन्होंने उन्हें तीसरा सप्तक का कवि बताया। तब मैं पहली बार जाना कि साही जी भी उसके कवि हैं। केदार जी के बारे में मैं पहले से जानता था। वे इंटरमीडिएट में मेरे अध्यापक थे।

मुझे याद आता है कि केदार जी के बाद उन्होंने पांच–छः कविताएं सुनाईं थीं, जिनमें आधी मछलीघर से थीं, आधी नयी। पर उन कविताओं का शीर्षक याद नहीं आ रहा है। साही जी ने उन्हें जैसे सपाट भाषा में पढ़ा था, बिना किसी उतार–चढाव के, पर रुक–रुक कर कि जैसे समझा–समझा कर कुछ बता रहे हों। वैसा वे काव्यपाठ में हमेशा करते थे,कि वहां किए थे, मैं कह नहीं सकता, क्योंकि उन्हें फिर कभी काव्यपाठ करते नहीं सुना। उसकी स्मृति भी अब काफी धुंधली हो गयी है।

छवि : आठ

१६७०के आरंभ में इलाहाबाद छूट गया। मैं फिर वापस आया १६८० के मध्य में नौकरी से दो वर्षों की छुट्टी लेकर "इंटरनेशन क्रिमिनल ला एण्ड जस्टिस" पर शोध करने। गाइड मेरे ला डिपार्टमेंट के प्रो.यू. एन.गप्त बने। यहां आने से पहले देहरादून में मैं साहित्य में रुचि लेने लगा था और कविताएं लिखने लगा था। वे प्रकशित होती थीं तो अच्छी प्रतिक्रियाएं मिलती थीं, जिससे मेरा मनोबल बढ़ता था। इलाहाबाद साहित्य का गढ़ माना जाता था। मुझे उम्मीद थी कि यहां अपने लेखन को बेहतर करने का अच्छा माहौल मिलेगा। पर देखा कि यहां झांव–झांव ही अधिक है। स्थापित लोग और स्थापित होने के लिए दूसरे, विशेषकर नये लोगों को दबा कर रखते थे। उस माहौल को तोड़ने के लिए प्रयास में लगा तो पता चला कि एडवोकेट संकटा राय के यहां महीने में दूसरे और चौथे शनिवार को गोष्ठी होती है, जिसमें सभी प्रकार के साहित्यकार, विशेषकर युवा लिखने वाले जुटते हैं। ऐसी ही एक गोष्ठी में मैं वहां गया और कविताएं सुनाईं तो कुछ लोग आकर्षित हुए। उनमें स्वयं संकटा राय, जवाहर सिंह यादव, जो समाजवादी पार्टी के नगर अध्यक्ष थे,और सिंहेश्वर सिंह थे। कई बार गोष्ठियों में मिलने के बाद उन्हें लगा कि मैं अच्छा लिखूंगा, इसलिए शहर के महत्वपूर्ण रचनाकारों से मिलाने के लिए, जिन्हें वे जानते थे, उन्होंने योजना बनाई। इसी क्रम में वे एक दिन मुझे वीडीएन साही के घर ले गये। जवाहर सिंह यादव के स्कूटर पर संकटा राय और मेरी मोटरसाइकिल पर सिंहेश्वर सिंह बैठे।

आरंभिक जाड़े का दिन था। साही जी अपने खफरैल वाले घर के सामने पतले लान में धूप में बैठे थे। बड़े गर्मजोशी से उनसे मिले। जवाहर सिंह यादव ने उनसे मेरा परिचय कराया और इस बात पर जोर

दिया कि ये बहुत अच्छी कविताएं लिखते हैं। दोनों समाजवादी थे, इसलिए उनके ताल्लुकात अच्छे थे। औपचारिकताओं के बाद साही जी ने कहा कि कवि की पहचान उसकी कविता से होती है। कुछ सुनाइए। फिर ठमक कर कहा कि डायरी तो आप लिए नहीं हैं। मुझे कुछ कविताएं याद थीं। दर असल आरंभ में आदमी बहुत लीन होकर लिखता है, इसलिए कविताएं हमेशा के लिए याद हो जाती हैं। बाद में वह तल्लीनता जाती रहती है, इसलिए याद भी नहीं रहतीं। साही जी के नाम का बड़ा आतंक था। इसलिए मैं हिचक रहा था। पर तीनों मुझे उत्साहित कर रहे थे। एकाएक मुझे ख्याल आया कि कविताएं तो मैं अज्ञेय को सुना चुका हूँ, जिनका आतंक साही से कुछ ज्यादा ही है। मैंने कविताएं सुनाईं और वे ही कविताएं सुनाईं जो अज्ञेय को सुना चुका था। 'आम आदमी से खास आदमी तक ','समय दुरंत लुहार है ', 'अनुपस्थिति का दंश', ' आदमकद दर्द', 'हम क्या करें ' जैसी कविताएं उनमें शामिल थीं। साही जी ने उन्हें बहुत मनोयोग से सुना। कहा कि आपके पास बहुत अच्छे बिंब हैं और उनको रखते भी खूब अच्छे ढंग से हैं, बड़ी सटीक भाषा में। अभिव्यक्ति में थोड़ी वाग्मिता है, पर उसपर यथा समय अधिकार प्राप्त कर लेंगे। हम जब चलने लगे तो कहा कि छुट्टी के दिन जगदीश गुप्त और लक्ष्मीकांत वर्मा यहां आते हैं। हम साहित्य पर बात करते हैं। आप भी आते रहिएगा। काफी हाउस में भी मिलिएगा।

साही का आतंक मेरे मन से जाता रहा। जवाहर सिंह यादव ने भी कहा कि साही जी का ऐसा व्यवहार नये लोगों के प्रति भरसक नहीं होता। आप भाग्यशाली हैं। इसे बनाये रखिएगा।

छवि : नौ

फिर साही जी से कई महीने मुलाकात नहीं हुई। उनके घर जाने की हिम्मत नहीं पड़ी और जब काफी हाउस गया तो वहां वे नहीं थे। फिर मुलाकात काफी हाउस में ही हुई। एक शाम वे लक्ष्मीकांत वर्मा और रामस्वरूप चतुर्वेदी के साथ बैठे थे। रामस्वरूप चतुर्वेदी को मैं जानता–पहचानता लम्बे समय से था,पर जान–पहचान नहीं थी। उस दिन हुई। मैं असम में रह चुका हूँ, जानकर उन्होंने असम की बात छेड़ी। पूछा कि मैं वहां के किन रचनाकारों को जानता हूँ। मैंने बताया कि व्यक्तिगत रूप से मैं हेम बरुआ, अजित बरुआ और नवकांत बरुआ को जानता हूँ। हेम बरुआ से परीचय पर वे थोड़ा चकित हुए। वे समाजवादी नेता थे और साही जी उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानते थे। मैंने बताया कि वे एक अखबार निकालते हैं। मैंने गेंदा सिंह और मधुकर दिघे का रेफरेंस देकर उनसे परिचय किया था। हेम बरुआ की असम की राजनीति पर बड़ी गहरी पकड़ थी और उनकी बातें मेरे बड़े काम की होती थीं। साही जी ने बताया कि अटल बिहारी वाजपेई के संसद में जाने से पहले संसद में वे विरोधी दल के सबसे अच्छा नेता और वक्ता के रूप में जाने जाते थे। साही जी ने पूछा कि क्या मैंने असमिया साहित्य का कुछ पढ़ा है। मैंने बताया कि इनकी कविताओं के साथ मैंने वीरेन भट्टाचार्य के उपन्यासों को मूल असमिया में पढ़ा है। वीरेन भट्टाचार्य से वे व्यक्तिगत रूप से परिचित थे। उनके बारे में कुछ पूछते रहते। फिर हम लोगों ने कुछ इधर–उधर की बात की काफी पीया और अपने घर चले गये।

काफी हाउस में ही अगली मुलाकात हुई। बात नवकांत बरुआ की कविताओं पर आई। मैंने कहा कि पश्चिमी आधुनिकता के वे सबसे अच्छे कवि हैं, अज्ञेय से भी अच्छे। साही जी चौंके, फिर कहा कि कुछ खुलासा करिए। मैंने कहा कि साहित्य में आधुनिकता का एक रूप टी. एस. इलियट का है, वह बंजरता को लेकर बात करता है। उसकी सबसे बढ़िया अभिव्यक्ति नवकांत बरुआ की कविता में है। एक कविता में वह लिखता है कि ब्रह्मपुत्र का पानी बाढ़ के बाद जब लौट जाता है, जो बचता है वह सूख जाता है, तब बंजरता का आधिपत्य जमकर होता है। उस कीच में एक तो कुछ उगता नहीं, और जो उगता है उस पर चढ़ कर नदी का कीच उसे नष्ट कर देता है। यह प्रक्रिया हर साल होती है और जाने कबसे हो रही है और न जाने कबतक होती रहेगी। साही जी ने कहा कि इस कविता को वे नहीं जानते। तब मैंने एक दूसरी कविता के बारे में बताया, जिसमें कवि कहता है कि एक प्रौढ़ स्त्री एक कम उम्र के ऊर्जस्वित पुरुष से खूब प्यार करती है। वह भी उसे खूब प्यार करता है। दोनों खूब मिलते हैं और आगे का जीवन बेहतर करना चाहते हैं। पर कवि कहता है कि वह हो नहीं सकता क्योंकि स्त्री की बच्चा जनने की उम्र निकल गयी है। दुनिया को बेहतर करने के लिए आकांक्षा के साथ–साथ सामर्थ्य भी होनी चाहिए। साही जी ने कहा कि वे इस कविता को भी नहीं जानते। दोनों ही बहुत अच्छी कविताएं हैं और इनका अनुवाद हिंदी में आना चाहिए।

साही जी से जब फिर मुलाकात काफी हाउस में हुई , तो हमने बात जहां छोडा था, वहीं से आरंभ किया। उन्होंने कहा कि नवकांत बरुआ की कविता की खासियत यह है कि भविष्य के लिए वह कोई आशा नहीं छोड़ता इन कविताओं में, जब कि इलियट अतीत में और पूरब में ही सही इसकी संभावना देखता है। इसलिए बरुआ की कविता में चुभन तो बहुत है , पर मूल्यबोध के स्तर पर कमजोर है। फिर अज्ञेय जो बात करते हैं वह एक तो व्यक्ति के आंतर का है, बाह्य का नहीं। मैंने कहा कि हां, वाह्य को लेने पर सामुहिकता की ओर जाना पड़ता जो शायद उन्हें पसन्द नहीं था। उनकी कविताओं में दूसरे की उपस्थिति कम ही देखने को मिलती है। बात कुछ और आगे बढ़ी,किस तरह से,वह याद नहीं आ रहा है पर साही ने अज्ञेय की आधुनिकता को समझाने के लिए "अपने–अपने अजनवी" की चर्चा लाए। ख्याल नहीं आ रहा है कि कौन सा मुद्दा उठा कि मैंने कहा कि उनकी कविता समझने के लिए उनके इस उपन्यास को लाना ठीक नहीं। यह उपन्यास आधुनिकता के दूसरे पक्ष, दर्शन पक्ष अस्तित्ववाद को सामने लाता है, जो आधुनिकता के काव्य दर्शन केंद्र के न होने और बंजरता से भिन्न है। साही जी मुस्कुराए और बात खत्म हो गयी। बाद में पता चला कि वे अज्ञेय की तरह ही नवागत को प्रश्न पूछ कर और उसे तैरने की खुली छूट देकर पहले उसकी औकात जांच लेते थे कि उससे किस स्तर पर बात की जा सकती है, बात की जा सकती भी है कि नहीं। उन्हें मैं बात करने लायक लगा, यह मेरी उपलब्धि थी।

कुछ दिनों के बाद फिर काफी हाउस में ही मुलाकात हुई। राम कमल राय ने उन्हें बताया था कि मेरी कुछ कविताएं कई पत्रिकाओं में आईं हैं। यह जान कर उन्हें अच्छा ही लगा। कहा कि लिखते रहिए। कुछ अच्छी कविताएं हो जांय तो किसी से उन पर नोट लिखवा कर किसी बड़ी पत्रिका में भेजी जा सकती है। रामकमल राय को लगा कि यह मेरे उत्साहवर्धन के लिए है।भला वह नोट लिखेगा कौन? पर मेरे लिए वही काफी था। अमर गोस्वामी, कृष्णेश्वर डिंगर, सिंहेश्वर सिंह आदि से मिल कर हम लोगों ने" वैचारिकी "की स्थापना कर ली थी और उसकी गोष्ठियां नियमित होने लगी थीं। उसकी चर्चा शहर में होने लगी थी। उसमें जगदीश गुप्त, लक्ष्मी कान्त वर्मा आदि अक्सर आते थे। उनके माध्यम से उसकी जानकारी साही जी को हो गयी थी। सत्यप्रकाश मिश्र के साथ मुलाकात होने पर उन्होंने मुझसे कहा कि हर पीढ़ी अपनी रचना के प्रसार/निखार के लिए संस्था बनाती है, पत्रिका निकालती है। आप लोग भी कर रहे हैं, यह अच्छी बात है। हम लोगों ने भी किया था।मैंने उनसे उसकी गोष्ठियों में आने के लिए अनुरोध किया। किंतु वे कभी भी नहीं आए। तब भी नहीं, जब मेरी कविताओं का पाठ हुआ।

सत्यप्रकाश मिश्र से उन्हें पता चल गया था कि मैं शहर के 'कम्युनिस्ट रचनाकारों 'से निरंतर मिलता–जुलता रहता हूँ। कोई संदर्भ आने पर साही जी ने कहा कि अपना दायरा बढ़ाते रहना चाहिए, उसके लिए हर तरह के लोगों से मिलते रहना चाहिए। पर उनके संगठन का सदस्य न बन जाइएगा। मैंने पूछा क्यों तो उन्होंने जवाब दिया कि वे आपकी कविता की चर्चा बाद में करेंगे, पार्टी का कार्यकर्ता पहले बनाएंगे। कार्यकर्ता आप बन नहीं पाएंगे, लिखना ऊपर से छूट जाएगा। मुझे उनका "तीसरा सप्तक" में लिखे वक्तव्य का सोलहवां शील याद आया.... कम्युनिस्टों से बहुत दिन तक दोस्ती की तो पाया कि वे कवियों में मजदूर की तरह बोलते हैं, मजदूरों में कवि की तरह बोलते हैं, जहां दोनों होते हैं वहां बगलें झांकते हैं और जहां दोनों नहीं होते वहां जाने का साहस नहीं करते। मैं ऐसी नौकरी में था कि किसी दल के आनुषंगिक संगठन का सदस्य नहीं बन सकता था।

छवि : दस

काफी हाउस में साही जी के साथ अनेक मुलाकातें हुईं, कभी अकेले, कभी उनकी पूरी मंडली के साथ। जब वे मंडली में होते थे तो मुझसे सीधी बात नहीं के बराबर होती थी। मैं भरसक श्रोता ही होता था। मैंने पाया कि साही जी राजनीति और साहित्य पर ही बात करते थे। साहित्य में भी वे कविता पर ,या फिर उसकी आलोचना पर। आलोचना के अलावा वे किसी और गद्य लेखन पर बात नहीं करते थे। उपन्यास और कहानियों पर बिल्कुल नहीं। बातचीत से लगता था कि वे फारसी में क्लासिक कवियों को पढ़ते थे। अंग्रेजी, हिंदी में सभी ख्यातिनाम कवियों को। आलोचना वे हिंदी, अंग्रेजी और फ्रांसीसी तीनों की पढ़ते थे।

मैंने किसी संदर्भ में उन्हें बता दिया था कि शोध पूरा नहीं करूंगा , सरकार को लिख दिया है कि दस नवम्बर से आगे की मेरी छुट्टी कैंसिल कर दी जाय और तैनाती का स्थान तय कर दिया जाय, जहां जाकर ज्वाइन कर लूं। साही जी ने पूछा कि छुट्टी लेकर आखिर आप शोध कर क्यों रहे थे। मैंने बताया कि

मैं मौजूदा नौकरी छोड़ देना चाहता था। पढ़ाना चाहता था। पर उसमें अनेक झंझट हैं। एक तो यही कि मेरे साथ के लोग रीडर बनने जा रहे हैं, मैं लेक्चर से शुरू करूंगा। उन्होंने कहा कि आप की पे तो प्रोटेक्ट हो जाएगी। मैंने कहा कि पद तो नहीं मिलेगा। फिर यहां ब्राह्मण–कायस्थ का बड़ा झमेला है। उसमें पड़ना नहीं चाहूँगा। साही जी ने कहा कि शोध छोड़िए या नौकरी, पर लिखना नहीं छोड़िएगा। उनका यह कहना मेरे लिए बड़ी बात थी।

नवंबर १६८२ की दो या तीन तारीख थी, ठीक से याद नहीं आ रहा है। मैं अपने दो–तीन मित्रों के साथ काफी हाउस में बैठा हुआ था। देखा कि रिक्शे से बिल्कुल काफी हाउस के दरवाजे तक चले आ रहे हैं। ऐसा होता नहीं था। वे सामने सड़क पर घेघ वाले नीम के पेड़ों के ही नीचे उतर जाते थे और कम्पाउन्ड में सायकिलों को स्टैंड पर लगाते नमस्कार करते पांडेय के अभिवादन का जवाब देते वे मंथर गति से अपने लकदक सफेद धोती – कुर्ते में काफी हाउस के भीतर आते दरवाजे पर ठमक कर देख लेते थे कि कौन–कौन कहां–कहां बैठा है।फिर उपयुक्त मेज के सामने आ बैठते थे। उन्हें रिक्शे से उतरते हुए देखा तो उठ खड़ा हुआ। मेरे साथ ही मेरे मित्र भी उठ खड़े हुए और बिदा ले लिए। साही जी वहां आए और पूछा कि मुंशी जी नहीं आये हैं। नमस्कार कर मैंने सिर हिलाया तो वे मेज की दक्षिण तरफ आकर दरवाज़े की तरफ मुंह कर बैठ गये। वे थके–थके लग रहे थे। चेहरा थोड़ा निश्तेज।कुछ ही दिन पहले उनके पेट का आपरेशन हुआ था, शायद एपेंडिक्स का। डाक्टर ने उन्हें चलने–फिरने, स्ट्रेन लेने से मना किया था। दिल की कमजोरी का भी पता चल गया था। पर साही कहां मानने वाले थे! काफी हाउस उनकी कमजोरी थी । और वे काफी हाउस आएं और बात न करें!!

कुछ दिन पहले हम लोगों ने बंगाली साहित्य की आधुनिकता की बात की थी। रवींद्र नाथ ठाकुर के बलाका संग्रह से उसका आरंभ माना जाता है, क्यों कि वहां से उनका झुकाव यथार्थ की ओर होता है, किसी रहस्यमय की प्रार्थना करने से वे हटते हैं और काव्यभाषा के लिए बोलचाल की भाषा की ओर मुड़ते है, ऐसा उनके विवेचक कहते हैं। साही ने कहा था कि बंगाली कविताओं के हिंदी या अंग्रेजी अनुवाद उन्हें अच्छे नहीं लगते, इसलिए पढ़ते नहीं हैं। मैंने कहा था कि वास्तविक आधुनिकता बुद्धदेव बसु और उनकी मंडली से आरंभ होती है। आज उन्होंने उसका बिस्तार पूछा। मैंने कहा कि वे अपने को मार्क्सवादी घोषित करते हैं और खुल्लमखुल्ला कहते हैं कि रवीन्द्र नाथ टैगोर की कविता से हट कर ही नहीं, उनके विरुद्ध लिख रहे हैं। कविता की विशेषताओं के बारे में पूछा तो बताया कि नयी कविता पर उनका एक अंग्रेजी में लेख ही है, जिसमें वे तीन लक्षण गिनाते हैं, एक प्रयोग पर आग्रह, दूसरा यथार्थ पर आग्रह, तीसरे काव्यथीम के रूप में छोटी छोटी बातें और जन की भाषा का इस्तेमाल। मैंने यह भी बताया कि यह छोटी छोटी बातों की थीम जीवनानंद दास की कविता में अधिक है। ऊपर से एक और प्रवृत्ति सेक्स को लेकर लिखने की भी है। साही जी ने कहा कि यह सब अंग्रेजी से ही लिया हुआ है। कुमिंग्स वगैरह प्रयोग पर बल देते हैं, डी एच लारेंस सेक्स पर। छोटी–छोटी बातों और जन भाषा में लिखना सर्वत्र है। साही जी ने यथा प्रसंग यह भी कहा कि हमारे अकविता वाले, केसनी प्रसाद चौरसिया, मोना गुलाटी, धूमिल जाने क्या क्या लिखते हैं। मैंने कहा कि दोनों में मूलभूत अंतर है। जीवनानंद दास बहुत ही मर्यादित भाषा में लिखते हैं, उससे वितृष्णा नहीं पैदा होती। स्त्री के बाल का वर्णन इस तरह से करते हैं कि उसे देखने का ढंग बदल जाता है। साही जी ने कहा कि अकविता जैसा दौर वहां भी तो है। मैंने कहा कि भूखी पीढ़ी के बाद वहां फर्क आया है। उदाहरण के लिए मैंने शक्ति चट्टोपाध्याय की एक कविता उद्धरित की, जिसमें आता है कि मैं जाना चाहता हूँ, पर जाऊं कहा। यानी कवि को लक्ष्य पता नहीं है, पर जाने की इच्छा तो है। हिंदी कविता में दोनों का अवगाहन नहीं है। बात आगे बढती, तभी देखा कि लक्ष्मी कान्त वर्मा रिक्शे से उतर कर दायें–बायें देख रहे हैं, किसी परिचित को तलाश रहे हैं। हम समझ गये कि उन्हें देने के लिए पैसे नहीं हैं। मैंने पास जा कर नमस्कार किया नहीं कि उन्होंने निःसंकोच कहा कि इसे साढ़े तीन रूपया दे दीजिए। साही जी मेरी बात चेहरे को दोनों हाथों पर रख कर सुन रहे थे। वर्मा जी भीतर आए तो उन्होंने हटाया। वे लोग जब बात करने लगे तो मैं उठ गया।

उसके बाद साही जी से फिर मुलाकात नहीं हुई। बस नहीं रहने की खबर मिली।

हिन्दी आदिवासी कविता के संवेदनात्मक आयाम

डॉ. योगेश कुमार तिवारी*

आदिवासी हिन्दी साहित्य लेखन की शुरूआत कविता लेखन से प्रारम्भ होती है। 1930 के दशक में झारखण्ड (चाईबासा) में आदिवासी कवयित्री सुशीला सामद हिन्दी कविता लेखन में सक्रिय हुई। जिनका काव्य संग्रह 'प्रलाप' 1935 और 'सपनों का संसार' 1948 में प्रकाशित हुआ; साथ ही साथ एक साहित्यिक–सामाजिक हिन्दी पत्रिका 'चांदनी' का संपादन एवं प्रकाशन का कार्य किया। जयपाल मुण्डा की पत्रिका 'आदिवासी सकम' का प्रकाशन 6 जुलाई 1940 में जमशेदपुर से शुरू हुआ। 19 दिसम्बर 1947 को 'अबुआ झारखण्ड' का प्रकाशन हुआ; जिसके संपादक–प्रकाशक इग्नेश कुजूर थे। जिसमें हिन्दी, मुंडारी एवं अंग्रेजी में रचनाओं को संकलित किया जाता था। जिसमें उन्होंने अपनी पीड़ा और वेदना को लिखकर व्यक्त किया है। आदिवासी समाज अन्याय और अत्याचार से मुक्त होना चाहता है। अपने समुदाय में हो रहे शोषण, अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने के लिए कविता के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति आदिवासी रचनाकारों द्वारा की है। इसके अन्तर्गत महिपाल भूरिया, रामदयाल मुण्डा, पीटरपाल एक्का, निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजूर, हरिराम मीणा, रोज केरकट्टा, मंगलसिंह मुण्डा, जसराम मीणा, मंजू ज्योत्स्ना, महादेव टोप्पो, डॉ. भीमसिंह, जेम्स टोप्पो, दयामणि बरला, वाल्टर भेंगरा 'तरूण', वाहरू सोनवणे, रमेशचंद मीणा, केदार प्रसाद मीणा, अनुज लुगुन आदि को रखा जा सकता है। इन्होंने अपने अपने क्षेत्र विशेष की समस्याओं को कविता के माध्यम से देश के सामने प्रस्तुत किया है। ये भारत के मूल निवासी किन परिस्थितियों में जंगलों, पहाडों की शरण में गए। महादेव टोप्पो इसे जानते और समझते हैं इसलिए वे आदिवासी समाज को अपना इतिहास लिखने के लिए आवह्न करते हैं– **''इतिहास तुम्हारा,/इतिहास के पन्नों पर,/गढ़ा नहीं शब्दों ने ,/ना ही हो सका दर्ज ग्रन्थों में,/तुम्हारी विजय गाथाओं,/और संघर्ष के गवाह,/पेड़ हैं, नदियाँ हैं, चट्टानें हैं,/पुरूखों की आत्माएँ हैं,/ससनदिरी हैं,/जाहेर थान हैं,/तुम्हारे लोकगीत हैं,/पर इन सबकी गवाही,/उन्हें नहीं है स्वीकार,/इसलिए तुम इतिहास के ग्रन्थों में,/हाशिए पर डाल दिए गए हो,/या कर दिये गए हो बाहर,/इससे पहले कि वे पुनः तुम्हारा अपने ग्रन्थें में,/बन्दर–भालू या किसी जानवर के रूप में करें वर्णन,/ तुम्हें अपने आदमी होने की तलाशनी होगी परिभाषा,/उनके सिद्धान्तों, स्थापनाओं के विरूद्ध,/उनके बर्बर वैचारिकी,/हमलों के विरूद्ध,/रचनें होंगे,/स्वयं ग्रन्थ.........**[01]

उनके मौखिक साहित्य (पुरखा साहित्य) को पिछले पांच दशकों से कलमबद्ध करने का शिलशिला शुरू हुआ; जो वर्तमान में काफी जोर शोर से लिखा जा रहा है। कुछ आदिवासी लेखक दूसरों के द्वारा अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति पर अपनी कलम की ताकत को पहचानने लगे हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि आदिवासी लेखकों ने हिन्दी भाषा में अपना साहित्य लिखने लगे। इसके अन्तर्गत उन रचनाकारों को रखा गया है, जो स्वयं आदिवासी होकर आत्मानुभूति के द्वारा साहित्य का सृजन कर रहे हैं। **वाहरू सोनवणे** की कविता **'स्टेज'** के माध्यम से अपने दर्द को इस प्रकार व्यक्त किया है। **हम स्टेज पर गए नहीं,/और हमें बुलाया भी नहीं,/उंगली के इशारे से**,/**हमारी जगह,/हमें दिखाई गयी,/वे स्टेज पर खड़े हो हमारा दुःख,/हमें ही बताते रहे,/हम बड़बड़ाएं,/कानदेकर वे सुनते रहे,/और हमारे कान पकड़कर,/हमें ही धमकाया,/माफी माँगों नहीं तो ....**[02]

उपर्युक्त पंक्तियों में आदिवासी जनजीवन का चित्रण कवि ने बहुत ही यथार्थता के साथ किया है। जिसमें आदिवासी समाज के अहसास को चिन्हित करते हुए सामाजिक चेतना को परिभाषित किया गया है। वह खुद ही अपनी वेदना को साहित्य में व्यक्त करना चाहता है। हरिराम मीणा ने आदिवासी नस्ल पर अपनी कविता में लिखा है कि उन्हें यह पता ही नहीं कि वे कहां से आए हैं। उनके पूर्वज कौन हैं? **हमें पता नहीं,/हम बन्दर की औलाद हैं,/या भगवान की मंसा,/मगर पैदा आदम–जात ही में हुए,/नहीं छोड़ी हमने हिफाजती मुहिम,/मौसमों के खिलाफ,/घर नहीं बनाये,/मगर बेघर महसूस नहीं किया,/रहे अपरिग्रही फिर भी धनी।''**[03]

---

* सहा. प्राध्यापक, शासकीय तुलसी महाविद्यालय, अनूपपुर, म.प्र.।

डॉ. रामदयाल मुंडा ने आदिवासियों के विकास के नाम पर हो धोखाधडी की गई उसका वर्णन अपनी कविताओं में किया है। विकास के नाम पर सरकार, ठेकेदार, दलाल, पूंजीवादी लोगों ने प्राकृतिक संपदाओं के साथ खिलवाड़ किया है। जो उनकी कविता 'विकास का दर्द' में देखने को मिलती है। **मुझको विकास का,/दर्द यह असहृय,/देर तक सहना न होगा,/समय से पहले ही मेरा,/काम तमाम होगा?**[04] आदिवासी समाज में कभी स्वार्थ की भावना नहीं थी; उन्होंने हर विपत्ति का सामना किया जिसे इस कविता के माध्यम से समझा जा सकता है। **हाशिये की जिन्दगी है जनजातियों की,/हवाओं को बन्दगी है जनजातियों की,/शून्य सी हर नजर नभ को ताकती है,/मुर्दनी छायी जिन्दगी में जनजातियों की,/अलगनी पर झूलते हैं दर्द मटमैले,/शाम मैली–सी दिखती है जनजातियों की,/द्वार के कन्धे छिले हैं बोझ से,/बन्दिशें कितनी लगीं जिन्दगी में जनजातियों की,/दबे नहीं, झुके नहीं किसी कें चरणों में,/स्वार्थ का बिरवा उगा नहीं जनजातियों की।**[05]

निर्मला पुतुल के तीन काव्य संग्रह 'नगाड़े की तरह बजते शब्द', 'अपने घर की तलाश' एवं 'फूटेगा एक नया विद्रोह' प्रकाशित हो गये हैं। '**नगाड़े की तरह बजते शब्द**' के विषय में मैनेजर पाण्डेय कहते हैं कि 'इस संग्रह की कविताओं में शब्द सचमुच आदिवासी जीवन के लोकप्रिय वाद्य नगाड़े की तरह बजते हैं और सुनने वाले को जितना आकर्षित करते हैं उतना ही प्रभावित करते हैं।'[06] आदिवासी परिवेश की ऐसी पुकार ने हिन्दी साहित्य के चिन्तन को एक नयी जमीन दी है; क्योंकि इसमें लगातार छले गये लोगों की असीम वेदना हैं, बेबाक प्रश्न हैं, नाराजगी हैं और सबसे बड़ी बात उस छल को समझने व बूझने की चेतनात्मक लहर भी है। निर्मला जी लिखती हैं–'**कैसा बिकाऊ है तुम्हारी बस्ती का प्रधान/जो सिर्फ एक बोतल विदेशी दारू में रख देता है। पूरे गांव को गिरवी/और ले जाता है कोई लड़कियों को गट्ठर की तरह/बांधकर अपनी गाड़ियों में तुम्हारी बटियों को/हजार पांच सौ हथेलियों पर रखकर।**'[07] इसके अतिरिक्त निर्मला पुतुल आदिवासी समाज में चेतना फैलाने का काम भी करती हैं। अत्याचार और अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध के स्वर मुखरित होने लगे हैं। इसलिए जो उनकी कविताओं में चित्रित है, वह समस्त समाज का चित्र है। निर्मला पुतुल जी **'बिटिया मुर्मु के लिए'** कविता में आदिवासी स्त्रियों का आह्वान करती है जैसे–'**उठों कि/अपने अंधेरे के खिलाफ उठो/उठों अपने/ पीछे चल रही साजिश के खिलाफ/जैसे तूफान में बवन्डर उठता है/उठती है जैसे राख में दबी हुई चिंगारी।**'[08] लगभग सभी कविताओं में वह अपनी अस्मिता और अस्तित्व को तलाशती हुई दिखाई देती हैं।

मेरी जहाँ तक समझ है ये ऐसी कविताएं हैं जो लोगों को चौकन्ना करती हैं और साथ में यह कहना भी प्रमुख है कि उनकी खामोशी को तोड़ती है। जो लोग अपनी होशियारी के बल पर उनका शोषण करते आ रहे हैं–उनके सावधान हो जाने का संकेत भी है। महादेव टोप्पो ने अपनी कविताओं के माध्यम से आदिवासी समाज के अस्तित्व एवं उनके खिलाफ किए गए कुचक्रों का पर्दाफाश किया। उनकी कविता 'चौथे महायुद्ध के बाद' में इस बात की पुष्टि मिलती है कि मानव जाति का अस्तित्व जब खतरे में पड़ेगी तो आदिवासी ही उसको बचायेंगे। **'अब यदि छिड़ेगा कोई महायुद्ध,/मैं धन दौलत कुछ नहीं बचाऊँगा,/बचाऊँगा अपना और पुरखों को,/जंगलीपन,/क्योंकि अब मनुष्य कों,/समर्पण अस्तित्व हो जाएगा खत्म,/तो यही आदिवासीपन ही,/जंगलीपन ही,/बचायेगा,/बनाएगा, /सिरजेगा,/चौथे महायुद्ध के बाद जन्में मनुष्य को,' ....**[09]

ग्रेस कुजूर ने आदिवासियों की संवेदनाओं को बड़े गहरे स्तर पर उकेरा है। जहां एक ओर उसकी कविताओं में अतीत का मोह है, वहीं दूसरी ओर आदिवासियों की सामाजिक यथार्थवादी चित्रण के साथ एक चेतनात्मक लहर भी। बिम्ब, प्रतीक, मिथक एक साथ उसकी कविताओं में देखने को मिलते हैं। जहाँ एक ओर वह आदिवासी समाज को सचेत करते है; तो दूसरी ओर राजतंत्र से लेकर सामान्य मनुष्य तक अपनी आवाज पहुँचा रहे हैं। '**अब कहाँ है वह अखरा?/किसने उगाए हैं वहाँ/विषैले नागफनी/बार–बार उलझता है जहाँ/तुम्हारी 'तोलोंग' का फुदना/क्यों उदास है आज/'पटवा' के उजले पंख?/हवा में नहीं तैरते अब/'अंगनई' और 'डमकच' के गीत/सिल गए हैं होंठ मेरे/धतूरे के कांटों से...**[10]

आजादी के बाद हिन्दी कवियों ने आदिवासियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का वर्णन अपनी कविताओं के माध्यम से किया है। जिसमें भवानीप्रसाद मिश्र, ज्ञानेन्द्रपति, नागार्जुन, विनोद कुमार शुक्ल, लीलाधर मडलोई, रणेन्द्र, रमणिका गुप्ता, भालचन्द्र जोशी, कपितदेव सिंह चौहान, डॉ. आद्या प्रसाद

सिंह, दामोदर मोरे, तेजराम शर्मा, सुदीप बनर्जी, सुरेन्द्र कुमार नायक, लखनलाल पाल, चन्द्रकान्त देवताले, अशोक सिंह, डॉ. भीम सिंह, हरिशंकर अग्रवाल आदि समीचीन है।

हिन्दी के प्रमुख कवि भवानीप्रसाद मिश्र अपने काव्य की ज्यादातर प्रेरणाएं आदिवासी क्षेत्रों से ही लिया है। वह आदिवासी संस्कृति की विविधता को अभिव्यक्ति के समान पक्षधर हैं। वह आदिवासी संस्कृति और विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृतियों के बीच सेतु निर्माण का कार्य करते हैं। आदिवासी गांव का यथार्थ चित्रण करते हुए लिखते हैं–**गांव में झोपड़ी है, मगर घर नहीं/झोपड़ियों के फटकियां हैं, दर नहीं है/धूल उड़ती है धुँए से दम घुटा है/मानवों के हाथ से मानव लुटा है।/सो रहा शिशु कि माँ चक्की लिए है/ पेट पापी के लिए पक्की किए है।**[11], शोषण, गरीबी, बेरोजगारी के बाद भी वह मस्त होकर जीवन जीने की कला में पारंगत है। यही उनकी ऊर्जा का स्त्रोत भी है। वह अपनी सामूहिकता और सांस्कृतिक जीवन मूल्यों को कभी नहीं छोड़ता है। पारिवारिक और सामाजिक जीवन के सभी प्रकार के संघर्षों का सामना निर्भीक होकर करता है। यही उसका सौन्दर्य भी है। मिश्र जी की इस कविता के माध्यम से समझा जा सकता है। **बूढ़े या बच्चे या जवान/औरतें और मर्द मिलकर कर रहे हैं/काम खेत में और मैदान में /और पहाड़ पर/नदी के पानी में/नदी की रेत में/सोच रहा हूँ पड़ा–पड़ा मैं बिस्तर पर/और महसूस कर रहा हूँ/अपने को दरिद्र।**[12] गैर आदिवासी कवियों की रचनाओं में मानवीय संवेदना और उनके सामाजिक जीवन को वे समता के धरातल पर सहानुभूति पूर्वक प्रस्तुत करते हैं।

विनोद कुमार शुक्ल ने अपनी कविताओं के माध्यम से स्पष्ट किया है कि पिछले तीस वर्षों का समय आदिवासियों के लिए तबाही लेकर प्रस्तुत हुआ है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां, भूमण्डलीकरण के कारण आज आदिवासी संस्कृति खतरे में आ गई है। वर्तमान समय में आदिवासी समाज के विस्थापन में वृद्धि हुई है। इस पीड़ा पर विनोद कुमार शुक्ल लिखते हैं– जो प्रकृति के सबसे निकट है**/जंगल उनका है/आदिवासी जंगल के सबसे निकट हैं/इसलिए जंगल उन्हीं का है/अब उनके बेदखल होने का समय है/यह वही समय है/जब आकाश से एक तारा बेदखल होगा/एक पेड़ से पक्षी बेदखल होगा/ आकाश से चांदनी/बेदखल होगी/जब जंगल से आदिवासी/बेदखल होगे।**[13] समकालीन कवियों की कविताओं में विकास के जो मानक सरकार द्वारा अपनाए उसके प्रति प्रतिरोध स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस पर कवि ज्ञानेन्द्रपति लिखते हैं–**इस आदिवासी गांव के आंगन से गुजरती हुई यह सड़क/अत्याचारियों के गुजरने का रास्ता है/यह इनके पैरों से नहीं बना/यह इनके पैरों के लिए नहीं बना/बड़े–बड़े रोलर आए थे/ लुटेरे वाहनों के आने से पहले/धरती कँपाते धीरे–धीरे चलते हुए विशालकाय रोड रोलर.....**[14] इन कवियों ने आदिवासियों के दुःख दर्द को उनकी समस्या और पीड़ा को मुखर अभिव्यक्ति प्रदान की है।

आदिवासियों के जीवन में प्रकृति का अत्यधिक महत्व है। वह वनों, नदियों, पहाड़ों को पूजते हैं। नदियों किनारे बसे हुए आदिवासियों के गांव को, उनकी संस्कृति को देखकर नागार्जुन लिखते हैं। **नाच की थिरकन..../गीत का अलाप..../प्यार की सिरहन....../जीत का हुलास...../क्या नहीं है वह?/माँ भी है, बेटी भी है, बहन भी है, बहू भी है/ सहेली भी है, प्रेयसी भी है/साथिन है सुख–दुःख की, सब कुछ है/क्या नहीं है वह अपनी जनता के लेखे**[15] नागार्जुन जी की दूरदर्शिता को उनकी कविता 'उद्‌बोधन' (1947) में देखा जा सकता है, जो युगधारा में संकलित है। यह कविता वर्तमान समय में भी प्रासंगिकता हैं, क्योंकि जब विकास और विस्थापन के कारण आदिवासियों की अस्मिता और अस्तित्व संकट में है। इस कविता में वह आदिवासियों को जागरूक करते हुए लिखते है–**सोना–चांदी लौह और इस्पात....../अन्दर दबी पड़ी हैं सौ–सौ खान/उठो, उठो, उठ जाओं विन्ध्य महान/मांग रहा युग तुमसे जीवन दान/भील, गोड़, हो, मुण्ड़ा और संथाल/अब भी विकसित होगे तेरे बाल/देखों तुमसे मांग रहे द्युतिदान/ निर्विकल्प निश्चल सौ–सौ दिनमान/ उठो, उठो, उठ जाओं विन्ध्य महान।**[16] हिन्दी कवियों ने आदिवासी जीवन से जुड़े हुए प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन सहज व सरल भाषा में किया है।

विस्थापन के उपरान्त टूटे बिखरे और असहाय स्थिति में आदिवासी या तो सघन वनों की ओर पालायित हुए या फिर शहरों की ओर पालायित हुए। दोनों ही स्थितियों में उन्हें अपनी अस्मिता और अस्तित्व को बचाने में संघर्ष करना पड़ रहा है। आधुनिकता के इस दौर में आगे निकल चुके सभ्य समाज पूरी सत्ता अपने हाथों में लेकर इन्हें कठपुतली की तरह नचाते रहे हैं। इस प्रकार की घटना हमारे मन मस्तिष्क में एक प्रश्न खड़ा करती है कि हम वाकई आधुनिक समाज के सभ्य व्यक्ति हैं या फिर कपड़ों में

लिपटे सभ्य बनने का केवल अभिनय कर रहे हैं। इस पीड़ा को लीलाधर मंडलोई की कविता में भलिभांति समझा जा सकता है। '**इस दृश्य में सिर्फ अंधेरा है/और हिकारत से भेदती निगाहें/डरते रहे लोग मृत्यु के भय से यदि/और सुस्त हो गई सरकार/सूर्य जो दिखा सके यह हँसती चहचहाती दुनिया/और मुक्त कर दे एक बारगी सदियों के सघन अंधेरा से।**'[17] कपित देव सिंह चौहान की कविता 'पलाश' में ग्रीष्म की जलन–तपन का वर्णन किया गया है। '**जल रहे पलाश वन/धधक रही दिशाएं/आतप को साथ लिए/दौड़ती हवाएं/प्यासे हिमवान के/माथे पसीना ढूँढ रही छाया/जेठ का महीना/फटी हृदय धरती/सूखी नदी की/बढ़ती व्यथाएं**'[18] समकालीन कवियों ने जंगल–पर्यावरण के नाम पर अदिवासी समाज को हाशिए से उठाकर मुख्यधारा की कविताओं से जोड़ दिया है। उनका मानना है कि जंगल का विनाश होना मानव जीवन का भी नष्ट होना है।

हिन्दी आदिवासी साहित्य में रणेन्द्र आज सशक्त हस्ताक्षर है। रणेन्द्र का साहित्य आदिवासी चेतना से युक्त है। इन्होंने काव्य लेखन में आदिवासी जीवन स्थिति को उजागर करने का प्रयास किया है। उनका काव्य संग्रह 'थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ' में संकलित कविता **'अवसान वेला पर'** के माध्यम से समझा जा सकता है–**मुख्यधारा की फनफनाती लहरों पर/सवार होकर आए/आरियाँ, बुलडोजर, डम्फर, बाजार/दतर, कुर्सियाँ, वर्दी, हथियार/मोटी–मोटी कानूनी किताबें/माननीय भाष्यकार/सभी महान संस्कृति के पहरूए/महान लक्ष्य से प्रेरित होकर।**[19]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी आदिवासी कविता लेखन में आदिवासियों एवं गैर आदिवासियों द्वारा पर्याप्त कविता लेखन हुआ है। जिसमें आदिवासी समाज की सांस्कृतिक विशिष्टता को उकेरने के साथ–साथ उनके जीवन में हो रहे उथल–पुथल को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। आदिवासी कविता लेखन में आदिवसी समाज को मथने वाली समस्याएं हैं, उनकी दुविधाएं हैं, तनाव हैं और कोमल भावनाएं हैं, जो यथार्थ एवं प्रमाणित रूप से चित्रित है; जिसे भोगे हुए जीवन की निष्पत्ति भी कही जा सकती है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. अम्बेडकरवादी सौन्दर्यशास्त्र और दलित आदिवासी–जनजातीय विमर्श; डॉ. विनय कुमार पाठक, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली, 2006, पृ. 650।
2. वही; पृ. 647।
3. आदिवासी केद्रित हिन्दी साहित्य, डॉ. ऊषा कीर्ति राणावत, अतुल प्रकाशन, 57–पी, कुंजबिहार–II, यसोदा नगर, कानपुर, 2012 पृ 194।
4. वही; पृ. 196।
5. पलाश–वन, डॉ. इन्द्र बहादुर सिंह, सं. प्रा. अजीत कुमार राय, सरस्वती प्रकाशन, 4–ए, चन्द्रमहल, सेण्टपाल स्ट्रीट, नयागाँव, दादर (पूर्व), मुम्बई, 2002 पृ. 89।
6. कथाक्रम, संपादक शैलेन्द्र सागर, अक्टू0–दिस0 2011, पृ. 229।
7. अपने घर की तलाश में, निर्मला पुतुल, रमणिका फाउन्डेसन, नई दिल्ली, संस्करण 2004 पृ. 14।
8. वही; पृ. 10।
9. अम्बेडकरवादी सौन्दर्यशास्त्र और दलित आदिवासी–जनजातीय विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली, 2006 पृ. 651।
10. समकालीन आदिवासी कविता, सं. हरिराम मीणा; अलख प्रकाशन, जयपुर, 2013 पृ. 19।
11. भवानीप्रसाद मिश्र, संपादक डॉ. विजय बहादुर सिंह, प्रकाशक राजपाल एण्ड संन्स, दिल्ली, संस्करण 1992। पृ.61
12. समकालीन सृजन : भवानीप्रसाद मिश्र के आयाम, सं. डॉ. शम्भूनाथ, अंक 16, 1995, 20, मक्කररोड़, कलकत्ता, ISSN 2320-5733 पृ. 249।
13. वागर्थ, विनोद कुमार शुक्ल, अंक 185, भारतीय भाषा परिषद् की मासिक पत्रिका, अंक 185, सितम्बर 2010, कोलकाता, ISSN 2394-1723 , आमुख।
14. संशयात्मा, ज्ञानेन्द्रपति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 2004 पृ. 20।
15. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं –2, संपा. शोभाकांत मिश्र, वाणी प्रकाशन, 4695, 21 ए, दरियागंज, नई दिल्ली 1984 पृ. 172।
16. www.gadyakosh.org/gk/vikas/visthapan/adiwasi/sanjay.
17. काला पानी, लीलाधर मंडलोई, राधाकृण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006 पृ. 19।
18. फूल और पंखुड़ियां, संपा. डॉ. इन्द्र बहादुर सिंह, प्रकाशक भारतीय जनभाषा प्रचार समिति, ठाणे, 2001 पृ. 220।
19. .थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ; रणेन्द्र, शिल्पायन, शहादरा, दिल्ली, 2010 पृ. 21।

चन्द्रकिशोर जायसवाल की कहानियों में स्वैर कल्पना

धनेश दत्त पाण्डेय *

राजेन्द्र यादव कहते हैं, "कहानी मूलतः अपनी प्रकृति में उतनी हवाई (या अमूर्त) हो ही नहीं सकती क्योंकि उसमें लोग होते हैं, उनके सन्दर्भ और संबंध होते हैं, कुंठाए; संघर्ष और स्वप्न होते हैं। वह अनिवार्य रूप से एक सामाजिक विधा है। व्यापक और तात्विक होने के लिए निश्चय ही हमें अमूर्तन में जाना पड़ता है। ('हंस' की सम्पादकी 'मेरी तेरी उसकी बात' : फरबरी 1992)।

तो क्या एक कथाकार, जो अन्य लोगों की तरह ही सपने देखने का, सुगंध; स्वाद और सौन्दर्य अनुभव करने का, अपने भीतर तेज; ताप और शीतलता संजोने का, अपनी बुद्धि और चातुर्य को संरक्षित करने का, जुर्म; अत्याचार और शोषण का प्रतिकार करने का और अन्य मानवीय तत्वों को अपने भीतर संरक्षित और सुरक्षित करने का हक़ रखता है, उसे कहानी रचने के लिए अमूर्तन में भी जाना पड़ सकता है !... इस उहापोह का ज़वाब भी राजेन्द्र यादव अपने उक्त लेख में ही दे देते हैं। कहते हैं, "अमूर्तन आकार को देश–काल के बन्धनों से मुक्त करता है– सार्वभौमिक और सार्वकालिक बनाने के आग्रह में प्रत्यक्ष को प्रत्ययों और अवधारणाओं में निचोड़ डालता है। "

मान्यता तो यह है कि सार्वभौमिक और सार्वकालिक का निर्माण श्रृष्टि–रचयिता का आग्रह है जिस कारण कोई भी नश्वर अमरता को ग्रहण कर लेता है और अमरता कहीं न कहीं नष्ट होकर फिर से एक परिवर्तित अमिटता की पौध उगाने लग जाती है। किसी भी रचना के कालातीत हो सकने की मौलिक शर्त होती है उसमें द्वंद्वमय और संघर्षमय जगत के विक्षुब्ध गति को जकड़कर उसके भीतर हिचकोले खा रहीं कामना, चेष्टा, आयास, भ्रान्ति, दुःख–दर्द आदि की प्रतिक्रियाओं को विक्षेपित कर देना। इस कारण ही रचनाकार को सूक्ष्मदर्शी पुरुष होकर सब भूतों में अपनी आत्मा को और अपनी आत्मा में सब भूतों को देखना होता है। तब जाकर कहीं वह एक चेतनवादी रचना का सृजन कर पाता है, चाहे यह सृजन कला के लिए हो कि साहित्य के लिए।

तो, स्पष्ट है कि किसी भी साहित्यकार को दो स्तरों पर जीना ही पड़ता है– मूर्त और अमूर्त होकर। मूर्त वह स्तर है जहाँ उसे समाज के अन्य प्राणियों की तरह कालोचित व्यवहार करना होता है और अमूर्त वह स्तर है जब वह साहित्य–सृजन करता होता है। मूर्त होकर वह अपने समाज से बहुतायत में अनुभव बटोरता है। अमूर्त होकर वह इन अनुभवों को गूंथ–मांजकर अपने ही पार्थिव जीवन का पुनर्प्रकाशन करता है। यह पुनर्प्रकाशन इतना सहज नहीं होता। होता तो हर कोई आसानी से साहित्य या कला का सर्जक हो जाता ! सर्जक होने के लिए उसे अपने अनुभवों को अपनी कल्पना के साथ गूंथ कर एक परिपाक तैयार करना होता है। परिपाक की सिद्धता हासिल कर सकने के लिए उसे कभी–कभी आकाश विचरण भी करना होता है जो सामान्यतः स्वस्थ मनः स्थिति नहीं कहलाता है। परन्तु अपने इस पागलपन को काबू में करके ही वह एक नया जीवन कागज़ पर उतारता है जो उसकी कहानी होती है। कहानी सत्य का आभास तो देती है परन्तु वह जीवन नहीं होती। इस आभासी सत्य को जीवन की एकरूपता में परिवर्तित जीवन उतार लाने का जो अभ्यास एक कथाकार द्वारा किया जाता है, वह उसकी स्वैरकल्पना से ही सम्भव होता है।

स्वैरकल्पना को जितनी स्पष्टता और अविकलता में ई. एस. फॉर्स्टर ने व्याख्यायित किया है उतनी स्पष्ट व्याख्या मैंने कहीं और नहीं पायी। सम्भव है, इसका एक बड़ा कारण मेरी अत्यल्प पठनीयता हो, जिसे स्वीकार करने में मुझे कोई गुरेज नहीं है। वे कहते हैं, "उपन्यास (जो मूलतः कहानी ही है) में काल, मानव, तर्क, उनसे व्युत्पन्न स्थितियाँ या प्रारब्ध से अधिक कुछ और भी हैं। उस 'अधिक' से मेरा तात्पर्य उनसे नहीं है जिससे ये पक्ष बहिष्कृत हों, न उनसे जिसमे ये पक्ष निहित हों अथवा समाविष्ट हों। मेरा तात्पर्य उससे है जो एक प्रकाश पुंज के सामान उन पक्षों के मध्य से अनअवरोधित निकल जाता है। जो स्थल विशेष पर उनसे घनिष्ट रूप से सम्बद्ध है और उनकी सभी समस्याओं को मंदगति से प्रकाशित करता है किन्तु अन्य

*** "हिमाद्री", 54,राजेश्वर नगर, लेन 1, स्ट्रीट 5, सहस्त्रधारा रोड, देहरादून (उ. ख.)**

स्थल पर उनके ऊपर से त्वरित गति से ऐसे निकल जाता है, जैसे उसका अस्तित्व न हो। इस प्रकाश पुंज को हम दो संज्ञाएँ देगें– स्वैरकल्पना (FANTASY) एवं भविष्य दृष्टि (PROPHECY)"।

इस विमर्श में हमारा उद्देश्य चंद्रकिशोर जायसवाल की कहानियों में स्वैरकल्पना अथवा फंतासी पर बात करनी है, अस्तु 'भविष्य दृष्टि' वाले पक्ष को हम अभी परे करके चलते हैं; समय और सोच ने परमिट किया तो इस पर चर्चा आगे के किसी लेख में कर ली जायेगी।

जिसे फॉर्स्टर ने 'अधिक कुछ और भी है' का होना बताया उसे ही राजेन्द्र जी ने कहानी में मूर्त और अमूर्त का सहअस्तित्व माना है और यह अमूर्तन ही फंतासी यानी स्वैरकल्पना है। आइए, इसे चंद्रकिशोर जायसवाल जी की कुछ कहानियों के नज़रिये से समझने का प्रयास करते हैं।

"मर गया दीपनाथ" में दीपनाथ का कहीं कोई स्थूल या दैहिक बध नहीं करता और नहीं ही वह अपनी आत्महत्या करता है। अनजाने ही वह एक दंगे के बीच फँस जाता है और उसकी प्राण–रक्षा का भार एक व्यक्ति, जो विपक्षी समुदाय का है, अपने कर्तव्य बोध के कारण अपने कंधों पर उठा लेता है। परन्तु, अपने मन में वर्षों से पालित विपक्षी समुदाय के लिए अविश्वास के वशीभूत दीपनाथ एक पकड़ में न आने वाले उपाय से अपने संरक्षक की सुरक्षा से निकल कर रूपोश हो जाता है। अपनी इस असफलता पर उसका संरक्षक इतना उद्विग्न हो जाता है कि वह अपने ही बेटों पर उसकी हत्या कर देने का शक कर बैठता है। यह शक उसे इस कदर उद्भ्रांत कर देता है कि संरक्षक अपने बेटों को नसीहत देता है कि या तो वे दीपनाथ को उसके सामने जिन्दा प्रस्तुत करके अपने ऊपर लगे आरोप को धोंयें या फिर अपने ही बाप के हाथों अपने मृत्यु–दंड के लिए तैयार हो जाएँ। दीपनाथ को जब अपने संरक्षक के इस मानवीय कर्तव्य के सर्जनशील संकल्प की ख़बर मिलती है तो वह अपने व्यष्टिभूत अज्ञान, और मिथ्या अवधारणाओं को लेकर आत्मग्लानि से भर उठता है, इतना कि अब उसे अपने प्राणधारण से ही विक्षोभ हो जाता है। यहीं उसकी आत्मिक मौत होती है !

होता यह है कि हमारे मनोभूमि के समतोल के अनुसार, बाह्य और अंतरज्ञान, और उस ज्ञान को हासिल करने के साधन, यथा, हमारा दैनंदिन व्यवहार, अनुभव और क्रियाएं –खुले रहते हैं जो अवकाश पाते ही हलचल पैदा करते हैं और उस समय हमारे जीवन की गति भी निरुपित करते हैं। व्याखान में अथवा दर्शन शास्त्र में इस तथ्य को आसानी से व्यक्त किया जा सकता है परन्तु किसी मनोवृति को लेकर एक प्रभावोत्पादक कहानी गढ़ना इतना सहज नहीं होता। यहाँ ही कथाकार की परीक्षा है कि वह इतनी जटिल प्रकृति और वृत्ति को काहानी की सहजता में कैसे उतार सकता है ! यह कथाकार की अमूर्तन कला और उसकी स्वैरकल्पना के कुशलता की परीक्षा होती है। कथाकार अपने अर्जित और कल्पित मनोभाव को दृश्य जगत की अनुभूति में बाहर ले आता और बना रखता है। यह काम वह अपने कालगत आत्माविर्भाव को उसकी सतत पुरावृति की पद्धति से अपने पात्रों के व्यवहार को निर्दिष्ट करके ही कर पाता है। यदि कथाकार सिद्धहस्त है तो उसका यह अभ्यास सफल होता है और उसका काल्पनिक पात्र जीव–जगत का ही एक जीता–जागता पात्र बनकर पाठकों के ह्रदय में विश्रांति पाता है। दंगों की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी यह लम्बी कहानी इस कारण ही एक कालजयी कृति बन पायी है। कहीं कोई मामूली सी भी दंगाई घटना नहीं, कोई दृश्य त्रासदी नहीं फिर भी नाटकीय घटनाओं को उपस्थित करके वायवी सोच के आधार पर इतने रोचक दृश्य, अनेकानेक घटनाओं का सम्पुंजन, दुर्लभ चरित्रों का सरलीकरण और टुकड़े–टुकड़े में जमा होकर एक सम्पूर्ण सामाजिक जीवन का प्रस्तुतिकरण ! कई–कई नैतिक प्रश्न और मानवी अनुभव के इतने सारे अंश उपस्थित कर दिए गए हैं कि पाठक पढ़ते–पढ़ते अपने जाने–अनजाने पापों को धोकर शुद्ध हो जाने और प्रवृति–प्रधान नैतिक सदाचारिता को प्राप्त कर लेने के लिए विकल हो उठता है।

एक दूसरी कहानी लीजिये, 'दुखिया दास कबीर'। कहानी की शुरुआत होती है इस कथन से, "ऐसी हर डोर टूट चुकी थी जो नकछेदी दास को यह धरती तो क्या, अपने गाँव सिमराही तक से बाँध कर रखे!"

नकछेदी दास एक अनपढ़, सीधा–सादा देहाती बूढ़ा है। कह सकते हैं कि वह आसुरी प्रवृति वाला उदण्ड पुरुष नहीं है, अपने मनोविकारों का दास नहीं है। वह शान्ति, संयम और कर्तव्य–निष्ठा के साथ एक सामान्य सा जीवन जीना चाहता है। 'कोई औलाद नहीं है उसके, न बेटा न बेटी। पिछले साल घर वाली भी गुजर गयी। दूर–पास का कोई रिश्तेदार भी नहीं था, साला–बहनोई तक नहीं। गाँव में कोई यार–दोस्त भी नहीं था जिसके पास दो घड़ी बैठकर मन लगा ले। एक गाय तक नहीं थी उसके पास जिसे वह माँ की

तरह प्यार करे और जिसके बछड़े को बेटे की तरह दुलार–मलार। पूरे गाँव में एक कुत्ता तक नहीं था जो उसे देखते ही पूंछ हिलाने लगे। उसके घर कोई बिल्ली नहीं आती थी, किसके लिए दूध ख़रीद कर रखे वह ! नितांत अकेला रह रहा था वह बूढ़ा इस दुनिया में। '

कहानी की देहरी पर यह यूटोपिया खड़ी कर दी गयी एक ऐसे निरीह पात्र को उठाकर कि जिसकी तरह का सामान्य–सा बूढ़ा हर गाँव में अपनी मायूसी भरी जिन्दगी काटता होता है। मगर कहानी की जटिलता शुरू होती है उन 'अलाय–बलाय' खबरों को सुनने से जिससे वह बूढ़ा विचलित हो जाता है। इन खबरों को सुनने का पहला परिणाम तो यह होता है कि उस बूढ़े की इन्द्रियाँ और शरीर उपस्थित कर्म और उसके भौतिक फल से और फिर जीवन से ही उसका चित्त उचाट हो जाता है। और, फिर वह इस दुनिया और अपने बचे–खुचे जीवन के लिए भी एक ही प्रार्थना करने लग जाता है कि 'कभी कोई राजा पागल नहीं हो ताकि दुनिया परमाणु युद्ध और महायुद्ध कि विनास से बची रह सके। '

मनुष्य अपने ही स्वार्थों, वासनाओं और मनोविकार के दासत्व में धंसा रहकर, समाज और दूसरों के हित का भी हनन कर जाता है। इसका परिणाम अभूतपूर्व संहार और विनास और कभी–कभी तो गृह युद्धों के रूप में सामने आता है जो सम्पूर्ण मनुष्यता को संकट में डाल देता है। परन्तु संवेदनशील मनुष्य अपने कर्म के आशय के प्रति स्वयं तो सचेत होता ही है, अन्य को भी सचेत हो सकने की कामना करता है। यहाँ भी कठिनाई वही उपस्थित हो रही है कि नीति शास्त्र और दर्शन के लिए तो इस गूढ़ ज्ञान को आसानी से अनावृत किया जा सकता है परन्तु साहित्य में कहानी रचकर इसे लोक आत्मा तक कैसे पहुंचाया जाय कि साहित्य शिव और सुंदर होकर कल्याणकारी हो सके ! इसके लिए रचनाकार प्रतीकों, कल्पानाओं, मिथकों और किम्वदिन्तयों का सहारा लेता है क्योकि यहाँ उसे एक अमूर्त व्यवहार और सिद्ध्यांत को मूर्त करना होता है।

इस कहानी में मामूली–सा दिखने वाला एक व्यक्ति के मानवी चिंतन और उसकी आत्म–व्यथा को एक यूटोपिया के सहारे कथानक में पिरोकर कथाकार राज्य अधिकार और मनुष्यों पर शासन करने की लालसा पर इतना घातक प्रहार करता है कि इसे पढ़ता हुआ पाठक अपना सुध–बुध खोकर तिलमिला उठता है। पूरी कहानी एक व्यक्ति के मानसिक विद्रोह का स्वरूप सहज और स्वाभाविक फैन्टासी के ताने–बाने से बुनी गयी है।

किसी भी यूटोपिया का निर्माण सिर्फ और सिर्फ तब होता है जब कहानीकार अपने आस–पास के बेहद जटिल यथार्थ को आत्मसात करते हुए उन परिस्थितियों से खुद भी गुजरता हो। यह कहानी लिखने के नाम पर बातों का हवा महल तैयार करके या सुनी–सुनायी बातों की पृष्ठभूमि पर लिफाफेबाज़ी का पंगा गढ़कर नहीं होता, हो ही नहीं सकता। इसके लिए लेखक अपने मूर्त रूप में खुद उन परिस्थितियों का भोक्ता बनता है, फिर अपने भोगे हुए पाषण्ड, रुढियों, फरेबों, छलनाओं, वंचनाओं और अफवाहों की जुगाली करते हुए अपने भीतर एक ऐसे जगत की रचना करता है जिसकी प्रकृति उस जगत की प्रकृति द्वारा प्रमाणित नहीं होती जिसमे हम रहते हैं। प्रेम, शान्ति स्थिरता और नित्यता के पूर्ण सत्य से वंचित होकर भी लेखक का यह काल्पनिक जगत उसके लिए सुखप्रद और संतोषदायी होता है। इस जगत में वह अपने मनोरूप किरदार खड़ा करता है जिसके जीवन का प्रत्येक श्वाँस और मृत्यु का भी प्रश्वांस होता है। इन किरदारों का अस्तित्व संशयग्रस्त होकर भी संघर्षात्मक और प्रयासमय होता है जिस कारण ही कहानी यथार्थ को मूर्तिमंत करके पाठकों की अपेक्षा पर खरा उतरती है।

जायसवाल जी की एक अन्य कहानी है– आघातपुष्प। पुष्पों की संस्कृति की पृष्ठभूमि पर निष्कलुष और वासना रहित प्रेम और आकर्षण की यह एक ऐसी कहानी रची गयी है जिसमे कहीं भी, कुछ भी स्थूल है ही नहीं, प्रत्युत सब कुछ दिव्य और प्रकाशमय होकर जगमग हो उठता है।

कहानी का चित्रकार नायक है, 'समीर'। वह "हजारों चित्रों की बजाय, अब सिर्फ एक चित्र बनाना चाहता है। एक ऐसा चित्र जिसके लिए संसार की सुंदरियाँ चित्रकारों का निहोरा करती आयीं हैं और जो सुन्दरी के सौन्दर्य को शाश्वत कर देता हो। "नायिका, जिसकी यह प्रबल इच्छा है कि वह अपना एक ऐसा चित्र इस चित्रकार से बनवा ले जो उसके सम्पूर्ण यौवन और सौन्दर्य को सदा के लिए संरक्षित कर सके, इस हेतु खुले मन से चित्रकार को अपना प्रस्ताव दे देती है। चित्रकार तैयार तो हो जाता है परन्तु इस शर्त के साथ कि इसके लिए नायिका को नग्न देह का चित्र बनवाना होगा !

इस प्रस्ताव मात्र से लडकी की धर्मनिष्ठा कड़मड़ा उठी, आधारनिष्ठा आहत होने लगी, चरित्रनिष्ठा डगमग होने लगी। किसी नवयौवना के लिए ऐसी विकलता स्वाभाविक भी थी। परन्तु चित्रकार निश्चल रहा। यह निश्चलता भी स्वाभाविक थी। वह एक रचनाकार है। रचनाकार को किसी भी विभ्राट का सुख–दुःख नहीं होता। उसे सृष्टि का सुख–दुःख भी स्पर्श नहीं करता। जो एक सुंदर कृति की रचना करने का उमंग और हुनर पालता है, वह निर्लिप्त होता है। ...लडकी मन ही मन कुछ सोचती है, फिर समुन्द्र हो जाती है, शांत, अथाह, निमग्न ! वह चित्रकार से एक सवाल पूछती है, "ऐसा कैसे हुआ, चित्रकार, कि कवि प्रसिद्धियों में एक भी पुष्पवृक्ष ऐसा नहीं जिसे पुष्पित करने के लिए एक सुन्दरी अपने वस्त्र उतारे ?"

जबाव में चित्रकार का प्रतिप्रश्न तन कर खड़ा होता है, "नारी की नग्न देह का चित्रांकन क्या वर्जित है चित्रकार के लिए ?"

नायिका जबाव देने की बजाय एक दर्शन उड़ेल कर रख देती है, "वर्जित है यह मैं नहीं कहूँगी, मैं यह कहना चाहूंगी कि नग्न देह के सौन्दर्य की बजाय चित्रकार अपने चित्र के सौन्दर्य पर ध्यान दे। वह चित्र सुंदर हो सकता है मगर उसमे नग्न देह का सौन्दर्य नहीं होगा। " यह दर्शन तत्वनिष्ठा का है जहाँ विचारनिष्ठा दुम दबाये खड़ी रहती है और सर्जक का निर्माण पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। कहानी में इस दर्शन को उतारना एक अत्यंत कुशल स्वप्नशील रचनाकार से ही सम्भव हो सकता है। इस हेतु कहानीकार ने फूलों की संस्कृति को अपनी फंतासी में जगह देकर कहानी में यथार्थ की सत्ता स्थापित की है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी की कहानी 'अशोक के फूल' पर दृष्टिपात करते हुए नामवर सिंह कहते हैं, "अशोक के फूल केवल एक फूल की कहानी नहीं, भारतीय संस्कृति का एक अध्याय है; और इस अध्याय का अनंगलेख पढने वाले पहले व्यक्ति हैं हजारी प्रसाद द्विवेदी। पहली बार उन्हें यह अनुभव हुआ कि 'एक–एक फूल, एक–एक पशु, एक–एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर, हमारे सामने उपस्थित हैं। अशोक की भी अपनी परंपरा है। आम की भी है, वकुल की भी है, चम्पे की भी है। सब क्या हमें मालूम है ? जितना मालूम है उसी का अर्थ क्या स्पष्ट हो सका है ?" ("दूसरी परंपरा की खोज" :नामवर सिंह, पहला संस्करण, पृष्ठ 86)।

फूलों की सारी परम्परा, तो तय है कि चन्द्रकिशोर जायसवाल भी नहीं जानते हैं। मगर जो वे जानते हैं और जिसे वे अपने पाठकों को भी जना देना चाहते हैं वह है कहानी–नायिका के वे उदगार जिसका साक्षात्कार वह अपने मृत्यु–लोक में नहीं कर पायी है बल्कि यह मुठभेड़ उसे उसकी फंतासी–लोक में हो रही है। यह लोक उसे अतिशय प्रिय है क्योकि यहाँ से वह साहस ग्रहण करती है, चपलता ग्रहण करती है और ग्रहण करती है मुखरता। यह लोक उसकी लोक–लाज के बंधन को तोड़ देता है, यह लोक उसे नग्नता की नग्न परिभाषा और संस्कारों की मुक्कमल मर्यादा सिखलाता है। वह चित्रकार से बेधडक कहती है, "यक्ष वृक्षों के अधिपति रहे हैं और उर्वरता के देवता। मैंने ऐसी कई मूर्तियाँ देखीं हैं सन्तान की कामना करने वाली स्त्रियों की जो वृक्ष के पास जाकर यक्ष से प्रार्थना करती हैं। वे नंगी हैं और केवल कमर में एक चौड़ी मेखला पहने हुयी हैं। क्या आप इस रूप में चित्रित करेंगे ? ...मैं मातृत्व के लिए वह मेखला भी उतार दूंगी।..." यहाँ जायसवाल जी एक कथा सुना रहे हैं, फूलों के बहाने मानवी चेतना की, अपेक्षा की आकांक्षा की।

फॉर्स्टर बताता है कि 'कहानी पाठक से कुतूहल की अपेक्षा करती है, चरित्रों के लिए पाठक में मानवीय भावनाएं एवं जीवन मूल्य अपेक्षित है, कथानक के लिए बुद्धि एवम् स्मरण शक्ति। स्वैरकल्पना हमसे क्या अपेक्षा करती है ? यह हमसे कुछ अधिक मूल्य मांगती है। वह, हमें एक कलात्मक वस्तु द्वारा जो सामंजस्य अपेक्षित है, उससे भी अतिरिक्त सामंजस्य के लिए वाध्य करती है। अन्य उपन्यासकार कहते हैं, 'यहाँ वह कुछ है जो आपके जीवन में घटित हो सकता है।' स्वैरकल्पना लिखने वाला कहता है, 'यहाँ वह कुछ है जो घटित नहीं हो सकता। मैं आपसे कहूँगा कि आप प्रथमतः मेरी पुस्तक को एक पूर्ण इकाई के रूप में और फिर उसमे कतिपय बातों को स्वीकारें।'

यानी, 'पहले इस्तमाल करें फिर विशवास करें' वाला फोर्मुला' ! फंतासी लिखने वाला लेखक अघटित होने की सच्चाई को पहले अपनी पीठ पर उठाता है और फिर इसे किसी घटित यथार्थ से भी ज्यादा बड़ा यथार्थ बना कर एक विक्रम के मस्तिष्क में डाल देता है। यह विक्रम चतुर चालाक होकर खुद किसी बेताल के कधों पर अपनी सवारी कसके डगर–डगर घूमता है और अघटित के यथार्थ का पूरी

ईमानदारी से ऐसा पर्दाफांस करता है कि यह परिवर्तित यथार्थ ही जीवन–यथार्थ हो जाता है। यह स्वैरकल्पना की ताकत होती है। बेताल लेखक का कथानक है, विक्रम स्वयं लेखक और पाठक है प्रेक्षक। पाठक की अपेक्षा पूरी करने में लेखक से थोड़ी भी चूक हुई नहीं कि गई भैंस पानी में ! और पाठक के कौतूहल को लेखक ने शमित किया नहीं कि उसकी धोती आकाश में ! स्वैरकल्पना इसके लेखकों के लिए दुधारी तलवार होती है। यह उसकी लेखकीय कुशलता की अग्नि परीक्षा होती है, अभिशाप भी; वरदान भी। जायसवाल जी ऐसे प्रयोगों में निष्णात हैं। किसने देखा कुसुमित तिलक पुष्प में किसी चित्रकार की परछाईं, पुष्पित चम्पा के भीतर से किसी सुन्दरी को मुस्कराते किसने देखा, प्रियंगु से संवाद कौन साध सकता, नमेरु को अपना विरह–गीत कौन सुना सकती, कर्णिकार को अपने नाच का अनुगामी कौन बना सकता, कुरबक को किसी सच्चाई का साक्षी कैसे बनाया जा सकता, अशोक क्या सच ही रूपसी के रूपाघात से नहीं खिलकर उसके पदाघात से खिलने की नियति ढोता है ? मेरे जानते किसी ने ऐसा होते नहीं देखा–सुना !

परन्तु कल्पना लोक की ये सारी स्वप्निल घटनाएँ, मिथ और विश्वास जायसवाल जी की इस कहानी में यथार्थ लोक के अवयव बनकर उतर आये हैं। यह कला– कृति की सत्ता है। इस सत्ता में जो कुछ भी हमें अशुभ या भीषण प्रतीत होता है उसे कथाकार किसी शैतान के कंधों पर नहीं डालता बल्कि उसे मनुष्य और प्रकृति में निहित अन्यतम सत्य मानकर स्वीकार करता है और परिमार्जित करके अपने पाठकों के बीच भी स्वीकार करने लायक बना देता है। हमें यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि 'अघात पुष्प' हिंदी कथा साहित्य में आजतक स्वैरकल्पना से लिखी गयीं सभी कहानियों में अग्र पांक्तेय होने की अधिकारिणी है।

जायसवाल जी की एक अत्यंत लोक प्रिय कहानी है, 'नकबेसर कागा ले भागा'। कहानी भिखमंगों की बेपनाह दुनिया से उठाई गयी है। घेघू इन भिखमंगों में अपनी एक अलहदा पहचान वाला भिखमंगा है। एक बड़ा–सा घेघा लटकता है उसके गले से। वह काने–अंधे, 'लंगड़े–लूले, अपंग–अपाहिज, वक्रांग–विकलांग और कोढ़ ग्रसित रोगियों की वस्ती मे रहता है। जहाँ नंग–धडंग घिनौने बच्चे किलकारियां मारते हैं। ...भीख मांगती छोकरियाँ विरहिन के बारहमासा गाती हैं। 'घेघू कंगालों की इस बस्ती में भीख मांगकर बादशाहों की तरह रहता है। बादशाहों वाला मिजाज़ है उसका। वह 'कम्बल पर सोता है और कंबल ओढ़ता है। ...गालियाँ देने के लिए वह मन ही मन सैंकड़ों जीभें उगा लेता है।' उस बस्ती में ही एक भीखमंगनी है, रनिया'। नयी–नयी आयी है वह। एक आँख की कानी है। जब से रनिया इस बसती में आयी है, 'चाँद कुछ फाजिल चमकने लगा है। आते ही रनिया ने उसके (घेघू के) ख्यालों में घर बना लिया, हालाँकि तब घेघू को जितना चाँद पहचानता था, उससे कम रानियाँ भी नहीं। पर सपने सोनेवालों से कितना ताल्लुक रखते हैं!'

घेघू बंद आखों से सपने नहीं देखता। खुली आँखों से रानिया को जी भर कर निहारते हुए सपने देखता है। घेघू ने झोपड़ी तो खड़ी कर ली है, रनिया को भर आँख निहार कर अब वह 'बन्धनों का भी सुख खोजने लगा। बूढ़े दम्पत्ति उसकी नज़रों में अटकने लगे, जवान जोड़ों पर उसकी निगाहें जमने लगीं। हर खेलते मुसकराते बच्चे में वह कुछ ढूँढने लगा। ' कहानी की जटिलता यहीं शुरू हो जाती है।

आदमी कंगला हो कि अड़ी तुरंग, अपाहिज हो कि चाक–चौकस, हर कोई अपने भीतर एक दिल रखता है और हर दिल को प्यार चाहिए होता है। इस प्यार के पनपते ही हर प्रेमी के इर्द–गिर्द उसका अपना फंतासी लोक और यूटोपियन दुनिया आ खड़ी होती है। इस दुनिया में किसी पहाड़ी पर बने किसी राजा का एक नयनाभिराम दुर्ग और शहर के किसी छोर पर जम आयी कंगलों की घास–फूस, कागज़–टीन के झोपड़ों को बराबरी का हक हासिल हुआ होता है। घेघू को भी यह हक हासिल है। ऐसी बराबरी उस यूटोपिया या स्वैरकल्पना से मिलती है जो यह कहती है कि प्रत्येक आदमी की उसकी व्यक्तिगत धारणा के पीछे अनिवार्य रूप से एक भौतिक सत्य भी खड़ा रहता ही है ! यह सत्य हर जगह, हर हाल में अनिवार्य नहीं होता। यह भासित सत्य है जिसे कथाकार अपनी कहानी में प्रकाश और अन्धकार की आँखमिचौली में उपस्थित कर देता है। इसके लिए वह अपने किरदारों में मनोनुकूल आत्मिक सत्ता की स्थापना करता है जिसमे चेतना की अनंत शक्ति और अपार आनन्द निहित होता है। चेतना की यह शक्ति और आनन्द ही कहानी की अपनी सत्ता भी हो जाती है जिसके सहारे कहानी अपने पाठकों को मुकम्मल तौर पर साध कर रखती है। कहानी उमंगों और अपेक्षाओं से भरी हुई है और मनोरम प्रसंगों वाली भी है। मैं इसके विस्तार में

यहाँ नहीं जाना चाहता, प्रत्युत अपने विषय के प्रतिस्थापन तक ही अपने को महदूद रखना चाहता हूँ। वस्ल की चाहत यहाँ घेघू और रनिया दोनों को जलाए जा रही है मगर है न कि 'चाहतें और भी हैं वस्ल की चाहत के सिवा।' "... घेघू का घेघा जो घेघू के लिए भीख की अकूत वर्षा करने वाला वरदान है, रनिया के लिए आग का वह दरिया हो गया है जिसे तैरकर पार कर लेना रनिया की चाहत नहीं। रनिया इस घेघा से नफरत करती है और घेघू अपने इस वरदान को त्याग नहीं सकता ! यह प्रेम का यूटोपिया है जो हमेशा ही किसी न किसी तिलिस्म से ही टूटता है और स्वैरकाल्पनिक कहानियों की रचना के लिए प्रेम से ज्यादा सहज कोई दूसरा आख्यान नहीं हो सकता। आवश्यकता होती है उसकी कुशल प्रस्तुति की जो कथाकार से इसके लिए वाक्य–चातुर्य की अपेक्षा रखती है जिसमें जायसवाल जी की कोई शानी नहीं। श्रीपत राय कहते हैं, "एक नाटकीय घटना या स्थिति; एक रोचक दृश्य; घटनाओं का एक पुंज; जीवन का एक टुकड़ा; एक नैतिक प्रश्न और मानवी अनुभव का कोई अंश कहानी का आधार तत्व हो सकता है। इनमे से किसी एक के आधार पर सफल कहानी की रचना की जा सकती है। बात बहुत छोटी है पर रचना के स्तर पर जो कठिनाई उपस्थित होती है वह प्राणान्तक होती है और उसका अनुभव कोई भुक्त भोगी ही कर सकता है। ("कहानी की बात": दिसम्बर 1974)। प्रेम का यूटोपिया यहाँ इस तरह टूटता है कि अहर्निश भीख माँग कर घेघू रनिया के लिए एक नकबेसर गढ़वा कर इसके साथ उसे शादी का प्रस्ताव भेजता है। रनिया को उसके घेघे से घृणा है इसलिए वह यह प्रस्ताव ठुकरा देती है। घेघू का सपना चकनाचूर हो जाता है। फिर तो उसके लिए इस नकबेसर का सहेज पाना भी प्राणघातक है, और इसे वह फेंक देता है। 'नकबेसर कागा ले भागा, सैयां अभागा ना जागा !' बिहार में होली के अवसर पर अपनी चहेती को पा लेने के सुख से वंचित प्रेमी के कुभाग्य को कोसने वाला होलैया का यह मुखड़ा ही इस प्रेम कहानी का शीर्षक बनता है! जायसवाल जी की एक कहानी है, "काल भंजक"। कहानी की शुरुआत देखिये : "दुनिया समय से डरती है और समय पिरामिड से डरता है, इस अरबी कहावत में खोंट है। समय डरता नही है पिरामिड से, वह मजे ले–लेकर खेल रहा है पिरामिड के साथ। सबसे बड़ा अल–गिजा का पिरामिड अब ऊँचाई में पन्द्रह–बीस हाथ कम हो गया है और उसके ऊपर का सारा संगमर्मर लुप्त हो चुका है। एक समय आएगा जब समय अपना खेल समाप्त कर देगा। "इस कथन में कोई खोंट नहीं कि कजरा के एक कृपण ने इस समय की किरकिरी कर दी है। क्या खेल खेलेगा काल कजरा के इस कृपण के साथ ?

"जब कभी ऐसा होता है कि मैं अपनी मेज पर पढ़ता–लिखता रहता हूँ और उसकी पीली मद्धिम रौशनी को देखते हुए धीरे–धीरे अपनी आँखें मूंद लेता हूँ। यह बड़ा अच्छा लगता है मुझे। मैं एक अलौकिक स्थिति में पहुँच जाता हूँ। लगता है, मैं एक अधर में बैठा हूँ। सारी धरती सिमट कर मेरे सामने आ जाती है और कई–कई सदियाँ गरम साँस छोड़ते हुए मेरे सामने से गुजरने लगती है। मैं अपनी सेनाओं के साथ दिग्विजय पर निकल गए सम्राटों को देखता हूँ। मैं नर मुंडों की बड़ी–बड़ी मीनारें देखता हूँ। वाह्यशिला पर शीश झुकाए विद्रोहियों, विचारकों और विश्वबन्धुओं पर हाथ में कृपाण उठाये वार करते वध्य्नों को देखता हूँ। देखता हूँ, हजारों ऊटों पर लूट का सोना–चाँदी लादे लूटेरे लौट रहे हैं अपने घरों को। उन बाजारों को देखता हूँ जिनमे ख़रीद–बिक्री हो रही है। फूटते ज्वालामुखी और फटती धरती को देखता हूँ और उनमें विलुप्त हो जाती सभ्यता को। अपनी स्वर्ण भूमि और इष्टदेव की तलाश में जंगलों–पहाड़ों को लांघकर बढ़ते हुए मानवयुथों को देखता हूँ। महासागर में बंजर हो गए द्वीप के वासियों को छोटी–छोटी नावों में लदकर करो या मरो की मुद्रा में सागर की उन्मत्त लहरों से लड़ते हुए किसी अज्ञात द्वीप की खोज में बढ़ते–बढ़ते देखता हूँ। महात्माओं को अपनी जमात के साथ–साथ गाँव–गाँव, नगर–नगर घूम–घूमकर प्रवचन देते देखता हूँ। काव्यों–महाकाव्यों से बाहर निकल आयी नायिकाओं को अभिसार पाठ पर बढ़ते देखता हूँ मैं। बड़ा अच्छा लगता है यह सब देखना मुझे।..."

फंतासी के आधार पर कोई कहानी गढ़ने के पहले लेखक जीवन और जगत में जो विविध द्वंद्व और परस्पर विरोध है उसमे झांकता है। ऐसा करते हुए वह यह नहीं ढूंढ़ता कि जीवन और जगत होने कैसे चाहिए और जैसा होने चाहिये उस रूप में रूपांतरित करने का रास्ता कौन सा है। यह तो स्वतःसिद्ध है कि मनुष्य का जो वास्तविक जीवन है, चाहे वह बौद्धिक हो या सामाजिक, राजनीतिक हो या नैतिक, उसमे बिना संघर्ष के कुछ भी हासिल नहीं होने वाला– न ही नश्वरता और न ही अमरता। कहानीकार तो बस इस संघर्ष को ही मूर्तिमंत करके छोड़ देता है। वह अपने क्षेत्र विशेष के सम्पूर्ण इकोसिस्टम (ECOSYSTEM) का अलिप्त, अचल और निरपेक्ष द्रष्टा होता है। उसके लिए उसकी पारिस्थितिकी असंस्कृत, विवेकशून्य और जड़

प्राकृतिक शक्ति नहीं होती। उसकी चेतना में कुछ भी यांत्रिक क्रियामात्र नहीं होता, सबके सब उद्दिप्त, चंचल और वाचाल होकर उससे बातें करते हैं। लेखक हर शै यह महसूस कर सकता है कि मानव जीवन में लड़ाकू शक्तियों का संग्राम छिड़ा हुआ है परन्तु उसका जीवन सतत परिवर्तन के द्वारा ही टिका हुआ है। व्यथा, यन्त्रणा, अमंगल और विनाश की विभीषिका के द्वारा चारो ओर से घिरा हुआ होकर भी अपने लिए वह प्रेम, उल्लास, आकर्षण और जिजीविषा ढूँढ निकालता है। कहानीकार उसके इस अमूर्त और आभासी सत्य को अपनी स्वैरकल्पना देकर मूर्त और भासित बनता है। जायसवाल जी ने इस कहानी में एक कृपण के बहाने दुनिया के इस रहस्य कि, कोई कितना ही बड़ा, महान, पराक्रमी, साधु या असाधु हो, अंत में किसी का भी कुछ शेष नहीं रह जाता, को बेपरद कर देने की कामना के साथ दुनिया को बचा रखने की आदिम भावना का प्रकाट्य किया है। कथाकार मोमबत्ती की पीली, मद्धिम रौशनी में आँख बंद करके सब कुछ देख लेता है। वह देखता है कि "कृति–मन्दिर के किसी ताखे में किसी तरह टिक जाने के लिए व्यग्र यशस्काम महापुरुषों की भीड़ को महान दार्शनिक यु–ते चिल्ला–चिल्ला कर सुना रहा था, 'यश की भूख बड़ी मारक है; इस भूख को मार दें, महाप्रभु ! जिसे यश की भूख नहीं; वह सुखी है, वह सुखी है जिसका कोई इतिहास नहीं।" कहानी का ऊपर उद्धृत संवाद और कुछ अन्य संवाद भी जो यहाँ उद्धृत नहीं हैं, कहानी के कथानक की स्थूलता से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं बनाते। परन्तु इन संवादों से ही कहानी बनती है जहाँ अलौकिक का निर्विकल्प स्वीकार है। स्वैरकल्पना के लेखकों की खासियत ही होती है अलौकिक को रचकर इसे लौकिकता की स्वीकृति दिलवाना।

मोमबत्ती की पीली मद्धिम रौशनी विचारों के सघन कोहरे को काटकर अज्ञान के तिमिर को हर लेती है और व्यक्ति अहं भाव और उसकी सीमाओं से मुक्त होकर पाप, अशुभ और उसके फल के समस्त भय से सुरक्षित हो जाता है। मोमबत्ती की पीली मद्धिम रौशनी के प्रकाश की आत्मिक अनुभूति में रचनाकार अस्पष्ट आलोक या अन्धकार में कार्य न करके ज्योति की शक्ति में कार्य कर रहा है तथा एक दिव्य अनुभूति उसके आचार–व्यवहार की हरेक सोच को सहारा देती है। मोमबत्ती की पीली मद्धिम रौशनी यहाँ आत्मा और प्रकृति के ज्योतिर्मय समन्वय का प्रतीक भी है।

ऐसे प्रतीकों का प्रयोग जायसवाल अपनी कई–कई कहानियों में विषम जीवन–स्थितियों की स्थूलता को परे धकेल कर पात्रों के मन पर पड़ने वाले प्रभाव को तेजोद्दिप्त करने के लिए सफलता पूर्वक कर लेते हैं। यह प्रभाव वे उन अलभ्य स्रोतों से हासिल कर लेते हैं, जिन्हें आसानी से पह्चान पाना संभव नहीं होता। हालाँकि, जायसवाल प्रतीकात्मक शैली के ही कथकार हैं, यह कहना सही नहीं होगा क्योंकि अपनी कुछेक कहानियों में ही उनहोंने इस शैली का उपयोग किया है और जहाँ किया है वहां भी लौकिकता–अलौकिकता, प्रतीक और ऑब्जेक्ट, यथार्थ और जादू में समन्वय बना कर ही किया है। और, इस कारण ही उनकी ये कहानियाँ भी अभिधात्मक होने का ही हक़ रखती है।

कहानियाँ वे अभिधा में रचें या स्वैरकाल्पनिक अथवा प्रतीकात्मक, उनका हर शै प्रयास होता है कथन को सहज और विश्वसनीय बनाना। मेरी जानकारी में जायसवाल जी ने अब तक कुल बारह उपन्यास और तेरह कहानी संग्रह लिखे हैं। मुझे अबतक उनके चार उपन्यासों को ही पढ़ पाने का सौभाग्य हासिल है जिनमे एक भी जादुई अथवा प्रतीकात्मक शैली में रचित नहीं है। उनकी अधिसंख्य कहानियाँ मै जरूर पढ़ चुका हूँ जिनमें कम अज कम पाँच ज़रूर हैं जो स्वैरकाल्पनिक विशेषताओं से भरपूर होकर चमत्कारी और गहरे प्रभाव छोड़ने वाली हैं।

निष्कर्षतः, चंद्रकिशोर जायसवाल मूलतः अभिधा शैली के ही कथाकार हैं। वह शैली, जिसका उपयोग प्रेमचंद, यशपाल, भिष्म साहनी, शेखर जोशी, श्रीलाल शुक्ल, अमरकांत, रमाकांत, शैलेश मटियानी, अब्दुल बिस्मिल्लाह, शिवमूर्ति या कोशी अंचल के विशिष्ट कथाकार रेणु वगैरा ने किया है। परन्तु, जिन कहानियों में उन्होंने फंतासी का प्रयोग किया है वहां भी वे कहानी लेखन में अपनी अद्‍भुत कुशलता और सिद्धह्स्तता का ही परिचय देते हैं।

😶★😶

भारतीय चिन्तन में नारी का स्वरूप

आकांक्षा अग्निहोती*

भारतीय चिन्तन में नारी के स्वरूप को समझने के लिए हमें विभिन्न प्राचीन और मध्यकालीन ग्रंथों का समेकित अध्ययन करना आवश्यक है। इसमें वैदिक ग्रंथों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों, रामायण, महाभारत, पुराणों और मनुस्मृति का अध्ययन किया जा सकता है, जो नारी के धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं को उजागर करते हैं। इसके अतिरिक्त, कालिदास से लेकर आधुनिक युग तक के साहित्यकारों की रचनाओं में भी नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण हुआ है। "नारी" शब्द का अर्थ न केवल महिला से है, बल्कि यह जीवन की सृजनात्मकता, ऊर्जा, शक्ति और मातृत्व का प्रतीक भी है। नारी को समझने के लिए इस व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जो नारी के विभिन्न रूपों और उसकी भूमिका को संपूर्ण रूप से प्रस्तुत करता है।

नारी शब्द की व्युत्पत्ति : पुरुषवाचक नृ शब्द से उत्पन्न "नृनरयोवृद्धिश्च" इस वार्तिक द्वारा स्पष्ट होता है कि जब डी. प्रत्यय जुड़ता है और नृ शब्द का ऋकार "आर" से वृद्धि किया जाता है, तो यह नारी शब्द का अर्थ स्पष्ट होता है। "नृणाति आनंदम ददाति इति नारी" का अर्थ है, "जो आनंद देने वाली है, वही नारी है।" यह अर्थ स्त्रियों के संदर्भ में स्वतः सिद्ध होता है, क्योंकि एक नारी ही विभिन्न रूपों में अपने परिवेश को आनंद प्रदान करती है। वह पुत्री के रूप में माता–पिता को सुख देती है, बहन के रूप में भाई को आनंद प्रदान करती है, पत्नी के रूप में पति को और माता के रूप में संतान को सुख देती है। इस प्रकार, नारी अपने संपूर्ण जीवन में सभी से संबंधित लोगों को सुख और आनंद प्रदान करती है। अतः 'स्त्री' शब्द के लिए 'नारी' शब्द का प्रयोग विशेष रूप से उपयुक्त और सार्थक है, क्योंकि नारी का मुख्य गुण ही आनंद और सुख प्रदान करना है।

नारी की उपादेयता : सामाजिक दृष्टि से नारी समाज के संचालन और विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह जननी, पत्नी, बहन, और पुत्री के रूप में समाज में व्यक्ति को दिशा और संस्कार देती है। प्रत्येक बालक की प्रथम पाठशाला उसकी माता होती है, जो उसे जीवन के प्रारंभ से ही संस्कार प्रदान करना शुरू करती है। यह संस्कार जीवनभर व्यक्ति के साथ रहते हैं और उसे सही मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। इन संस्कारों के प्रभाव से व्यक्ति अपने परिवार, समाज, और राष्ट्र के लिए उन्नति की दिशा में कार्य करता है। भारतीय समाज में पत्नी को "अर्धांगिनी" कहा जाता है, जो "अर्धनारीश्वर" से लिया गया है। इसका अर्थ है कि पति–पत्नी एक–दूसरे के पूरक हैं, ठीक उसी तरह जैसे शिव और शक्ति एकता के प्रतीक हैं। इस प्रकार, नारी समाज के हर पहलू में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और जीवन के सभी क्षेत्रों में समग्र विकास में योगदान देती है। विनोबा जी के अनुसार "भारत में केवल कृष्ण नाम नहीं लेते राधा–कृष्ण कहते हैं। शिव और शक्ति दोनों को एकत्र करके हम चिंतन करते हैं। उसके फलस्वरूप एक ऐसा विलक्षण विचित्र चित्र हिंदुस्तान में देखने को मिलता है। जिसकी दुनिया के किसी चित्रकार ने कल्पना नहीं की होगी। वह है अर्द्धनारी नटेश्वर का चित्र। यह जो हिंदुस्तान की कल्पना है, उसमें बहुत बड़ी प्रतिभा रही है। स्त्रियों के गुण स्त्रियों में तो प्रकट हुए ही हैं, पुरुषों में भी हैं।"[1] यदि यह कहा जाए कि समाज में सामाजिक बंधन और नैतिक मर्यादाओं को स्थापित करने और उनका पालन करवाने का कार्य नारी ही करती है, तो यह कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। नारी अपने परिवार और समाज में सशक्त संस्कार, अनुशासन और नैतिकता की नींव रखती है। वह बच्चों और अन्य सदस्यों में अच्छे गुणों का विकास करती है, जिससे समाज में सामूहिक चेतना और सद्भावना बनी रहती है। उसकी भूमिका समाज को सही दिशा में मार्गदर्शन देने वाली होती है। विनोबा जी के अनुसार "समाज को बदलने का कार्य स्त्री ही कर सकती है, ज्ञान प्राप्त कर इस समाज के दोषों को दूर कर सकती है । स्त्रियां, वीरांगना, राज्य मर्मज्ञ, भक्त हुई हैं साहित्यिक भी हुई हैं।"[2]

***शोधार्थी–इतिहास विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभविद्यानगर, आनंद।**

समाज में व्याप्त दुर्गुणों और अवगुणों को समाप्त करने या उनमें परिवर्तन करने की शक्ति नारी के पास है, क्योंकि नारी के पास अहिंसा रूपी शस्त्र और प्रेम की अद्भुत शक्ति है, जो किसी भी हृदय को परिवर्तित कर सकती है। नारी का स्वभाव सशक्त और प्रभावी होता है, और उसकी संवेदनशीलता और करुणा समाज के नैतिक स्तर को ऊंचा कर सकती है। महात्मा गांधी जी ने भी अपने आंदोलनों में नारी का आह्वान किया था, क्योंकि वे जानते थे कि नारी ही वह शक्ति है, जो समाज में सकारात्मक परिवर्तन ला सकती है। नारी के हृदय परिवर्तन की क्षमता से समाज में अहिंसा, प्रेम और सत्य की प्रवृत्तियाँ मजबूत होती हैं।

नारी की महत्ता : किसी भी समाज की कल्पना नारी के बिना संभव नहीं है, क्योंकि नारी ही वह शक्ति है जो परिवार, कुल, वंश, समाज, संस्कृति और देश को भविष्य प्रदान करती है। भारतीय समाज में नारी को अत्यधिक महत्वपूर्ण और अतुलनीय पद तथा प्रतिष्ठा प्राप्त है। यहाँ नारी को शक्ति रूप में पूजा जाता है, उसे आदि शक्ति, जगत जननी और शेरों वाली माँ के रूप में देखा जाता है। वह संसार की सभी स्त्रियों में विद्यमान है और उसकी शक्ति से संसार चलायमान है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में स्त्रियों को संसार का कर्ता माना गया है। भारतीय परंपरा में नारी के सम्मान का विशेष ध्यान रखा गया है। उदाहरण स्वरूप, कन्या पूजन और कन्यादान के विधानों का महत्व है। कहा जाता है कि इस जगत में सबसे बड़ा दान कन्यादान है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी को देव तुल्य मानते हुए उसकी गरिमा को बनाए रखना और सम्मान देना एक आदर्श है। नारी की शक्ति और सम्मान की अवधारणा समाज के समृद्धि और विकास के मूलभूत तत्व हैं। "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता। यत्रैतास्तु न पूज्यंते सर्वास्त त्राफलाः क्रिया।।

अर्थात जहां नारियों की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं। जहां इनका सम्मान नहीं होता वहां सारी क्रियाएं निष्फल होती हैं।"[3] महर्षि मनु ने मां के स्थान की गरिमा को बताते हुए लिखा है– "उपाध्यायान्दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता। सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणतिरिच्येते॥"[4]

अर्थात् यह दर्शाता है कि भारतीय समाज में नारी का सम्मान अत्यधिक महत्व का है। "दस उपाध्यायों की तुलना में आचार्य, सौ आचार्य की तुलना में पिता और सहस्त्र पिताओं की तुलना में माता का गौरव अधिक है" यह कथन नारी के सर्वोच्च स्थान को उजागर करता है। नारी, विशेष रूप से माँ, समाज में सबसे सम्मानित और प्रतिष्ठित भूमिका निभाती है। जिस समाज में इस प्रकार की विचारधारा व्याप्त हो, वहाँ नारी को उच्च सम्मान और मूल्य प्रदान किया जाता है। इसका अर्थ है कि माता का प्रेम और त्याग किसी भी अन्य संबंध से कहीं अधिक होता है। उपनिषद में लिखा है – "मातृ देवो भव पितृ देवो भव"। अर्थात् माता देवता है पिता भी देवता है।

महाभारत में लिखा है "माता को पृथ्वी से भी श्रेष्ठ कहा गया है।"[5] शतपथ ब्राह्मण कहता है कि "माता के रूप में स्त्री शिशु की श्रेष्ठतम आचार्य होती है।"[6] इसके अतिरिक्त देवी पुराण और मार्कंडेय पुराण जैसे ग्रंथों में नारी की महिमा और शक्ति का विस्तृत वर्णन है। भारतीय संस्कृति में स्त्री और पुरुष की संयुक्त शक्ति को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया है। नारी को पुरुष की शक्ति के रूप में देखा जाता है, क्योंकि शक्ति के बिना पुरुष कुछ भी नहीं कर सकता। इस विचारधारा के अनुसार, नारी और पुरुष दोनों मिलकर सृजन और संसार के संचालन में योगदान देते हैं। भारतीय परंपरा में नारी का स्थान सम्मानजनक और शक्तिशाली है। विद्या निवास मिश्रा लिखते हैं "हमारी संस्कृति पुरुषचित्त से अधिक महत्व नारीचित्त को देती आई है, क्योंकि वह करुणा को सबसे बडा मानवीय मूल्य मानती आई है, करुणा की साधनावस्था में ही मनुष्य जन्म की सार्थकता होती है, वह करुणा संपूर्ण रूप से तभी सधती है, जब अपना दुःख, अपना सुख, अपनी चाह सब बिसर जाए, दूसरे का दुःख, दूसरे का सुख, अपनी चाह हो जाए। यह पुरुष चित्त से नहीं सधता, यह सधता है स्त्रीचित से, स्त्रीचित की भी पूर्णता है। मातृचित।"[7] नारी का संस्कृति को पोषित करने और उसे पीढ़ी–दर–पीढ़ी पहुंचाने में अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान है। जहां अन्य संस्कृतियों में नारी को सामान्यतः भोग्या और वस्तु के रूप में देखा गया है, वहीं भारतीय परंपरा में उसे देवी रूप में मान्यता प्राप्त है। भारतीय संस्कृति के अनुसार, नारी को ईश्वर ने सम्पूर्ण रूप में भेजा है, और वह इस संसार को चलायमान करने वाली शक्ति है। नारी का प्रभाव केवल घर तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह समाज और

संस्कृति के संरक्षण में भी अहम भूमिका निभाती है। नारी ही वह शक्ति है, जो संस्कारों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित करती है, और इसी कारण वह संस्कृति की रक्षक मानी जाती है। उसकी शिक्षा और संस्कार समाज के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य बनाए रखते हैं।

नारी के महत्व का प्रतिपादन : भारतीय संदर्भ में नारी को त्याग, तपस्या, और बलिदान की मूर्ति माना जाता है। भारतीय नारी में जो त्याग और समर्पण की भावना है, वह किसी अन्य समाज में उतनी प्रकट नहीं होती। नारी के पास दया, करुणा, ममता, त्याग, सहनशीलता, और अन्य नैतिक गुण होते हैं, जो उसे एक अद्वितीय शक्ति प्रदान करते हैं। ये गुण हमारे धर्मशास्त्रों में विस्तार से वर्णित हैं, चाहे वह मनुस्मृति हो, रामायण हो या महाभारत। इन गुणों से परिपूर्ण नारी ही समाज की स्थिरता और व्यवस्था की केंद्रबिंदु होती है। नारी ही समाज में अनुशासन और नैतिकता की रक्षा करती है, क्योंकि जो व्यक्ति स्वयं नैतिक और चारित्रिक रूप से उन्नत होता है, वही समाज का मार्गदर्शन कर सकता है। इस प्रकार, समाज के चरित्र निर्माण में नारी का महत्वपूर्ण योगदान है, और समाज के सही चरित्र के बिना राष्ट्र का निर्माण संभव नहीं है। नारी ही सृजन की शक्ति है, जहां सृजन होता है, वहीं भविष्य का निर्माण भी होता है। जब नारी आने वाली पीढ़ियों को शिक्षा, संस्कार, और नैतिकता प्रदान करती है, तो वही राष्ट्र की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है। नारी लोक गीतों और लोक भाषाओं का संरक्षण भी करती है, क्योंकि वही इन गीतों को अपनी आने वाली पीढ़ियों में स्थानांतरित करती है। नारी का यह कार्य समाज और संस्कृति दोनों को जीवित और समृद्ध करता है। इस प्रकार नारी केवल एक घर नहीं, बल्कि राष्ट्र को भी बना सकती है या मिटा सकती है। नारी ही प्रत्येक राष्ट्र की कर्ता और धर्ता है, क्योंकि उसकी शक्ति और योगदान से ही समाज और राष्ट्र की संरचना और उन्नति संभव होती है।

स्वामी विवेकानंद का यह कथन उल्लेखनीय है– "किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर है, वहाँ की नारियों का उत्थान। हमें नारियों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देना चाहिए, जहाँ वे अपनी समस्याओं को अपने ढंग से स्वयं सुलझा सकें। हमें नारीशक्ति के उद्धारक नहीं, वरन् उनके सेवक और सहायक बनना चाहिए। भारतीय नारियाँ संसार की अन्य किन्हीं भी नारियों की भाँति अपनी समस्याओं को सुलझाने की क्षमता रखती हैं। आवश्यकता है उन्हें उपयुक्त अवसर देने की। इसी आधार पर भारत के उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ सन्निहित हैं।"[8]

अस्तु हम कह सकते हैं कि भारतीय संदर्भ में नारी का स्वरूप अत्यधिक सम्मान और शक्ति से परिपूर्ण है। भारतीय संस्कृति में नारी को देवी के रूप में पूजा जाता है और उसे शक्ति, सृजन, और पालनहार के रूप में देखा जाता है। उसे 'अर्धांगिनी' के रूप में माना गया है, जो पति के साथ मिलकर जीवन की पूरी प्रक्रिया में योगदान करती है। नारी की भूमिका केवल परिवार तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज, संस्कृति, और राष्ट्र के निर्माण में भी अहम स्थान रखती है। भारतीय परंपराओं में नारी के लिए त्याग, तपस्या, दया, करुणा और सहनशीलता जैसे गुण महत्वपूर्ण माने जाते हैं। वह संतुलन और सद्भाव की संरक्षक होती है, और समाज में नैतिकता और संस्कारों का प्रचार करती है। नारी के बिना समाज की कल्पना असंभव है, क्योंकि वही समाज की सच्ची धारा को बनाए रखती है और उसे आगे बढ़ाती है।

संदर्भ सूची :–

1. भावे, विनोबा, स्त्री शक्ति जागरण, परंधाम प्रकाशन, पवनार, 1999, पृष्ठ संख्या– 6।
2. वही, पृष्ठ संख्या –19।
3. पाड़िया, चन्द्रकला, धर्मशास्त्र और स्त्री विमर्श, महिला अध्ययन केंद्र, ठ.भ.न, 2007] पृष्ठ संख्या– 179।
4. वही, पृष्ठ संख्या –122।
5. वही, पृष्ठ संख्या– 182।
6. वही, पृष्ठ संख्या –72।
7. मिश्र, विद्या निवास, नदी नारी और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या –288।
8. सिंधु, कामराज(गुरु) जी, 21वीं सदी में नारी –विमर्श (दशा और दिशा), संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2019] पृष्ठ संख्या –26

तिरुवल्लुवर के कुरल में निहित जीवन दर्शन

सूरज कुमार*

भारत महज एक भौगोलिक इकाई नहीं है, बल्कि यह एक सांस्कृतिक इकाई है, जो हजारों वर्षों में विकसित हुई है। पूरे भारतवर्ष में संतों की वाणियाँ विभिन्न समय, क्षेत्र और भाषाओं में फैलकर पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधती हैं। इन संतों ने जीवन के गूढ़ प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया, जैसे– ईश्वर क्या है?, जीवन क्या है? सत्य क्या है? और आनंद क्या है? तथा सदियों से संचित अनुभव–रत्नों को अपनी वाणियों में संजोया है।

ऐसे ही वाणी–रूपी रत्नों का एक संचयन तिरुवल्लुवर कृत कुरल है, जिसे तिरुकुरल भी कहा जाता है। तिरुवल्लुवर तमिल कवि थे, जिनका जन्म मद्रास (वर्तमान चेन्नई) के पास प्रथम शताब्दी ई.पू. में हुआ माना जाता है। उनके जीवन से संबंधित तथ्यों में कुछ अनिश्चितताएँ हैं, लेकिन उनकी रचनाएँ तमिल भाषा में संकलित सूक्तियाँ न केवल भारत में, बल्कि पूरे विश्व में प्रसिद्ध हैं। चित्र–1 SOAS में लगी तिरुवल्लुवर जी की मूर्ति इसका उदाहरण मात्र है।

चित्र संख्या 1

चित्र संख्या 2

तमिल में 'तिरु' का अर्थ दिव्य और 'कुरल' का अर्थ छोटा होता है। कवि ने छंदबद्ध छोटी अभिव्यक्तियों से अनुभूति के उच्चतम स्तर को पाने में सफलता पाई है। यह छंद अंग्रेजी के हेसिएक कपलेट और हिंदी के दोहे जैसे हैं।

कन्याकुमारी के दक्षिणी सिरे पर संत तिरुवल्लुवर की 133 फुट ऊंची प्रतिमा बनाई गई है। चित्र–2 यह संख्या तिरुकुरल के कुल 133 अध्यायों का प्रतिनिधित्व करती है। उस प्रतिमा में संत की तीन अंगुलियाँ अरम, पोरुल और इनबम नामक तीन विषयों अर्थात् नैतिकता (धर्म), धन (अर्थ) और प्रेम के अर्थ को इंगित करती हैं। यह ग्रंथ उपरोक्त तीन विषयों पर आधारित तीन खंडों में विभक्त है। हर अध्याय में दस कुरल होते हैं। पहले खंड में 38 अध्याय (380 कुरल), दूसरे खंड में 70 अध्याय (700 कुरल) और तीसरे खंड में 25 अध्याय (250 कुरल) होते हैं। दरअसल, तिरुकुरल कोई धर्मग्रंथ नहीं, बल्कि एक आचार ग्रंथ है। यह विलक्षण नीति ग्रंथ है। आज के इस घोर उपभोक्तावादी युग में जब व्यक्ति और समाज घोर असंवेदनशील होते जा रहे हैं, भौतिकता अपने चरम पर है, वैसे में आवश्यकता है कि हम अपने नैतिक मूल्यों को समझें और अपनी जड़ों की ओर वापस लौटें।

तिरुवल्लुवर के जीवन की एक घटना द्रष्टव्य है। उनकी पत्नी का नाम वासुकी था और किसी संन्यासी ने उनके घर आतिथ्य ग्रहण करते हुए यह स्वीकार किया कि अगर घर में पत्नी वासुकी जैसी हो तो संन्यास से बेहतर गृहस्थी है। तिरुवल्लुवर खाना खाते समय सुई और एक कटोरी पानी रखते थे। उनकी पत्नी ने अपनी मृत्युशैया पर पूछा, "वे ऐसा क्यों करते थे?" तिरुवल्लुवर ने बताया, "वे ऐसा इसलिए करते थे क्योंकि अगर अन्न का कोई दाना खाते समय गिर जाए तो वे उसे सुई से उठाकर पानी से धोकर पुनः खा सकें।" इससे समझा

*** सह आचार्य, हिन्दी संकाय, मानविकी विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।**
रिसर्च एसोसिएट, IIAS शिमला, FTII/NFAI पुणे तथा IIT मद्रास से फिल्म एप्रेसीएशन में प्रशिक्षित

जा सकता है कि जीवन से जुड़ी हर बात को कितनी गंभीरता से लिया था। तिरुकुरल के पहले खंड में गृहस्थ और संन्यासी जीवन के आचरण के संबंध में कुरल हैं। इसकी शुरुआत ईश्वर स्तुति से होती हैः

पृथ्वी का उद्‌गम हुआ, ईश्वर बना आधार
जैसे भाषा में सदा अ से हो विस्तार

इसी खंड में मेघ महिमा, पारिवारिक जीवन, जीवन साथी, अतिथि सत्कार, संतान संपदा, समाज के प्रति दायित्व जैसे गुणों पर विचार किया गया है। उदाहरणार्थः

जो सेवा करे, जीवन जिए परिपूर्ण
अथवा वह कमजोर दिल, मृतक समान अपूर्ण
है उपचारी वृक्ष सा, जो धन होत सुपात्र
सबको देता लाभ यह जो जैसा हो पात्र

दान, शिष्टता, सच्चाई, क्रोध, त्याग, क्षमाशीलता जैसे गुणों पर भी कुरल में महत्वपूर्ण सूक्तियाँ संग्रहित हैंः

जाने अनजाने कभी भी, असत्य न बोले आप
सदा कुरेदेगी आत्मा, किया जो झूठ का जाप
सत्य के प्रति निष्ठा रही, सदा से गुण की खान
जहां तिरस्कृत दुर्गुण हों, वह समाज अनुशासित जान

यह ध्यान देने योग्य है कि दूसरे खंड, अर्थात अर्थ के खंड में अन्य खंडों की तुलना में सर्वाधिक कुरल संकलित हैं। यह दर्शाता है कि आचार और काम की तुलना में अच्छे जीवन के लिए अर्थ कितना आवश्यक है। आवश्यकता है उसे सही तरीके से अर्जित करने की और उसका सदुपयोग करने की। अर्थ खंड में शासन और उसके अंगों का भी उल्लेख है। तुलसीदास जी ने कहा हैः "जासू राज प्रिय, प्रजा दुखारी; ते नृप अवसी नरक के भागी।" तिरुवल्लुवर जी ने राजा के गुण, कर्तव्य और उसके दायित्वों पर विस्तार से बात की है। दूसरे खंड में राजा का विधान, अच्छा प्रशासन, प्रेरणा, संकट में धैर्य, देश और लोग, कार्य विधि, कृषि कर्म, गरीबी आदि पर गंभीरता से बात की गई है।

वेद विद्या अरु धर्म का, तब ही बढ़ता मान
राजदंड इनका सदा रक्षक बन, ले संज्ञान
शासन में जिस भूप के जन आनंद हो भरपूर
प्रेम संपदा उस भूप से कभी न होती दूर
राजा जो अन्याय करे, नहीं सुने तथा न माने कोई सलाह
संग काम में है कमजोरियाँ, मानो उसे शीघ्र नष्ट की चाह

झूठ, छिछली बुद्धि, झूठी मित्रता, वेश्यावृत्ति, जुआ, शराब जैसे सामाजिक दुर्गुणों पर भी संत तिरुवल्लुवर ने चतुर्दिक विचार किया। आज के समय में भी ये कुरल अत्यंत प्रासंगिक हैंः

जीवन में है मूर्ख की, यह सबसे बड़ी पहचान
छोड़े जिससे लाभ हो, हानि को ले नादान (झूठ)
बाहर मैत्री, हृदय में, कपट करे उपहास
मीठे बचन से बोलकर, करो अरि का नाश (झूठी मित्रता)

तीसरे खंड में काम संबंधी विषयों पर विचार किया गया है। काम चार पुरुषार्थों में एक है। संतति कुल को आगे ले जाने में सहायक होती है और काम ही उसका आधार है। तिरुवल्लुवर बड़े संयत तरीके से काम की आवश्यकता, उसके महत्व, उसके उचित–अनुचित स्वरूप पर विचार करते हैं। प्रेम का जीवन, प्रेम के लक्षण, हृदय की उत्कंठा, प्रेम के लक्षण और संकेत आदि पर तो बात करते ही हैं, साथ ही साथ वियोग की पीड़ा, एकाकीपन की वेदना, झूठा तिरस्कार जैसे विषयों पर भी गहराई से बात करते हैं।

चितवन की भाषा कहे, बिन बोले सब बात
एक मिलन संयोग कहे, एक देखन की बात

धर्म, अर्थ और काम के धागे में बंधे 1330 कुरलरूपी मोती हमारे जीवन को आलोकित कर देते हैं। ज्ञान की अवधारणा की पश्चिमी निर्मिति के स्थान पर भारतीय ज्ञान परंपरा के रत्नों की हमें फिर से पहचान और मान–सम्मान देना होगा। इन मूल्यों को अपनाना होगा। इससे व्यष्टि और समष्टि के रूप में हमारा परिष्कार होगा। निष्कर्षतः ये कुरल हमें जीवन को भली–भांति समझने और सुचिंतित जीवन बिताने की प्रेरणा देते हैं।

★

बाल सर्जनात्मक लेखन की विषयवस्तु

डॉ. सुनील कुमार मानस*

बाल सर्जनात्मक लेखन की विषयवस्तु बच्चों के नैतिक, शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास से जुड़ी होती है। इसके माध्यम से बच्चे समाज, संस्कृति, परंपरा, और आदर्शों से परिचित होते हैं, जिससे उनका समग्र विकास होता है। बाल साहित्य का मुख्य उद्देश्य बच्चों में नैतिकता, जिम्मेदारी, और संस्कारों का विकास करना होता है। इस प्रकार के लेखन में बच्चों को परंपरा, संस्कृति, और गौरवमयी इतिहास से जोड़ने की कोशिश की जाती है, ताकि उनमें आत्मगौरव और राष्ट्र प्रेम की भावना विकसित हो सके।

इसके अलावा, बाल सर्जनात्मक लेखन बच्चों के चरित्र निर्माण और मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता देता है। बच्चों को अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति जिम्मेदारी का अहसास कराते हुए उन्हें एक आदर्श नागरिक बनने के लिए प्रेरित किया जाता है। शारीरिक और मानसिक विकास के लिए खेल, कविताएं, और कहानियां लिखी जाती हैं, जो न केवल उनके शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देती हैं, बल्कि उनके बौद्धिक विकास को भी समृद्ध करती हैं।

बाल साहित्य में यथार्थ से परिचय कराने के लिए कलात्मक लेखन का महत्वपूर्ण स्थान है, जो बच्चों को समाज की सच्चाइयों, अच्छाइयों और बुराइयों से अवगत कराता है। इस प्रकार, बाल सर्जनात्मक लेखन बच्चों को जीवन के विविध पहलुओं से जोड़ता है, जिससे उनका समग्र व्यक्तित्व विकास होता है। इसके लिए निम्नलिखितसोपनो को प्रायः रेखांकित किया जाता है–

परंपरा, संस्कृति एवं गौरवमयी इतिहास–बोधः बाल सर्जनात्मक लेखन की विषयवस्तु में परंपरा, संस्कृति एवं गौरवमयी इतिहास–बोध का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार की रचनाएं बच्चों को उनके इतिहास, संस्कृति और परंपरा के गौरवपूर्ण पहलुओं से अवगत कराती हैं, जिससे उनमें आत्मगौरव की भावना जाग्रत होती है। जब बच्चों को अपने देश की सांस्कृतिक धरोहर और इतिहास के महत्व का ज्ञान होता है, तो वे अपनी जड़ों से जुड़े होते हैं और समाज में अपने कर्तव्यों को निभाने के लिए प्रेरित होते हैं। यह बोध बच्चों को आत्म–विश्वास और आत्म–सम्मान प्रदान करता है, जिससे वे अपने समाज, संस्कृति और इतिहास को गर्व से देख सकते हैं।

बालकों को गौरवमयी इतिहास से परिचित कराना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि यदि वे अपने समाज और संस्कृति को नकारात्मक दृष्टिकोण से देखते हैं, तो उनमें हीन भावना उत्पन्न हो सकती है। ऐसे में एक सक्षम और शिक्षित शिक्षक या लेखक बच्चों को विश्वभर की महान संस्कृतियों, परंपराओं और ऐतिहासिक घटनाओं से अवगत कराकर उनकी मानसिकता में बदलाव लाता है। यह उन्हें अपने इतिहास और समाज के महत्व को समझने में मदद करता है, जिससे वे अपने समाज को प्रगति की दिशा में आगे बढ़ाने का संकल्प लेते हैं। प्रेमचंद की रचना 'रामचर्चा' इस संदर्भ में एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस काव्य में उन्होंने भारतीय संस्कृति और इतिहास के महत्व को उद्‌घाटित किया है और बच्चों को इस पर गर्व करने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार के साहित्य में बच्चों को यह समझाने का प्रयास किया जाता है कि उनका इतिहास और संस्कृति केवल अतीत का हिस्सा नहीं हैं, बल्कि ये उनके वर्तमान और भविष्य को दिशा देने वाले महत्वपूर्ण पहलु हैं। बाल सर्जनात्मक लेखन में इस तरह की रचनाएं बच्चों के भीतर देशप्रेम और आत्मगौरव की भावना उत्पन्न करती हैं, जिससे वे आने वाले समय में समाज और राष्ट्र की भलाई के लिए कार्य करने के लिए प्रेरित होते हैं। इस प्रकार, परंपरा, संस्कृति और गौरवमयी इतिहास–बोध का यह पहलू बच्चों के व्यक्तित्व विकास में अहम भूमिका निभाता है।

चरित्र, नैतिकता और मानवीय मूल्यः बाल सर्जनात्मक लेखन की विषयवस्तु में चरित्र, नैतिकता और मानवीय मूल्य का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। यह बच्चों के व्यक्तित्व को आकार देने में मदद करता है और उन्हें एक अच्छा इंसान बनाने की दिशा में मार्गदर्शन करता है। स्वामी विवेकानंद ने भी शिक्षा के महत्व में चरित्र

***अध्यक्ष : हिंदी विभाग, सरकारी विनयन कॉलेज, बेचराजी (गुजरात)**

निर्माण को विशेष रूप से उल्लेखित किया है, क्योंकि एक मजबूत चरित्र व्यक्ति को जीवन की कठिनाइयों का सामना करने के लिए सक्षम बनाता है और समाज में सम्मान अर्जित करने में मदद करता है। बाल साहित्य के माध्यम से बच्चों को अच्छे आचरण, ईमानदारी, सहानुभूति, धैर्य, और जिम्मेदारी जैसे नैतिक गुण सिखाए जाते हैं, जो जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक होते हैं।

बाल साहित्य में नैतिकता की भावना को विकसित करने के लिए पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है। मैथिलीशरण गुप्त और सोहनलाल द्विवेदी जैसे महान कवियों ने इस संदर्भ में बहुत सी प्रेरणादायक कविताएं लिखी हैं, जो बच्चों को सही और गलत के बीच अंतर करने की समझ प्रदान करती हैं। इन कविताओं में यह संदेश होता है कि जीवन में सफलता केवल बाहरी उपलब्धियों से नहीं, बल्कि अच्छे आचार–व्यवहार और सच्चाई के मार्ग पर चलने से मिलती है।

इसके अलावा, प्रेमचंद जैसे प्रसिद्ध कहानीकारों ने भी अपने साहित्य के माध्यम से बच्चों को नैतिकता के मूल्य समझाने का प्रयास किया है। प्रेमचंद की कहानियों में पात्रों की नैतिक संघर्ष, उनके अच्छे कार्य, और समाज के प्रति उनकी जिम्मेदारियां स्पष्ट रूप से दिखती हैं। 'ईदगाह' जैसी कहानियों में छोटे बच्चों को अपनी दादी की खुशी के लिए त्याग करने का संदेश दिया जाता है। यह कहानी बच्चों को यह सिखाती है कि जीवन में खुश रहने के लिए स्वार्थी नहीं, बल्कि दूसरों के लिए भी सोचना चाहिए।

इस प्रकार, बाल सर्जनात्मक लेखन बच्चों को नैतिक शिक्षा देने के लिए प्रभावी माध्यम बनता है, जो उन्हें समाज में जिम्मेदार, सच्चे और ईमानदार नागरिक बनने के लिए प्रेरित करता है। नैतिक शिक्षा के जरिए बच्चों में मानवीय मूल्य जैसे सहानुभूति, दया, और ईमानदारी विकसित होती है, जो उन्हें अच्छे इंसान बनने में मदद करती है।

शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक प्रगति :– बाल साहित्य का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बच्चों के शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास को प्रोत्साहित करना है। बच्चों के शारीरिक विकास के लिए बाल साहित्य में अनेक कविताएं और गतिविधियां हैं जो न केवल बच्चों को मनोरंजन प्रदान करती हैं, बल्कि उनके शारीरिक विकास को भी बढ़ावा देती हैं। उदाहरण स्वरूप, 'छुक–छुक करती रेल चली' जैसी कविताएं बच्चों को न केवल पढ़ने और गाने के लिए प्रेरित करती हैं, बल्कि वे इसे खेल–खेल में निभाकर शारीरिक गतिविधि में भी संलग्न होते हैं। इस प्रकार के कविताओं के माध्यम से बच्चों का शारीरिक विकास होता है क्योंकि वे कविताओं को गाकर दौड़ते–भागते हैं और इस तरह उनकी शारीरिक क्षमता और स्वास्थ्य में सुधार होता है। इसके साथ–साथ, इस प्रकार के खेल से बच्चों में सहयोग, सामूहिकता और आपसी सौहार्द की भावना भी विकसित होती है।

इसके अतिरिक्त, शारीरिक विकास के साथ–साथ मानसिक विकास भी महत्वपूर्ण है। मानसिक विकास को उत्तेजित करने के लिए बाल साहित्य में शिक्षाप्रद कहानियों और कविताओं का उपयोग किया जाता है। पंचतंत्र और हितोपदेश जैसी प्राचीन बालकथाएं बच्चों को न केवल मनोरंजन प्रदान करती हैं, बल्कि उनमें बुद्धिमत्ता, विवेक और नीति की समझ भी विकसित करती हैं। ये कहानियाँ बच्चों को सही और गलत के बीच अंतर समझने की क्षमता प्रदान करती हैं और उन्हें जीवन में बुद्धिमान निर्णय लेने की प्रेरणा देती हैं। इनकी कथावस्तु बच्चों को अपनी समस्याओं के समाधान के लिए सोचने और नये दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करती है।

बौद्धिक विकास के लिए कविता के बजाय कहानी अधिक प्रभावी होती है, क्योंकि कहानी में न केवल एक दिलचस्प कथावस्तु होती है, बल्कि यह बच्चों को सोचने के लिए भी उत्तेजित करती है। यह उनके तर्कशक्ति और समस्या समाधान क्षमता को बढ़ावा देती है। बाल साहित्य में ऐसी कहानियाँ और रचनाएं बच्चों को न केवल मनोरंजन, बल्कि मानसिक और बौद्धिक रूप से सक्षम बनाने का काम करती हैं।

इस प्रकार, शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास के इन सभी आयामों का सम्मिलित रूप से विकास बाल साहित्य के माध्यम से होता है, जो बच्चों को एक समग्र और स्वस्थ व्यक्तित्व बनाने की दिशा में अग्रसर करता है।

महत्त्वपूर्ण नागरिक बनने की प्रेरणा :– बाल सर्जनात्मक लेखन की विषयवस्तु का एक महत्वपूर्ण आयाम है – बच्चों को एक अच्छा नागरिक बनने की प्रेरणा देना। यह साहित्य बच्चों में राष्ट्रप्रेम, सामाजिक जिम्मेदारी,

और संवैधानिक नियमों का पालन करने की भावना जागृत करता है। जब बच्चे इस प्रकार के साहित्य को पढ़ते हैं, तो वे अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक होते हैं और यह सीखते हैं कि उनका व्यक्तिगत विकास केवल उनके लिए नहीं, बल्कि उनके समाज और देश के लिए भी जरूरी है।

बाल साहित्य में ऐसी रचनाएं होती हैं जो बच्चों को यह समझाती हैं कि राष्ट्र की सेवा और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को निभाना किस तरह से उनका नैतिक दायित्व बनता है। श्यामलाल पार्षद की कविता "विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊंचा रहे हमारा" जैसी बाल गीतें बच्चों के मन में देशप्रेम की भावना पैदा करती हैं और उन्हें अपने राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान करने के लिए प्रेरित करती हैं। इसी तरह, रवींद्रनाथ टैगोर का "जन गण मन अधिनायक" और बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय की "वन्दे मातरम्" जैसी रचनाएं बच्चों को राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता संग्राम के महत्व के बारे में सिखाती हैं। ये काव्य रचनाएं बच्चों में अपने देश के प्रति गर्व और सम्मान की भावना का संचार करती हैं।

इसके अलावा, माहेश्वरी की कविता "वीर तुम बढ़े चलो" भी बच्चों को प्रेरित करती है कि वे देश की सेवा में अपने कर्तव्यों को निभाने के लिए हमेशा तैयार रहें। इन रचनाओं के माध्यम से बालकों में त्याग और बलिदान की भावना का विकास होता है, और वे समझते हैं कि राष्ट्र की प्रगति में उनकी छोटी–सी भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। अस्तु बाल सर्जनात्मक लेखन बच्चों को अपने राष्ट्र, समाज और परिवार के प्रति जिम्मेदारी का अहसास कराता है और उन्हें एक बेहतर नागरिक बनने की प्रेरणा देता है। यह साहित्य उन्हें यह सिखाता है कि नागरिक कर्तव्यों का पालन करना केवल एक अधिकार नहीं, बल्कि एक महान जिम्मेदारी है जो देश के निर्माण में योगदान देती है।

देश, समाज और परिवार की सेवा तथा संरक्षण :– बाल सर्जनात्मक लेखन की विषयवस्तु का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है बच्चों में देश, समाज, और परिवार के प्रति सेवा की भावना का निर्माण करना। इस प्रकार के लेखन के माध्यम से बच्चों को यह सिखाया जाता है कि उनका व्यक्तित्व केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, बल्कि समाज और परिवार की उन्नति में भी योगदान देने के लिए होना चाहिए। रचनाकार इस विषय को बाल मनोविज्ञान के अनुसार विकसित करते हैं, ताकि बच्चों में जिम्मेदारी और सेवा की भावना को अच्छे से समाहित किया जा सके।

प्रेमचंद की कहानी "ईदगाह" इस विषय का एक आदर्श उदाहरण है, जिसमें हामिद नामक बच्चा अपने परिवार की जरूरतों को समझते हुए एक चिमटा खरीदता है, जो उसकी दादी के लिए अत्यंत उपयोगी था। हामिद अपने व्यक्तिगत इच्छाओं की बजाय परिवार की सेवा को प्राथमिकता देता है, और यह कहानी पारिवारिक जिम्मेदारी को समझने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार, यह कहानी बच्चों में परंपरागत परिवारिक मूल्य और दूसरों के प्रति चिंता की भावना पैदा करती है। इसी तरह, रामकुमार वर्मा की एकांकी "दीपदान" भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है। इस कहानी में बच्चों को यह सिखाया जाता है कि एक अच्छा नागरिक बनने के लिए समाज और देश के प्रति कर्तव्यों को निभाना चाहिए। यहां बच्चों को यह संदेश दिया जाता है कि कोई भी कार्य केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं होना चाहिए, बल्कि सामूहिक भलाई के लिए भी किया जाना चाहिए।

प्रेमचंद की कहानी "पंच परमेश्वर" भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, जिसमें पात्र अपने व्यक्तिगत लाभ और द्वेष से ऊपर उठकर समाज के व्यापक हित को प्राथमिकता देते हैं। यह कहानी बच्चों को यह सिखाती है कि समाज और पद की महत्ता को समझकर, उन्हें अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए और व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर सामूहिक कल्याण की दिशा में काम करना चाहिए। इन रचनाओं के माध्यम से बालकों में देश, समाज और परिवार के प्रति कर्तव्यों का बोध होता है और वे जीवन में एक जिम्मेदार और आदर्श नागरिक बनने के लिए प्रेरित होते हैं। यह साहित्य बच्चों को यह समझाता है कि जीवन का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं है, बल्कि समाज और देश की सेवा और संरक्षण करना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

कलात्मक लेखन से यथार्थपरक लेखन की समझ :– बाल सर्जनात्मक लेखन का एक महत्वपूर्ण आयाम बच्चों को कलात्मक लेखन से यथार्थपरक लेखन की समझ कराना है। इस प्रकार का लेखन बच्चों के मानसिक और बौद्धिक विकास में सहायक होता है। कलात्मक लेखन, जिसमें कल्पना और भावनाओं का गहन उपयोग होता है, बच्चों को सोचने, समझने और रचनात्मक रूप से विचार करने की क्षमता प्रदान

करता है। इसके माध्यम से बच्चों में विचारों की स्वतंत्रता, संवेदनशीलता और रचनात्मकता का विकास होता है। वहीं, यथार्थपरक लेखन बच्चों को वास्तविकता से परिचित कराता है। यह लेखन बच्चों को समाज की सच्चाइयों, समस्याओं और जीवन के कठिन पहलुओं के बारे में समझाता है। यथार्थ को पहचानने और उसे स्वीकार करने की क्षमता विकसित करने में मदद करता है। इससे बच्चे केवल कल्पना की दुनिया में नहीं, बल्कि वास्तविक दुनिया में भी व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाते हैं।

निष्कर्श :– बच्चों को कलात्मक और यथार्थपरक लेखन का मिश्रण उनकी सोच को विस्तारित करता है और उन्हें जीवन के विभिन्न पहलुओं से परिचित कराता है, जिससे वे मानसिक और भावनात्मक रूप से परिपक्व होते हैं। बाल सर्जनात्मक लेखन बच्चों को न केवल कलात्मकता और रचनात्मकता की ओर प्रेरित करता है, बल्कि यह उन्हें दुनिया की सच्चाइयों, अच्छाइयों और बुराइयों से भी परिचित कराता है। कलात्मक लेखन वह कला है, जिसमें लेखक अपनी कल्पना, विचार और भावनाओं का सृजनात्मक रूप से प्रयोग करता है। जब बच्चों को ऐसा साहित्य पढ़ने को मिलता है, तो वे न केवल शब्दों और वाक्यों के माध्यम से पाठ को समझते हैं, बल्कि अपनी सोच और कल्पनाशक्ति को नए स्तर पर ले जाते हैं। यह उन्हें नई दुनिया की परिभाषा देता है, जहाँ वे बिना किसी तय सीमा के विचारों की असीमित उड़ान भर सकते हैं।

कलात्मक लेखन से बच्चों का मानसिक विकास होता है और उनके विचारों में व्यापकता आती है। वे न केवल कल्पनाओं की दुनिया में खो जाते हैं, बल्कि वास्तविकता को भी गहराई से समझने लगते हैं। यथार्थवादी बाल साहित्य विशेष रूप से बच्चों को समाज की जड़ता, रूढ़िवादिता, अंधविश्वास और विद्रूपता से उठाकर एक परिपक्व दृष्टिकोण प्रदान करता है। ऐसे साहित्य के माध्यम से बच्चे दुनिया के विविध पहलुओं को समझने में सक्षम होते हैं, जो उन्हें जीवन की वास्तविकता से अवगत कराते हैं और समाज में सुधार की दिशा में प्रेरित करते हैं। प्रेमचंद, निराला, अज्ञेय, जैनेंद्र और अन्य जैसे बड़े हिंदी रचनाकारों की कृतियाँ इस बात का उदाहरण हैं, जहाँ साहित्य ने बच्चों को न केवल सोचने की दिशा दी है, बल्कि उन्हें समाज, समय और मानवता के गहरे अर्थों से भी परिचित कराया है। जैसे प्रेमचंद की कहानियाँ "माँ", "बड़े भाई साहब", निराला की "राणा प्रताप", जैनेंद्र की "समय और हम", यशपाल की "फूलों का कुर्ता", अज्ञेय की "रोज", "पुरुष का भाग्य" और "जिजीविषा", जयशंकर प्रसाद की "मधुवा" और "छोटा जादूगर", मार्कंडेय की "हंसा", "जाई अकेला", संजीव की "अपराध", सुदर्शन की "साइकिल की सवारी" और "हार की जीत" जैसी कई कहानियाँ हैं, जिन्हें पढ़कर बालक समय और समाज से अवगत होकर एक सकारात्मक दिशा की तलाश करते हैं।

इस प्रकार, कलात्मक लेखन बच्चों के भीतर न केवल कल्पना को साकार करने की क्षमता उत्पन्न करता है, बल्कि समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण और विचार भी विस्तृत करता है।

संदर्भ–सूची :–

1. हिन्दी बाल साहित्य एक अध्ययन–हरिकृष्ण देवसरे, आत्माराम एण्ड संस (1969), दिल्ली।
2. समकालीन हिन्दी बाल कविता – राजेन्द्र कुमार शर्मा, फाल्गुनी प्रकाशन (2013), दिल्ली।
3. बाल कविता में सामाजिक सांस्कृतिक चेतना – शिरोमणि सिंह, आशा प्रकाशन (2013), कानपुर।
4. हिन्दी बाल साहित्य विचार और चिंतन – शकुंतला कालरा, नमन प्रकाश (2014), नई दिल्ली।
5. हिन्दी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन – मस्तराम कपूर, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. (2015), नई दिल्ली।
6. नया ज्ञानोदय – लीलाधर मंडलोई, नवम्बर 2014।
7. आजकल –द फरहत परवीन (सं.), नवम्बर 2014।
8. हिन्दी बाल साहित्य प्राचीन एवं आधुनिक दृष्टि, अभिनेष कुमार जैन, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली।

★

भारत में समावेशी शिक्षा : वैश्विक नीतियों के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी*

"समावेशी शिक्षा का उद्देश्य सभी छात्रों, विशेषकर दिव्यांग छात्रों को समान शैक्षिक अवसर प्रदान करना है। यह दृष्टिकोण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक चुनौतियों का सामना करने वाले छात्रों को मुख्यधारा की शिक्षा में शामिल करने की कोशिश करता है। समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में समानता, पहुँच और समावेशन को बढ़ावा देती है, ताकि प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी आवश्यकता एवं क्षमताओं के अनुसार शिक्षा प्राप्त हो सके। जबकि देशों की समावेशी शिक्षा नीतियाँ भिन्न हो सकती हैं, इनका मुख्य उद्देश्य दिव्यांग छात्रों को समान अवसर प्रदान करना और शिक्षा की बाधाओं को समाप्त करना है। संयुक्त राष्ट्र का दिव्यांगजन के अधिकारों पर कन्वेंशन (CRPD–2006) और सतत विकास लक्ष्य–4 (SDG–4, 2015) समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए अंतर्राष्ट्रीय फ्रेमवर्क के रूप में कार्य करते हैं। हालांकि, कई देशों में अपर्याप्त संसाधन, शिक्षक प्रशिक्षण की कमी और विकलांगता के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण जैसी चुनौतियाँ समावेशी शिक्षा के प्रभावी कार्यान्वयन में रुकावट डालती है।"

समावेशी शिक्षा (प्दबसनेपअम म्कनबंजपवद) का उद्देश्य दिव्यांग विद्यार्थियों को सामान्य शिक्षा प्रणाली में समाहित करना और सभी बच्चों को समान, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है। यह अवधारणा विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक परिवर्तनों से जुड़ी हुई है और आज भी वैश्विक स्तर पर एक महत्वपूर्ण शैक्षिक लक्ष्य के रूप में परिलक्षित है। समावेशी शिक्षा का विचार 20वीं सदी के प्रारंभ में उत्पन्न हुआ, जब विशेष शिक्षा के अधिकारों पर वैश्विक चर्चा शुरू हुई। उस समय दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए अलग संस्थानों में शिक्षा प्रदान करने के बजाय, उन्हें मुख्यधारा के विद्यालयों में शिक्षा देने की आवश्यकता अनुभूति की गई। 1948 में संयुक्त राष्ट्र ने 'विश्व मानवाधिकार घोषणा पत्र' के माध्यम से शिक्षा का समान अधिकार सुनिश्चित किया, जिसमें दिव्यांगजन को भी शामिल किया गया।

19वीं सदी के अंत में विशेष शिक्षा के प्रति जागरूकता में वृद्धि हुई और "एजुकेशन फॉर ऑल" (EFA) जैसी पहल आरंभ की गईं, जो समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण कदम था, जिसके माध्यम से यह सुनिश्चित किया गया कि सभी बच्चों को, उनकी विकलांगता के बावजूद, समान शिक्षा प्राप्त हो। 1994 में UNESCO द्वारा आयोजित "विश्व सम्मेलन" ने समावेशी शिक्षा को एक अंतर्राष्ट्रीय नीति के रूप में स्वीकार किया और इसे केवल दिव्यांग विद्यार्थियों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि समाज के अन्य सभी वंचित समूहों के लिए भी इसे अनिवार्य माना गया।

वैश्विक दृष्टिकोण– समावेशी शिक्षा की नीति विश्व परिप्रेक्ष्य में विद्यमान है–

- संयुक्त राष्ट्र और समावेशी शिक्षाः संयुक्त राष्ट्र ने समावेशी शिक्षा के लिए 'सलामांका घोषणा–1994' जारी किया, जो शिक्षा के अधिकार को सार्वभौमिक मान्यता देने के लिए प्रतिबद्ध है।
- फिनलैंडः फिनलैंड ने अपनी शिक्षा प्रणाली में समावेशी दृष्टिकोण को अपनाया है, जिसमें विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य कक्षाओं में समाहित किया जाता है। फिनलैंड की शिक्षा नीति को विश्वभर में एक आदर्श माना जाता है।
- भारतः भारत ने भी समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएँ बनाई हैं, जैसे कि 'राइट टू एजुकेशन' (RTE–2009) अधिनियम, जो सभी बच्चों को शिक्षा का अधिकार प्रदान करता है।

*** सहायक आचार्य, डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर मुक्त विश्वविद्यालय, अहमदाबाद,, गुजरात –382481**

संयुक्त राज्य अमेरिकाः अमेरिका में, 'इंडिविजुअल्स विद डिसएबिलिटीज़ एजुकेशन एक्ट' (IDEA–1975) जैसे कानून हैं, जो विशेष रूप से दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए शिक्षा का अधिकार सुनिश्चित करते हैं।

21वीं सदी में, संयुक्त राष्ट्र के स्थिरता विकास लक्ष्यों (SDGs) में 'सभी के लिए समावेशी, समान और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा' (SDG 4) को प्राथमिकता दी गई। इस लक्ष्य का उद्देश्य 2030 तक समावेशी शिक्षा को सुनिश्चित करना है। 2015 में 'इनचियोन घोषणा' (Incheon Declaration) द्वारा सदस्य देशों को समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए दिशा–निर्देश दिए गए और समाज में विकलांगता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर बल दिया गया।

अध्ययन प्रक्रिया– प्रस्तुत अध्ययन समावेशी शिक्षा से संबंधित उपलब्ध साहित्य, नीति दस्तावेजों की व्यवस्थित समीक्षा पर आधारित है, जो राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संगठनों द्वारा प्रदान की गई हैं। इस विश्लेषण का उद्देश्य समावेशी शिक्षा नीतियों में वैश्विक प्रवृत्तियों, चुनौतियों और सफलताओं की पहचान करना है।

समावेशी शिक्षा नीतियाँः एक वैश्विक दृष्टिकोण– इस अध्ययन का उद्देश्य समावेशी शिक्षा नीतियों का विश्लेषण करना है, जिससे दिव्यांग विद्यार्थियों पर इन नीतियों के असर, कार्यान्वयन और चुनौतियों को समझा जा सके। मुख्यतःयह अध्ययन गुणात्मक आंकड़ों पर आश्रित है, जिसमें प्राथमिक द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर नीति समीक्षा, सर्वेक्षण और साहित्य विश्लेषण किया गया है।

समावेशी शिक्षा का वैश्विक दृष्टिकोण– समावेशी शिक्षा का उद्देश्य शैक्षिक प्रणाली को हर छात्र की विशिष्ट जरूरतों के अनुरूप बनाना है, ताकि सभी छात्र, चाहे उनकी शारीरिक, मानसिक या सामाजिक चुनौतियाँ कैसी भी हों, समान रूप से शिक्षा प्राप्त कर सकें। वैश्विक स्तर पर समावेशी शिक्षा की अवधारणा में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं, और यह अब एक व्यापक रूप से स्वीकार्य और मान्यता प्राप्त दृष्टिकोण बन चुकी है। भारत में भी समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई राष्ट्रीय नीतियाँ और कानूनी प्रावधान जैसे कि विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों के लिए अधिकार (RTE अधिनियम, 2009), 'दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016' एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 जैसे भारतीय कानूनों ने समावेशी शिक्षा को कानूनी मान्यता दी है। इन कानूनों और नीतियों ने भारत में दिव्यांगजन के लिए समान शैक्षिक अवसरों को सुनिश्चित किया है और समावेशी शिक्षा के कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साथ ही, संयुक्त राष्ट्र का दिव्यांगजन के अधिकारों पर कन्वेंशन (CRPD–2006) और सतत विकास लक्ष्य 4 (SDG 4) समावेशी शिक्षा को एक मानवीय अधिकार के रूप में मान्यता देते हैं।

कार्यान्वयन में चुनौतियाँ– समावेशी शिक्षा की सफलता के बावजूद कई देशों में कार्यान्वयन के दौरान चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं। Janka G. et.al. (2021) के अनुसार निम्न–आय वाले देशों में समावेशी शिक्षा के कार्यान्वयन के लिए संसाधनों की भारी कमी होती है, जैसे प्रशिक्षित शिक्षक, उपयुक्त बुनियादी ढाँचा और शिक्षण सामग्री की अनुपलब्धता। इसके अतिरिक्त, विकलांगताओं के प्रति समाजिक दृष्टिकोण भी समस्याएँ उत्पन्न करता है, जिससे दिव्यांग विद्यार्थियों को मुख्यधारा की कक्षाओं में समाहित करने में प्रतिरोध उत्पन्न होता है। Dana D. & Juan B. (2014) के अनुसार, अफ्रीका और अन्य विकासशील देशों में यह समस्याएँ और भी अधिक गंभीर हैं, जहां संसाधनों की कमी और प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव प्रमुख चुनौती बनकर सामने आता है।

वैश्विक भिन्नताएँ और संदर्भ–विशेष समाधान– समावेशी शिक्षा का कार्यान्वयन हर देश के सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक संदर्भ के अनुसार भिन्न होता है। उदाहरण स्वरूप, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में समावेशी शिक्षा प्रणालियाँ अधिक विकसित हैं, जहां दिव्यांग विद्यार्थियों को शिक्षा में समान अवसर प्रदान करने के लिए कई प्रभावी नीतियाँ अपनाई गई हैं। वहीं, भारत जैसे देशों में ग्रामीण इलाकों में प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी और बुनियादी ढाँचे की अपर्याप्तता प्रमुख समस्या है। यह दर्शाता है कि समावेशी शिक्षा को सफल बनाने के लिए स्थानीय संदर्भ और विशिष्ट जरूरतों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

समावेशी शिक्षा नीतियों के संदर्भ में वैश्विक स्तर पर महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, लेकिन कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। संसाधनों की कमी, समाजिक दृष्टिकोण, और अपर्याप्त शिक्षक प्रशिक्षण जैसे मुद्दे अभी भी समावेशी शिक्षा की सफलता में अवरोध उत्पन्न करते हैं। इन समस्याओं को दूर करने के लिए शिक्षा प्रणालियों में लक्षित निवेश और सभी हितधारकों की गहरी प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। इसके साथ ही, यह आवश्यक है कि समावेशी शिक्षा को स्थानीय संदर्भ और जरूरतों के आधार पर अनुकूलित किया जाए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि हर छात्र को गुणवत्ता वाली शिक्षा प्राप्त हो सके।

समावेशी शिक्षा नीतियाँ पिछले कुछ दशकों में वैश्विक स्तर पर महत्वपूर्ण रूप से उभरी हैं, विशेषकर संयुक्त राष्ट्र के ैक्ळ 4 जैसे अंतरराष्ट्रीय मानकों के प्रभाव से। यूरोपीय देशों ने दिव्यांग विद्यार्थियों को सामान्य कक्षाओं में समावेश करने की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया है, और देशों जैसे स्वीडन, फिनलैंड और कनाडा में इसे सफलतापूर्वक लागू किया गया है (UN–2015)। हालांकि, समावेशी शिक्षा नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन में प्रमुख चुनौतियाँ हैं, जैसे संसाधनों की कमी, प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव, और विकलांगता के प्रति नकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण। ये समस्याएँ विशेष रूप से गरीब और विकासशील देशों में अधिक स्पष्ट हैं (UNESCO–2020)। समावेशी शिक्षा न केवल दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए, बल्कि सभी छात्रों के लिए फायदेमंद है। यह सामाजिक एकजुटता को बढ़ावा देती है और छात्रों के आत्म–सम्मान तथा शैक्षिक प्रदर्शन में सुधार करती है। जिन देशों में समावेशी शिक्षा सफल रही है, जैसे फिनलैंड और कनाडा, वहाँ दिव्यांग विद्यार्थियों का शैक्षिक प्रदर्शन बेहतर होता है (UNESCO, 2021)।

समावेशी शिक्षा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, लेकिन कार्यान्वयन में चुनौतियाँ अभी भी हैं। इन समस्याओं का समाधान संदर्भ के अनुसार नीतियों के सुधार और शिक्षक प्रशिक्षण में निवेश के द्वारा किया जा सकता है। जिन देशों में पर्याप्त संसाधन और राजनीतिक इच्छाशक्ति है, वहाँ समावेशी शिक्षा नीतियाँ सफल रही हैं और दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए बेहतर परिणाम दिए हैं (UNICEF, 2020)।

निष्कर्ष– समावेशी शिक्षा नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए शिक्षक प्रशिक्षण और संदर्भ–विशेष नीतियों पर ध्यान केंद्रित करना अत्यंत आवश्यक है। सरकारों को विशेष रूप से ग्रामीण और निम्न–आय वाले क्षेत्रों में शिक्षा संसाधनों और सहायक तकनीकी उपकरणों में निवेश बढ़ाने की आवश्यकता है। साथ ही, परिवारों और समुदायों को इस प्रक्रिया में शामिल करके सामाजिक दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन लाना जरूरी है, ताकि एक समावेशी शैक्षिक वातावरण स्थापित किया जा सके। समावेशी शिक्षा नीतियाँ अब वैश्विक शैक्षिक ढाँचों का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी हैं। हालांकि कार्यान्वयन में चुनौतियाँ बनी हुई हैं, लेकिन उपयुक्त संसाधन, शिक्षक प्रशिक्षण और वैश्विक सहयोग के माध्यम से इन्हें सफलतापूर्वक लागू किया जा सकता है। समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, लेकिन कई देशों को इन नीतियों को और अधिक सुदृढ़ तथा प्रभावी रूप से लागू करने के लिए अतिरिक्त प्रयासों की आवश्यकता है।

शैक्षिक निहितार्थ– समावेशी शिक्षा नीतियाँ शिक्षा प्रणालियों में गहरे बदलाव की मांग करती हैं। इसके लिए पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र में आवश्यक परिवर्तन किए जाने चाहिए, ताकि वह सभी छात्रों की विविध शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा कर सके। पाठ्यक्रम को इस प्रकार से डिज़ाइन किया जाना चाहिए कि वह समावेशी शिक्षा के सिद्धांतों को लागू कर सके, जैसे कि यूनिवर्सल डिज़ाइन फॉर लर्निंग (न्क्स्), जो कई देशों में सकारात्मक परिणाम दे चुका है। समावेशी शिक्षा की सफलता शिक्षक प्रशिक्षण पर निर्भर करती है, इसलिए शिक्षकों को विकलांगताओं के प्रबंधन और सहायक उपकरणों के प्रभावी उपयोग के लिए विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। इसके साथ ही, समावेशी शिक्षा नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए स्कूलों में आवश्यक संसाधनों और बुनियादी ढाँचे में निवेश करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। समावेशी शिक्षा न केवल शैक्षिक सफलता को बढ़ावा देती है, बल्कि यह सामाजिक समावेशन को भी प्रोत्साहित करती है, जिसके लिए विकलांगता के प्रति समाजिक दृष्टिकोण में बदलाव लाने के लिए जागरूकता अभियानों की आवश्यकता है। इसका मुख्य उद्देश्य समानता और सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करना है, और SDG 4 तथा अन्य वैश्विक सहयोग इसके लिए एक अहम सहारा बन रहे हैं। समावेशी शिक्षा को वैश्विक स्तर पर

बढ़ावा देने के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग और सर्वोत्तम प्रथाओं का आदान–प्रदान भी अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकार, समावेशी शिक्षा न केवल दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए, बल्कि सभी छात्रों के लिए एक लाभकारी और सशक्त शैक्षिक प्रणाली बनाने का मार्ग प्रशस्त करती है।

संदर्भ–सूची :–

1. Dana D. & Juan B. (2014). The challenges of realising inclusive education in South Africa, vol.34 n.2 https://scielo.org.za/scielo.php?script=sci_arttext&pid=S0256-01002014000200003https://scielo.org.za/scielo.php?script=sci_arttext&pid=S0256-01002014000200003%20eng
2. Janka G. Susanne S. & Lisa H. (2021) A matter of resources? – Students' Academic Self-concept, Social Participation and School-Wellbeing in Inclusive Education. https://www.researchgate.net/figure/Multi-Level-Regression-Model-for-Predicting-Students-School-Well-Being-Social_tbl1_348564306
3. National Education Policy, 2020: Ministry of Education, Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Government of India. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
4. RTE Act, 2009: Government of India. (2009). Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009. Ministry of Law and Justice. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/upload_document/RTE_Section_wise_rationale_rev_0.pdf
5. Rights of Persons with Disabilities Act, 2016: Government of India. (2016). The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016. Ministry of Law and Justice. https://www.indiacode.nic.in/bitstream/123456789/15939/1/the_rights_of_persons_with_disabilities_act%2C_2016.pdf
6. UNESCO. (1990). World Declaration on Education for All and Framework for Action to Meet Basic Learning Needs. UNESCO. https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000127583
7. UNESCO. (1994). The Salamanca Statement and Framework for Action on Special Needs Education. UNESCO. https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000098427
8. UNESCO. (2015). Incheon Declaration and Framework for Action for the implementation of SDG 4. UNESCO. https://uis.unesco.org/sites/default/files/documents/education-2030-incheon-framework-for-action-implementation-of-sdg4-2016-en_2.pdf
9. UNESCO (2020): UNESCO. (2020). Global education monitoring report 2020: Inclusion and education: All means all. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization. https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000392264?posInSet=1&queryId=N-EXPLORE-38d14c7f-d805-41a7-a042-41305a31ea5b
10. United Nations. Convention on the Rights of Persons with Disabilities. United Nations, 2006. https://www.un.org/disabilities/documents/convention/convoptprot-e.pdf.
11. United Nations. Universal Declaration of Human Rights. United Nations, 1948. https://www.un.org/en/universal-declaration-human-rights/
12. UNESCO (2021): UNESCO. (2021). Global education monitoring report 2021: The state of the education report 2021: Education and disability - Analysis of the 2021 GEM report. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization. https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000379875
13. UNICEF (2020): UNICEF. (2020). The state of the world's children 2020: Children, food and nutrition: Growing well in a changing world. United Nations Children's Fund. https://www.unicef.org/media/106506/file/The%20State%20of%20the%20World%E2%80%99s%20Children%202019.pdf
14. Universal Design for Learning (UDL): CAST. (2018). Universal Design for Learning Guidelines, version 2.2. CAST. https://udlguidelines.cast.org/

श्रीरामचरितमानस : मनोभाषिक महाकाव्य

प्रो. गंगाधर वानोडे*
दीपेन्द्र कुमार**

सारांश – भारत की प्रसिद्ध रामकथा 'श्रीरामचरितमानस' का वैश्विक स्तर पर एक विशेष महत्व है। भारत सहित समूचे विश्व में 'श्रीरामचरितमानस' भाषा अथवा काव्य साहित्य के रूप में प्रचलित है। श्रीरामचरितमानस को विदेशों में जहां अनेक कवियों ने अपने मनोभाषिक दृष्टिकोण व रचना ढंग से समाज को उपलब्ध कराया है, तो वहीं उस समाज के विभिन्न वर्गों ने भी अपने सांस्कृतिक परिवेश व जीवन शैली से मेल खाती रामकथाओं को अपने जीवन में स्वीकार किया है। प्रस्तुत आलेख में हम उत्तर भारत में प्रसिद्ध, लोकप्रिय व प्रचिलत रामकथा 'श्रीरामचरितमानस' की रचना में आधारित मनोभाषिक पक्ष का अध्ययन व चर्चा करेंगे। इस 'श्रीरामचरितमानस' रामकथा महाकाव्य की रचना कविश्रेष्ठ गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा की गई है। जो मूलतः महर्षि वाल्मीकि की 'रामायण' के कथानक पर आधारित है। तुलसीदास जी की इस रचना 'श्रीरामचरितमानस' में तुलसी ने अपने मनोभाषिक विचारों एवं दृष्टि भावना से जो भावानुभूति प्रकट की है, वह अतुल्य है और उसके भावानुभूति प्रभाव व उत्कृष्ट प्रस्तुति से ही आज तुलसी जी की 'श्रीरामचरितमानस' महर्षि वाल्मीकि की मूल रामायण से भी अधिक लोकप्रिय है। आज उत्तर भारत में ही नहीं वरन् विश्व में 'श्रीरामचरितमानस' को 'तुलसी की रामायण' के नाम से जाना जाता है।

तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य रामचरितमानस भक्ति काव्य की महान एवं हिंदी साहित्य की श्रेष्ठ रचना है। तुलसी का यह 'श्रीरामचरितमानस' महाकाव्य सात भागों में विभाजित है जिन्हें काण्ड कहा गया है, जैसे बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड आदि। इन विभिन्न काण्डों से कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों को यहाँ चर्चा एवं अध्ययन के लिए चुना गया है। रामचरितमानस मुख्य रूप से दोहा और चौपाई छन्दों में रचा गया है। इस इकाई में रामचरितमानस के बालकाण्ड से अंश प्रमुख हैं जिनमें 'श्रीरामचरितमानस' में व्याख्या के माध्यम से तुलसी की भक्ति भावना, उनके काव्य संबंधी विचारों और काव्य की विशिष्टता को समझाने का प्रयास किया गया है। भगवान राम पर आधरित 'श्रीरामचरितमानस' मानव के जीवन संघर्ष की एक महान गाथा है। जिसमें मनुष्य और समाज के अंर्तसंबंधों के सभी पदों का जितना सूक्ष्म अंकन तुलसीदासजी ने श्री रामचरितमानस में मिलता है वैसा अन्यत्र दिखलाई देना अति दुर्लभ है।

बीज शब्द – रामचरितमानस, मनोभाषिक, पक्ष रामकथा, श्रीरामायण, बाल्मीकि, तुलसी, पक्ष, रचना, मानस, उदय, कल्पना, कल्याण, सुखद, भावना, स्वप्नलोक, वर्ण, व्यवस्था।

मूल आलेख – गोस्वामी तुलसीदास जी का 'श्रीरामचरितमानस' महाकाव्य उनके मन के भक्ति–भाव को भाषा के माध्यम से उजागर कर धरातल पर उकेरने वाला ऐतिहासिक ग्रंथ है। सनातन धर्म में धार्मिक पुस्तक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त प्रभु श्रीराम की अमरकथा के इस पावन–पवित्र ग्रंथ श्रीरामचरितमानस को तुलसीदास जी ने मूल रूप से अवधी भाषा में रचना कर उपलब्ध कराया। किंतु निरंतर जनमानस में बढ़ती लोकप्रियता के कारण ही इसका अनुवाद भारत के साथ विश्व की लगभग सभी मुख्य भाषाओं में किया जा चुका है। वर्तमान में आज तुलसीदास की यह रामचरितमानस भारत के घर–घर की रामायण कही जाती है। उत्तर भारत की यह रामचरितमानस आज वैश्विक स्तर पर होने के कारण इसे विश्व की रामकथा होने का भी गौरव प्राप्त है। तुलसी जी की 'रामचरितमानस' रचना का आधार ग्रंथ मूल 'वाल्मीकि रामायण' है, जो संस्कृत भाषा का पौराणिक ग्रंथ है। सनातन धर्म के जुड़े पारंपरिक महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस' को देश–विदेश में फैले हिंदुओं के अतिरिक्त विभिन्न धर्म–समुदायों के अनुयायियों ने भी अपनी भाषा और संस्कृति में इसे अपनाया और स्वीकार किया है। तुलसीदास जी ने वाल्मीकि रामायण की रामकथा को अपने

***सह–निर्देशक एवं क्षेत्रीय निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, हैदराबाद केंद्र – 500011**
**** पी–एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, मणिपुर अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, मणिपुर–795140, इंफाल।**

मनोभाषिक भक्ति–भाव में अभिव्यक्त व प्रस्तुत किया है। साथ ही उन्होंने श्रीरामचरितमानस के माध्यम से समाज को कर्म की प्रधानता व महत्वता का संदेश भी दिया है– ***'करम प्रधान बिस्व कवि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।'***

महाकवि महर्षि वाल्मीकि जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राजा श्रीरामचंद्र को 'श्रीरामायण' में जहां आदर्शवादी, आज्ञाकारी, पितृभक्त, धर्मनिरपेक्ष, परोपकारी, सत्यवादी, अटलनिष्ठ, निष्ठापूर्ण, सत्याग्रही, दण्डनायक, न्यायप्रिय, मित्रव्ययी आदि नाना प्रकार के रूपों और गुणों से परिभाषित किया है। तो वहीं महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी अमूर्त भक्ति भावना व दिव्य दृष्टि से 'श्रीरामायण' के इन्हीं पात्र राजा श्री रामचंद्र को तीनों लोकों के नाथ के रूप में पहचान करते हुए रघुनाथ को साक्षात् ईश्वर की संज्ञा प्रदान की है। इतना ही नहीं गोस्वामी जी ने अपने मनोभाषिक व्यवहार की लेखनी में भगवान श्रीराम की स्तुति साथ मूल रामायण में प्रभुराम की जीवनी के रचियता महर्षि वाल्मीकि को भी भगवान तुल्य ही दर्जा दिया है। तुलसीदास जी की इस महानतम् मनोभाषिक अभिव्यक्ति से ही समस्त रामकथाओं में 'श्रीरामचरितमानस' सर्वाधिक प्रचलित और मान्यता प्राप्त है। 'श्रीरामचरितमानस' में तुलसीदास जी ने संपूर्ण रामकथा को अपने विरक्त अनुग्रह व आनंद भाव से प्रस्तुत किया है। जिसे आज भारत सहित वैश्विक साहित्य स्तर पर जनमानस ने सहज रूप से स्वीकार किया है।

'श्रीरामचरितमानस' पर तुलसी का मनोभाषिक पक्ष– महाकवि गोस्वामी तुलसीदास भारतीय संस्कृति व जनमानस के कवि हैं। उन्होंने प्रभु श्रीराम को अपनी मनुस्तुति में धारण करके पवित्र मन और हृदय की मिश्रित भाषा समन्विति में 'श्रीरामचरितमानस' की रचना की है। महाकवि तुलसी दास जी ने 'रामचरितमानस' के रूप में एक ऐसा साहित्य रचा है, जो आज भारतीय जनमानस का सबसे पवित्र, धार्मिक व अलौकिक ग्रंथ है। तुलसी जी की यह मनोभाषिक रचना संसार भर के भारतीय जनमानस में आज आदर्श व संस्कृति के संग्रहित मूल्यों के रूप में बसा हुआ है। तुलसीदास जी ने जब श्रीरामचरितमानस की रचना की, तब किसी ने उनसे पूछा कि–बाबा! आपने अपनी इस सुंदर रचना का नाम रामायण क्यों नहीं रखा? क्योंकि इसकी कहानी और वास्तविक कथा का असल नाम तो रामायण ही है। आप तो बस, रामायण लिखकर उसके आगे या पीछे कोई नाम लगा देते, जैसे–वाल्मीकि रामायण, आध्यात्मिक रामायण, अद्भुत रामायण, कंबन रामायण आदि। आपने इसका नाम 'श्रीरामचरितमानस' ही क्यों रखा? तब तुलसीदास जी ने उस पूछने वाले से कहा–कि मैंने इसका नाम श्रीरामचरितमानस इसलिए रखा है क्योंकि 'रामायण' और 'रामचरितमानस' में एक बहुत बड़ा अंतर है। रामायण का अर्थ है–राम का मंदिर अथवा राम का घर। जब हम मंदिर जाते हैं तो एक समय पर जाना होता है। मंदिर जाने के लिए नहाना पड़ता है। जब मंदिर जाते हैं तो खाली हाथ नहीं जाते। कुछ फूल, फल आदि साथ लेकर जाना होता है। मंदिर जाने कि शर्त होती है। मंदिर साफ सुथरा होकर जाया जाता है। जबकि 'मानस' अर्थात 'सरोवर'। सरोवर में जाने की ऐसी कोई शर्त नहीं होती। समय की पाबंधी नहीं होती। जाति का भेद नहीं होता कि केवल हिंदू ही सरोवर में स्नान कर सकता है। कोई भी हो, कैसा भी हो? और व्यक्ति जब मैला होता है, गंदा होता है, तभी सरोवर में स्नान करने जाता है। श्रीरामचरितमानस माँ गोद की तरह है और माँ की गोद में कोई भी, कभी भी, कैसे भी बैठ सकता है।

दूसरी बार तुलसीदास जी ने जब रामचरितमानस किताब पर ये शब्द 'रामचरितमानस' लिखे तो, ऐसा नहीं लिखा, खड़े में लिखा रामचरितमानस। तो फिर किसी ने गोस्वामी तुलसीदास जी से अपनी जिज्ञासावश पूछा कि आपने यह 'रामचरितमानस' खड़े में क्यों लिखा है? तब जबाव में गोस्वामी जी कहते है कि–'श्रीरामचरितमानस' भगवान 'श्रीराम' के दर्शन की और 'श्रीराम' मिलन की सीढ़ी है। क्योंकि जिस प्रकार हम घर में कलर कराते हैं, तो एक लकड़ी की सीढ़ी लगाते हैं, जिसे हमारे यहाँ 'नसेनी' कहते हैं, जिसमें डंडे लगे होते हैं। गोस्वामी जी कहते हैं कि रामचरितमानस भी श्रीराम से मिलन की सीढ़ी है, जिसके प्रथम डंडे पर पैर रखते ही श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन होने लगते हैं, अर्थात् यदि रामचरितमानस का कोई बालकाण्ड ही पढ़ ले, तो उसे राम जी का दर्शन हो जायेगा– ***"रामचरित मानस एहिनामा, सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा।"***

तुलसीदास जी का महाकाव्य श्रीरामचरितमानस एक शिक्षा प्रदाता ग्रंथ है। जिसमें पात्रों के द्वारा प्रसंगों में शिक्षा व संकेत आदि की मनोभाषिकता में तुलसी का सार समाहित है। रामचरितमानस के अध्ययन से जीवन के कठिन समय में संघर्ष की दृढ़ता व धैर्यता का बोध होता है। तुलसीदास जी की मनोभाषिकता के आधार पर उनकी मान्यता है कि श्रीरामचरितमानस के वाचन, श्रवण व उच्चारण से प्रभु श्रीराम की कृपा जीवन को सुखमय बनाती है। तुलसीदास जी की मनोभाषिकता व भावाभिव्यक्ति ही है कि वे मानते हैं कि श्री रामचरितमानस में प्रयुक्त की गई चौपाइयों में ऐसी क्षमता व शक्ति है कि इसकी चौपाइयों के जाप करने से ही मनुष्य बड़े–से–बड़े संकट व कष्टों से मुक्त हो जाता है।

तुलसी की भक्तिमय मनोभाषिकता के प्रारंभ से मानस का 'उदय'– कविवर तुलसीदास ने प्रभु श्रीराम के पवित्र आदर्श चरित्र में मानस जीवन की संपूर्ण दिशाओं और समाज के समस्त क्षेत्रों में जिन आदर्शों की स्थापना की है, उनका श्रेष्ठ मनोभाषाई सार गोस्वामी जी की 'श्रीरामचरितमानस' में प्रस्तुत है। तुलसी जी की मान्यता है कि इस पवित्र मनोभाषिक रचना के आधार पर ही एक आदर्श समाज की रचना–स्थापना संभव है। भगवान प्रभु श्रीराम के जीवन में उन्होंने पिता–पुत्र, भाई–भाई, गुरु–शिष्य, पति–पत्नी, राजा–प्रजा आदि सभी संबंधों का आदर्श रूप उपस्थित कर सभी के प्रति कर्तव्यों का निवर्हन अपने मन के विशेष भावों के द्वारा भाषेत्तर रूप में प्रस्तुत किया हैं। तुलसीदास जी की भक्तिमय मनोभाषिकता का प्रारंभ उनकी पत्नी के माध्यम से हुआ–

"अस्थि चर्म मय देह में, तामें ऐसी प्रीति,
जो होती श्रीराम में, तौ न होती भवभीत।"

भगवान प्रभु 'श्रीराम' को भारतीय जनमानस में जीवंत व संचारित करने की आवश्यकता को तुलसीदास ने सहचरी की एक मात्र पंक्ति से स्वीकार कर लिया। तुलसीदास ने इस पंक्ति के माध्यम से अपने जीवन के लक्ष्य और भविष्य के उद्देश्य को स्पष्ट कर लिया और आगे चलकर रामभक्ति के अथाह सागर में समाकर, समर्पण भक्ति भावना की मनोभाषकता से ही उनके द्वारा 'श्रीरामचरितमानस' जैसे महाकाव्य का उदय हुआ। तुलसीदास की जीवनी पर प्रकाश डालें तो तुलसीदास मानव मूल्यों के उपासक थे। कविवर गोस्वामी तुलसी की 'श्रीरामचरितमानस' रचना हर उम्र, हर वर्ग और हर परिस्थिति में लोगों को अपना जीवन जीने व सत्य निष्ठ संघर्ष की एक बेहतर मनोभाषिक प्रेरणा देती है।

रामचरितमानस की रचना आवश्यकता में तुलसी का मनोभाषिक आधार– तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस में भगवान श्रीराम को आध्यात्मिक तत्व माना है। आध्यात्म रामायण की रचना महर्षि वेदव्यास द्वारा की गई है, जो संस्कृत भाषा में की गई थी। ब्राह्मण्ड पुराण के उत्तरखण्ड के अंतर्गत एक आख्यान के रूप में इसकी रचना हुई है। इसे आधार में रखकर श्रीरामचरितमानस की रचना गोस्वामी तुसलीदास द्वारा संवत 1633 में संपन्न की गई थी। अवधी भाषा में रचित इस महाकाव्य की रचना में दो वर्ष सात महीने छब्बीस दिन लगे थे। इसमें ग्रंथ में बालकाण्ड, आयोध्या कांड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दरकाड, लंकाकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड के रूप में सात काण्ड है। सागर में सागर की भांति इन सात काण्डों में ही श्रीराम के सम्पूर्ण चरित्र को समाहित किया गया है। वाल्मीकि रामायण की श्रीरामकथा से प्रकट होने वाली श्रीरामचरितमानस को तुलसी की रामायण के नाम से भी जाना जाता है।

श्री रामानंद सागर की टीवी सीरियल रामायण में भी भक्ति का समावेश का श्रेय तुलसीदास की रामचरितमानस को जाता है, क्योंकि श्री रामानंद सागर की रामायण का कथानक श्रीरामचरितमानस से लिया गया है। श्री रामानंद सागर की रामायण में श्रीराम द्वारा स्थापित शिवलिंग के नामकरण 'रामेश्वर' शब्द के अर्थ पर दोहरी मनोभाषिकता का भाव प्रकट किया गया है। भक्ति सरोवर में सरावोर टीवी सीरियल की रामायण में भगवान श्रीराम ने महादेव शिव शंकर को अपना इष्ट व आराध्य होने के कारण ही श्रीराम ने पूजा अर्चन के बाद शिवलिंग को 'रामेश्वर' की संज्ञा प्रदान की है। तो वहीं दूसरी ओर भगवान शिव शंकर श्रीराम को अपना आराध्य मानते हैं, उनका पक्ष है कि श्रीराम जिससे ईश्वर हैं अर्थात् वही 'रामेश्वर' है। इसलिए श्रीराम शिव के ईश्वर अर्थात् 'रामेश्वर' हैं। रामायण में श्रीराम और शिव शंकर दोनों ही एक दूसरे के प्रति शिवलिंग के माध्यम समर्पण व भक्ति भावना की प्रकट करते हैं। इस प्रसंग से रामायण व रामचरितमानस के रचनाकारों के मनोभाषिक पक्ष का बिंब प्रत्यक्ष स्पष्ट होता है।

तुलसी जी की भगवान राम के प्रति सच्ची श्रद्धा का ही परिणाम है कि वाल्मीकि रामायण के काफी प्राचीन होने के पश्चात भी 'श्रीरामचरितमानस' आज उत्तर भारत की 'रामायण' या 'तुलसी की रामायण' के रूप

में गौरव प्राप्त महाकाव्य है। तुलसीदास जी भगवान विष्णु को एक पौराणिक अवतार के रूप में राम की महिमा का गुणगान करते हैं, तो वहीं श्रीराम को भगवान शिव का भक्त भी बताते हैं, क्योंकि तुलसीदास शैव थे। तुलसीदास की प्रभु भक्ति एवं श्रीराम के प्रति सच्ची आस्था और अनुराग को सामाजिक स्वीकृति का यह जीवंत उदाहरण है। श्रीरामचरितमानस को समाज ने आध्यात्म से जोड़ कर पूजनीय माना है। उत्तर भारत में आज हर घर, मंदिर, पूजा स्थल, पुस्तकालय, पुस्तक स्टाल, अंतर्राष्ट्रीय पुस्तकालय, कॉलेज, विश्वविद्यालय, स्कूल आदि में रामचरितमानस की एक पुस्तक अवश्य ही मिल जाती है।

तुलसीदास द्वारा 'श्रीरामचरितमानस' की रचना अथवा पुनः लेखन की आवश्यकता के संबंध में विद्वानों का मत है कि काल प्रभाव व सामाजिक कारणों से रामचरितमानस की रचना आवश्यकता उत्पन्न हुई। क्योंकि गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म भारतीय इतिहास के ऐसे नारकीय युग में हुआ था। जब भारत में शासक लोग अति क्रूर, निर्दयी और हिंदुओं पर अत्याचार करने वाले थे। उन अति क्रूर, निर्दयी शासकों द्वारा हिंदुओं के धर्म–आचरण को प्रतिबंधित व अवरोधित किया जा रहा है। इन शासकों द्वारा हिंदू धर्म की धार्मिक व सांस्कृतिक मान्यताओं पर भी पांबदी लगाई जा रही थीं। शासकों की क्रूरता का आलम यह था कि सनातन धर्म के लोगों को प्रताड़ित करने का अवसर ढूँढ़ा जाता था।

शासकों के निर्देशा द्वारा हिंदुओं के धार्मिक स्थल मंदिर, पूजास्थल आदि तोड़े जा रहे थे, हिंदुओं की भावना को आहत करने और भावनाओं से खेलने का गंदा खेल खेला जा रहा था। पीड़ित और शोषित हिंदुओं की आवाज़ दबाने के साथ–साथ वे क्रूर शासक हिंदुओं की स्त्रियों को भी जबरन अपना शिकार बना रहे थे। उनके सैनिक कभी किसी भी स्त्री को उठाकर ले जाते और शोषण, सामूहिक बलात्कार आदि करने के बाद जीवन तबाह कर देते अथवा हत्या कर देते थे। हिंदुओं के परिवारों को जबरन धर्मांतरण तक कराया जा रहा था। हिंदुओं का जीवन पूरी तरह से दहशत में था और वे अत्यधिक भयभीत थे। हिंदुओं के परिवारों की स्त्रियाँ लोकलाज के भय व क्रूरता की यातनाओं के खौफ में जीतीं थीं। कभी–कभी क्रूरता व निर्दयता से प्रताड़ित हिंदू परिवार भयभीत व परेशान होकर जीवन को समाप्त तक कर लेते थे। ऐसे कठिन समय में हिंदुओं के मन में भगवान के प्रति श्रद्धा से अधिक क्रूर शासकों भय अधिक घर कर रहा था। तब तुलसीदास ने मानस की रचना का प्रांरभ किया।

तुलसीदास ने रामचरितमानस को कुछ अलग रूप में संपादन करने के उद्देश्य के साथ घर–घर में हरि नाम शुरू करने की भावना से इसका श्रीगणेश किया। तुलसी जी ने उस कठिन दौर में अपने सनातन धर्म के गौरवशाली अतीत को सुदृढ़ करने व बचाये रखने दीर्घ रक्षा भावना से ही श्रीरामचरितमानस का निर्माण प्रारंभ किया। तुलसी जी ने अपनी विरक्त भक्तिभय भावना में प्रभु श्रीराम के समर्पण भाव व भक्ति अंदाज में फिर से हिंदुत्व प्रभाव हासिल करने के लिए श्रीरामचरितमानस को लिखा। उन्होंनें इसके माध्यम से हिंदुओं को श्रीराम के प्रतिभक्ति भाव का संदेश दिया कि तीनों लोकों के नारायण भगवान श्रीहरि ही हैं तो प्रभु राम के रूप में उपस्थित होकर दुनियों को रावण जैसे क्रूर शासक से बचाने आए थे। श्रीराम की कृपा से सब कुछ शीघ्र ही ठीक हो जाएगा। तुलसी की रचना श्रीरामचरितमानस हिंदुओं को विशेष प्रभाव व मनोभाषिक शक्ति प्रदान करने के साथ एक नई सोच भी देती और जोश संचार के साथ जीवन संघर्ष की शक्ति भी प्रदान करती है।

रामचरितमानस में लोक–कल्याण भावना का मनोभाषिक पक्ष– 'श्रीराचमरितमानस' के भगवान श्रीराम द्वारा अवसर लेने का मूल कारण लोक कल्याण की भावना ही है। तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस में समाज व लोक–मंगल के कल्याण की कामना को सिद्ध करते हुए अपने आराध्य प्रभु श्रीराम के आदर्श रूप की संकल्पना को समाज में स्थापित किया है। तुलसीदास ने अपनी रामकथा श्रीरामचरितमानस में श्रीराम के द्वारा लोक–कल्याण और जन–उद्धार के कई प्रसंगों का वर्णन किया है। रामचरितमानस में सामाजिक कल्याण और लोक–कल्याण की भावना को दर्शाते हुए कई प्रसंग मौजूद हैं, जिनमें ऋषि मुनियों के यज्ञों की रक्षा, प्रजा व उनके हितों की रक्षा हेतु राक्षसों का संहार, सुपर्णखा से पत्नी व परिवार की रक्षा, बालि से भाई सुग्रीव की रक्षा, अहिल्या का उद्धार, जटायु, शबरी आदि प्रसंग मौजूद हैं। लोक–कल्याण हेतु रावण, कुंभकर्ण, मेघनाथ आदि का उद्धार हो अथवा लोक–कल्याण हेतु राक्षसों का विनाश और विभीषण का राज्याभिषेक। तुलसी की मानस में यह सभी कार्य लोक कल्याण के आधारभूत ही हैं।

तुलसी जी की विलक्षण प्रतिभा इस बात में भी है कि उन्होंने भक्त और रचनाकार की भूमिकाओं का एक साथ निर्वहन कर श्रीरामचरितमानस को प्रस्तुत किया है। रामचरितमास में तुलसी दास जी ने अपनी भावनाओं के माध्यम अपने प्रभु श्रीराम की स्तुति तो की ही है, साथ ही भगवान श्रीराम के शक्ति और शील के सर्वश्रेष्ठ निरुपक बोध का भी वर्णन किया है। तुलसी ने अपनी भक्ति साधना को आराध्य के विराट व भव्य गुणों में वर्णित किया है। तुलसी दास जी ने श्रीराम के ऐसे नाना प्रकार के गुणों का बखान श्रीरामचरितमानस में किया है, जो समाज अथवा लोक–कल्याण की सुंदर भावना को संजोए हुए हैं। मनुष्य का सुख मन की प्रकृति व भाषा व्यवहार पर निर्भर होता है। रामराज में प्रजा अपने राजा भगवान श्रीराम के प्रति आश्वस्त है और प्रजा का मत है कि श्रीराम के राज्य से तीनों लोकों में तो खुशी है ही जनता के सारे कष्ट समाप्त होने का समय आ गया है। श्रीराम के प्रति जनमानस और प्रजा की आस्था इस प्रकार की है कि उनके प्रभु श्रीराम के आगमन अथवा राज्य स्थापना से प्रजा के कष्ट का निवारण निश्चित होता है– ***राम–राज बैठे त्रिलोको, हर्षित भए गयऊँ सब सोका।।***

तुलसी जी का रामचरितमानस न सिर्फ हिंदी का बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का सर्वाधिक, सुनियोजित प्रबंध–काव्य है। रामचरितमानस के माध्यम से तुलसी की अद्भुत समन्वय भावना व विलक्षण मनोभाषिकता के दर्शन होते हैं। रामचरितमानस में जहां तुलसीदास जी एक ओर हृदय में पावन भावों का संचार करते हैं तो दूसरी ओर उन पावन भावों को भाषा के माध्यम से इस प्रकार से रचना करते हैं कि उनमें अपने आराध्य प्रभु श्रीराम की भक्ति, समर्पण भावना, समरसता, गुणगान आदि जीवन की अनेक समस्याओं के समाधान के साथ प्रस्तुत करते है। तुलसी की भक्ति भावना भक्ति आडंबर से रहित हैं, उसमें विविध विधि–विधानों की आवश्यकता ही नहीं है। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लोक और शास्त्र, ग्रहस्थ और वैराग्य, प्रवृति और निवृति, सगुण और निर्गुण, भक्ति और ज्ञान, पुराण और काव्य, भाषा और संस्कृति का अद्भुत समन्वय किया है, तुलसी की उत्तम अभिव्यक्ति का महाकाव्य रामचरितमानस है जो लोक व समाज कल्याण के हितों के हर पहलू को छूता व दर्शाता है। सम्पूर्ण विश्व साहित्य आज तक में श्रीरामचरितमानस जैसे विशाल, विराट और भव्य शक्ति, शील और सौन्दर्य से परिपूर्ण मनोभाषिक ग्रंथ का निर्माण अब तक नहीं हुआ।

श्रीरामचरितमानस में तुलसी सुखद कल्पना का मनोभाषिक तत्व – 'श्रीरामचरितमानस' के 'श्रीराम' और 'रामराज्य' दोनों ही तुलसीदास की सनातन कल्पना के आदर्श व आधार हैं। इस संकेत को समझने पर ही 'रामराज्य' की सच्ची संकल्पना का प्रतिबिंब प्रदर्शित होता है। महाकाव्य रामचरितमानस मध्यकाल के हमारे सबसे महान् व लोकवादी कवि गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा कल्पित एक भक्तिमय स्वप्नलोक है। तुलसी जी की कल्पना से साकार 'श्री रामचरितमानस' महाकाव्य आज अपने समय की सीमाओं से युक्त होते हुए भी वर्तमान में हमारे लिए संदर्भवान और प्रेरणाप्रद बन गया है। आज भी राज्य संकल्पना–व्यवस्था इतनी त्रुटिहीन नहीं है कि वह 'रामराज्य' से आगे बढ़ी सकी हो। तुलसी के श्रीरामचरितमानस के 'रामराज्य' का महत्त्व हमारे युग के श्रेष्ठ भारतीय महात्मा गांधी ने बेहतर समझा था। इसीलिए उन्होंने अपने युग के आंदोलन का लक्ष्य 'रामराज्य' को बनाया था। रामराज्य कोई आध्यात्मिक या अंतस्साधनात्मक उपलब्धि नहीं है, और न ही वह भक्तिमय तथा समर्पण भावों से युक्त ब्रह्मानंद या अमृतसरोवर का रस पीने या परमसमाधि है। वह तो संसार के दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से मुक्त हो जाने की स्थिति है–

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज्य काहुहि नहि ब्यापा।।
बैर न कोउ काहू संग कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।

श्रीरामचरितमानस के श्रीराम के राजा होने पर तीनों लोकों में व्याप्त सभी के शोक दूर हो गए और प्रजाजन आदि हर्षित हो गए हैं। किंतु तुलसी दास जी के 'श्रीरामचरितमानस' में शोक के दूर होने और हर्षित होने के कई अन्य कारण भी आधारित हैं। जैसे–किसी को किसी से बैर नहीं रह गया और राम के प्रताप से विषमता दूर हो गई। वह विषमता भौतिक दुःखों की जड़ है, वह चाहे जिस प्रकार की हो। अर्थात् लोगों को शोक नहीं है, रोग दूर हो गए हैं। किसी की अल्प आयु में मृत्यु नहीं होती, सभी सुन्दर हैं, सबके शरीर निरोग कोई रोगी नहीं हैं। रामराज्य में कोई दरिद्र, दुःखी और दीन नहीं है, कोई मूर्ख और लक्षणहीन भी नहीं है –

अल्प मृत्यु नहि कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब विरुज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।

तुलसी की श्रीरामचरितमानस के रामराज्य में प्रकृति भी सुखद और अनुकूल है। वृक्ष और वन फूलते–फलते हैं। हाथी और शेर एक साथ रहते हैं, पशु–पक्षी तक आपस में बैर भूल कर प्रीतिपूर्वक रहते हैं। वे नाना प्रकार के मनोहर शब्द करते हैं। शीतल, मंद, सुगंध वायु बहती है, भ्रमर मकरंद वहन करते हुए विहार कर

रहे हैं। लता और वृक्ष मांगते ही मधु–वर्षण करते हैं, गाये यथेच्छ दुग्ध देती है। धरती अन्न से संपन्न रहती है। त्रेता युग में मानो सतयुग आ गया है। विविध पर्वतों में नाना प्रकार की मणियां प्राप्त होती हैं, सभी नदियों में सुंदर जल प्रवाहित होता है, उनका जल निर्मल एवं सुस्वादु है। सागर अपनी मर्यादा में है, वह तटों पर स्वयं रत्न डाल जाता है। तालाब कमलों से पूर्ण हैं, दशों दिशाओं के प्रदेश प्रसन्न हैं। रामचंद्र के राज्य में चंद्रमा अपनी किरणों से पृथ्वी को भर देता है, सूर्य अनुकूल मात्रा में ही तपता है। बादल आवश्यकतानुसार बरसते हैं।

श्रीरामचरितमानस–सुखद स्वप्नलोक का मनोभाषिक दर्शन– रामचरितमानस तुलसीदास के मनोभाषिक पक्ष का निश्चय ही यह एक सुखद स्वप्नलोक है जिसे तुलसी मनोभाषिकता से अपने समय के समाज को दिखाते हैं। स्वप्न स्वप्न ही होता है। लेकिन महत्त्वपूर्ण यह है कि कवि कितना बड़ा स्वप्न पैदा करता है, उसका स्वप्न कितने लोगों के सुख–दुःख से संबंधित है। कवि का स्वप्न समाज का स्वप्न बन सकता है या नहीं? चंद्रमा और सूर्य रावण की इच्छा के भी वश में थे। लेकिन वहां वे केवल रावण की चाकरी करते थे। राम के राज्य में वे राम की ही नहीं, समाज की, सबकी सेवा करते हैं। कलियुग में 'कलि बारहि बार दुकाल' पड़ता था। रामराज्य में धरती अन्न से संपन्न है। प्रकृति और मनुष्य एक–दूसरे के सहयोगी हैं। प्रकृति किसी एक ही व्यक्ति की इच्छाओं के अनुकूल आचरण नहीं करती, सबके सुखों का ध्यान रखती है –

फुलहि फरहि सदा तरु कानन। रहहि एक संग गज पंचानन।।
खग मृग सहज बयरु बिरुराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।

तुलसी की श्रीरामचरितमानस का यह स्वप्न जनता से प्रेम करने वाले कवि का है। तुलसी श्रीराम के भक्त हैं और तुलसी के राम के राज्य की प्रजा सुखी है। जहां तक प्रजा की इच्छा को सर्वोपरि समझने का सवाल है, तुलसी इस विषय में अपने समय से थोड़ा आगे ही हैं। रामचरितमानस के राम राजा होने के नाते यह जरूर चाहते हैं कि लोग उनका अनुशासन माने। लेकिन वे यह भी कहते हैं कि यदि मैं कोई अनुचित बात करूँ तो प्रजा निर्भय होकर उनके विरचारों का विरोध कर सकती है–

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।।
जौं अनीति कुछ भाषौ भाई। तौ मोंहि बरजहु भय बिसराई।

तुलसीदास जी को श्रीरामचरितमानस के राजा राम का असाधारण, अलौकिक रूप नहीं, बल्कि लोक–सामान्य व्यवहार भी अतिप्रिय प्रिय है। श्रीराम प्रजाजन से बातें करते हुए उन्हें भाई कहकर संबोधित करते हैं तो तमाम सेवक–सेविकाओं के होते हुए भी सीता जी घर का काम स्वयं अपने हाथों से ही करना पसंद करती हैं –

जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा विधि गुनी।।
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई।।

तुलसीदास जी की श्रीरामचरितमानस में श्रीराम के कर्तव्य परायण और समाजिक व्यवहार आदि को तुलसीदास ने बड़ी ही सुंदरता से व्यक्त किया है। श्रीराम अपने प्रजा को अपने प्रियजनों के समान प्रेम व स्नेह करते हैं। प्रजा के दुःखा और सुखों के के लिए वह यथासंभव अपना दायित्व निर्वहन करते रहते हैं।

श्रीरामचरितमानस में वर्ण–व्यवस्था का मनोभाषिक आचरण – तुलसी के रामराज्य में लोग वर्णाश्रम–व्यवस्था के अनुसार आचरण करते हैं। सभी वर्ग ब्राह्मणों की सेवा व पूजा करते हैं। श्रीरामचरितमानस में यह बात 'रामराज्य' के वर्णन में कई बार आई है कि तुलसीदास वर्ण–व्यवस्था के कट्टर समर्थक थे। इस विषय में उनकी दृष्टि पर तमाम विद्वानों के अपने–अपने अलग–अलग मत हैं। तुलसीदास पर परंपरा का गहरा प्रभाव था। वह प्रभाव तुलसी को वर्ण–व्यवस्था और ब्राह्मणों के प्रति आस्थावान बना देता था। रामराज्य में अयोध्यावासी उदार, परोपकारी ही नहीं हैं, विप्रों के चरण सेवक भी हैं –***सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी।।***

तुलसीदास की श्रीरामचरितमानस में लोग वर्णाश्रम–व्यवस्था के अनुसार अपने–अपने धर्मों का पालन करते हुए वेद पथ पर चलकर सुख पाते हैं। उन्हें भय, शोक और रोग नहीं है–

बरनाश्रम निज निज धरम, निरज वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग।।

तुलसीदास की रामराज्य की सुंदर वर्ण–व्यवस्था की कल्पना का यह अंग बहुत विवादित रहता है। तुलसी जी की शुद्र विषयक वैचारिकता उनके अंतर्विरोध को प्रकट करती हैं। यह अंतर्विरोध किसी न किसी मात्रा में उनके द्वारा कल्पित रामराज्य में भी मौजूद है। किंतु इस अंतर्विरोध के कारण उनके द्वारा चित्रित समाज की विषमता और उस विषमता से रहित सर्व प्रकार से सुखी और संपन्न 'रामराज्य' के स्वप्न का महत्त्व आज भी

हमारे लिए कम नहीं होता है। रामचरितमानस में दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से रहित शस्य–संपन्न धरती की जो मनोभाषिक कल्पना तुलसी ने की थी, वह हमारी भी लालसा है। तुलसी की मनोभाषा के विवेक, न्याय, संयम आदि सद्गुण हमारे लिए अनावश्यक नहीं हो गए। इसीलिए तुलसी की रामचरितमानस का मनोभाषिक पक्ष आज भी हमारी अनुभूतियों को उद्बुद्ध करता है। वर्तमान में भय, शोक और रोग से छुटकारा पाने का उपाय वर्णाश्रम–व्यवस्था के भीतर नहीं है। समाज में एक नई व्यवस्था प्रारंभ हो गई है, लोग अपने मूल वर्ण और उसकी व्यवस्था को स्वीकारने में कमराते हैं, उसे छुपाते हैं, असत्य का सहारा लेते हैं। आज वर्णाश्रम–व्यवस्था सबको सुखी बनाने का नहीं, बल्कि दुःखी बनाने का कारण है। जबकि काम्य वर्णाश्रम–व्यवस्था नहीं, सबका सुख है। अपने से बढ़कर दूसरे को श्रेष्ठ वर्ण देखने वाले वर्ण विशेष के लोग दूसरे के वर्ण को अपना मानना व बताना ही श्रेष्ठ मानते व समझते हैं। जाति धर्म व वर्ण आदि की व्यवस्था गांवों व देहातों में फिर भी अपने अस्तित्व को संजोए हैं लेकिन शहरों में तो कोई व्यवस्था नहीं बस आर्थिक धन–बल व्यवस्था ही सर्वोपरि है। समाज शहरी समाज उसे ही मान्यता देता है।

श्रीरामचरितमानस–रामायण में कथा में भिन्नता के मनोभाषिक बिंदु – वाल्मीकि श्रीरामायण से श्रीरामचरितमानस का प्रकट्य हुआ है। फिर भी दोनों ही काव्यों में काफी भिन्नता व मतभेद प्राप्त होते हैं। दोनों ही कवियों की मनोभाषिकता व काल भिन्नता भी इसके आधार में मानी जा सकती है। हालांकि रामकथा पर रामायण ही प्रथम रचना है। किंतु फिर भी तुलसीदास की रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण की कथाओं में कई आपसी मतभेद है। इनमें कहीं घटनाओं को लेकर तो कहीं प्रस्तुतीकरण एवं भावनाओं को लेकर दोनों में भिन्नताएं हैं। इन दोनों कवियों के ग्रंथों के अध्ययन में उनकी मनोभाषिकता को सरलता से देखा जा सकता है। जैसे–सर्वप्रथम श्रीरामचरितमानस और रामायण और दोनों ही ग्रंथों को लिखने की मनोभाषिकता व भावना में ही बहुत अंतर है। ऋषि वाल्मीकि ने जहाँ मूल रामकथा में श्रीराम को एक अवतार के रूप में बताने का प्रयत्न किया है, वहीं तुलसीदास ने श्रीराम की भक्ति में ग्रंथ लिखा है। वाल्मीकि के राम देवताओं के हित के लिए विष्णु के अवतार हैं परंतु तुलसीदास के राम स्वयं सर्वशक्तिशाली, अनादि, अनन्त ईश्वर हैं। स्वयंभुव मनु–शतरूपा तपस्या से राम को प्रसन्न कर उन्हें पुत्र रूप में पाने का वरदान माँगते हैं। यहाँ कहीं–कहीं सीता को लक्ष्मी से भी महान दर्शाया गया है। दूसरा मुख्य अंतर कथानक की भाषिकता है, रामायण कई शताब्दियों तक संस्कृत में पढ़ी–सुनी जाती रही, उसका अनुवाद दक्षिण भारत की अन्य भाषाओं में तो हुआ था परंतु उत्तर भारत में नहीं। ऐसे में जब संपूर्ण भारत में इस्लाम का प्रचार–प्रसार हो रहा था, धर्मांतरण का बोलबाला था, तब तुलसीदास ने श्रीराम के सुराज्य के अर्थ को समझाने हेतु रामकथा को जनमानस की भाषा में बताने का बीड़ा उठाया। उन्होंने इसके लिए अवधी भाषा को चुना। वह अयोध्या में रहते थे और उन्होंने अयोध्या में ही इस ग्रंथ को रामनवमी के दिन लिखना प्रारम्भ किया।

तुलसीदास ने अपने ग्रंथ श्रीरामचरितमानस में रामायण की रामकथा से कई विरोधाभास दिखाए हैं। उदाहरणार्थ, बालकाण्ड में सती–शिव को सीताहरण के समय दिखाया गया है जबकि सती सतयुग में ही दक्षयज्ञ में भस्म हो चुकीं थीं। बाद में शिव–पार्वती के विवाह में उन्हें गणेश की पूजा करते हुए बताया गया है। सीता विवाह से पूर्व पार्वती की पूजा करतीं हैं और उन्हें कार्तिकेय व गणेश की माता कह कर उनकी स्तुति करतीं हैं। राम–सीता विवाह में भी पार्वती के सम्मिलित होने का कई बार वर्णन है। रामचरितमानस में दशरथ–कौशल्या को कश्यप–अदिति एवं मनु–शतरूपा का अवतार बताया गया है जबकि रामायण में नहीं। रामायण में दशरथ की तीन सौ पचास स्त्रियाँ हैं जिनमें तीन मुख्य हैं। राजा की प्रत्येक वर्ण से रानी होती थी। इस प्रकार राजा प्रजा का पिता होता था। रामचरितमानस में केवल तीन रानियों का वर्णन है।

रामायण के उत्तरकाण्ड के अनुसार वाल्मीकि प्रचेता के दसवें पुत्र थे जो धर्मात्मा थे परंतु तुलसीदास उन्हें मूढ़ 'राम को मरा–मरा कहने वाले' बताते हैं। रामायण में अहिल्या को अदृश्य होकर रहने का श्राप दिया जाता है जिनका उद्धार राम के दर्शन से होता है और राम–लक्ष्मण उनके पाँव छूते हैं जबकि रामचरितमानस में अहिल्या को पत्थर की देह धारण करने का श्राप मिलता है एवं राम की चरणधूल से उनका उद्धार होता है। रामायण में राम सीता के स्वयंवर में नहीं जाते हैं, वह जनक के यज्ञ में शिवधनुष देखने मिथिला जाते हैं और उसकी कथा सुनकर उसे उठा कर प्रत्यंचा चढ़ाते हैं, जिससे धनुष टूट गया। पूर्वकाल में कई योद्धा शिवधनुष उठाने में असफल हो चुके थे। रामचरितमानस में सीता के स्वयंवर में रावण एवं बाणासुर के धनुष को छूए बिना भाग जाने और राम द्वारा धनुर्भंग का वर्णन है। पुष्पवाटिका में राम–सीता के एक दूसरे को देखने का भी वर्णन

है। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण और श्रीरामचरितमानस में तुलसी की मनोभाषिकता एवं वैचारिकता के अंतर्गत ही भिन्नता प्रतीत होती है।

विभिन्न रामकथाओं में वैश्विक रचनाकारों की मनोभाषिकता – विश्वभर में आज रामकथा आधारित कहानी के तकरीबन तीन सौ से अधिक संस्करण व अनुवाद अलग–अलग भाषाओं व विभिन्न नामों से प्रचलित हैं। जिसमें भगवान श्रीराम और उनकी 'सत्य की असत्य' पर इस विजय महागाथा की कहानी को कवियों, लेखक, रचनाकाओं व अनुवादकों ने अपने व्यक्तिगत भावों, विचारों को भाषिक अभिव्यक्ति के 'रामकथा माध्यम से प्रस्तुत कर समाज को समर्पित किया है। विश्व की इन प्रचलित रामकथाओं को विभिन्न रचनाकारों ने अपने–अपने हृदय की गहराईयों में मंथन कर मानसिक दृष्टिकोण की विरल, भावानात्मक अभिव्यक्ति एवं मनोभाषिकता प्रदान कर प्रस्तुत व व्यंजित किया है। भारत के साथ–साथ इंडोनेशिया, रूस, बर्मा, थाईलैंड, जापान, चीन, आदि देशों में वैश्विक स्तर पर रामकथाओं के प्रचलित होने की बात तो जगजाहिर है। किंतु बड़ी महत्वपूर्ण बात यह है कि सभी रामकथाएँ एक–दूसरे से कुछ ना कुछ अंतर अवश्य बनाए हुए हैं। कहीं–कहीं किन्हीं कथाओं में भिन्नता है, तो कहीं कथा के पात्रों के नामों में भिन्नता है। कहीं किसी रामकथा में पात्रों की वेशभूषा में अंतर है, तो कहीं किसी कथा में पहने जाने वाले परिधानों और सांस्कृतिक परिवेशों को लेकर वैचारिक मतभेद हैं। परंतु सभी रामकथा की आधारभूत रचना में राम की विजय की मूल कथा भावना ही है।

भारतीय भाषाओं में प्रचलित रामकथाओं में हिंदी में कम से कम ग्यारह, मराठी में आठ, बांगला में पच्चीस, तमिल में बारह, तेलुगु में बारह तथा उड़िया में छह रामायणें मिलती हैं। इसके अतिरिक्त भी संस्कृत, गुजराती, मलयालम, कन्नड, असमिया, उर्दू, अरबी, फारसी आदि भाषाओं में रामकथा लिखी गयी हैं। हिंदी में लिखित गोस्वामी तुलसीदास कृत भक्ति भाव प्रधान मनोभाषिता से प्रेरित श्रीरामचरितमानस ने उत्तर भारत में विशेष स्थान पाया है। वाल्मीकि रामायण एवं तुलसी रामायण 'रामचरितमानस' की भाँति ही दक्षिण भारत में प्रचलित कंबन रामायण की कथा भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। दक्षिणवासी कंबन की रामायण को तुलसी से पूर्व और महत्वपूर्ण मानते हैं। महर्षि कंबन द्वारा रचित तमिल महाकाव्य 'रामावतारम्' व 'कंबन रामायण' में कवि की मनोभाषिकता तुलसीदास और वाल्मीकि की रामायण के पात्रों के चारित्रिक विभिन्नता को प्रदर्शित करती है। महर्षि कंबन ने अपनी रामायण की कथा में कई घटनाक्रमों को लेकर तुलसी की रामचरितमानस से मतभेद व्यक्त किए हैं। तो वहीं उनकाा मानना है कि रामायण व मानस में कई पात्रों के चरित्र–चित्रण प्रकाश के अभाव में पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सके हैं। महर्षि कंबन अपने रामायण में भरत के किरदार को काफी महत्वपूर्ण मानते हैं। प्रचलित रामकथाओं को रचनाकारों ने अपनी–अपनी मनोभावना एवं मनोभाषिकता के माध्यम से प्रस्तुत कर अपने–अपने समाज को प्रस्तुत किया है। कहा जा सकता है कि रचनाकारों के समाज को जिस प्रकार की रामकथा की आवश्यकता थी, उसी प्रकार की रचना उपलब्ध कराई है। वहीं, दूसरी ओर रचनाकारों ने जिस प्रकार की मनोभाषिक रामकथा अपने समाज को उपलब्ध कराई है समाज ने उसी का अनुसरण किया या उसके पक्ष को देखा है। रचनाकारों की रामकथा के पात्रों में तो मतभेद हो सकता है। किंतु सर्वत्र रामकथा का उद्देश्य व आदर्श एक ही है।

श्रीरामचरितमानस में मनोभाषिक प्रकृति चित्रण का वर्णन– श्रीरामचरितमानस में तुलसीदास जी ने अपनी सुंदर मनोभाषिकता का प्रकृति चित्रण श्रेष्ठ अच्छी मात्रा में प्रयोग किया है। रामचरितमानस भक्ति भावना युक्त महाकाव्य सहजता का एक महाकाव्य है और तुलसीदास जी ने अपने इस महाकाव्य में प्रकृति एवं पात्रों के चारित्रिक भावों को संयुक्त रूप से प्रस्तुत किया है। रामचरितमानस में तुलसी जी के पात्र श्रीराम के अनुरूप ही प्रकृति का प्रभावित होना दर्शाया है। तुलसी जी ने श्रीराम के प्रसन्न अथवा दुखी होने दोनों ही रूपों पर अपना मनोभाषिक प्रभाव प्रस्तुत किया है। तुलसी जी द्वारा श्रीराम को सारी पृथ्वी और प्रकृति के तुल्य व केंद्रित माना है। उनका मानना है कि प्रभु श्रीराम यदि सुखी होते हैं तो सारी प्रकृति सुखमय हो जाती है और जब प्रभु श्रीराम दुःखी होते हैं तो उनके साथ समस्त प्रकृति भी दुःखी हो जाती है। तुलसी ने प्रकृति चित्रण में विभिन्न उपादानों का अलंकारों के रूप में प्रयोग किया है। उन्होंने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा रूप का तिश्योक्ति आदि अलंकारों के द्वारा वस्तु एवं भाव का प्रभावोत्पादक का भी वर्णन प्रस्तुत किया है।

तुलसी जी का प्रकृति चित्रण, सहज व उच्चकोटि का है। तुलसी जी ने रामचरितमानस में कई प्रसंगों में अनोखा प्रकृति–चित्रण प्रस्तुत किया है। वनवास के दौराने जब भरत जी, श्रीराम से मिलने के लिए चित्रकूट जाते हैं–

"राम वास वन संपत्ति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाद सुराजा।
सचिव बिरागु विवेक नरेसू। विपिन सुहावन पावन देखु।
खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साजु सराहा।
बथरु बिहाइ चरहिं एक संगाजहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा।।"

श्रीरामचरितमानस में तुलसीदासजी ने प्रकृति चित्रण के माध्यम प्रकृति पर श्रीराम के प्रभाव को दर्शाया है। उन्होंने अपने मनोभाषिक दृष्टिकोण से पेड़–पौधों की सुंदरता, जीव–जंतुओं की प्रवृत्ति को भी प्रभावित माना है। उनका कहना है कि हिंसक जीव–जंतु भी प्रभु कृपा से अपनी मूल–प्रकृति के प्रतिकूल होकर विचरण करते हुए सामान्य भावना से वन में रहते हैं। वृक्षों पर लता, पत्ते, फूल व फल आदि से सुसज्जित होकर वृक्ष आदि प्रकृति का मनोभावन व सौंदर्य उत्तम रूप में प्रस्तुत होता है। श्रीरामचरितमानस में तुलसी दास जी प्राकृतिक सुषमा का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है।

श्रीरामचरितमानस में ऋतुओं की सुंदरता के वर्णन, वर्षा के जल का सौंदर्य, नदियों जल की शीलता व मिठास, कोयल की मनमोहक आवाज व अन्य पक्षियों का कोलाहल, वायु के वेग के शीतलता, वायु से वृक्षों आदि से होने वाली प्राकृतिक ध्वनि एवं नदियों के जल की कल–कल व पशुओं की मनमोहन ध्वनियों के प्राकृतिक सौंदर्य को तुलसीदास जी ने अपनी मनोभाषिकता की रचना में प्रस्तुत किया है। पक्षियों की मधुर ध्वनियों, वृक्षों पर लदे फल और सुगंध बिखरते हुए पुष्प आदि मन को आंतरिक संतुष्टि प्रदान करते हैं तो वहीं प्रभु श्रीराम के उपस्थिति की अनुभूति में वन की खेती, वृक्ष वाटिकाएँ आदि सुंदरता की अनोखी छाप दिखाई देती है जो मन को मोहित करती है। तालाबों और जल सरोवरों में कमल के पुष्प अथवा जल में विचरण करते वाले पक्षियों आदियों के प्राकृति सौंदर्य को कवि ने सुंदरतापूर्ण मनोभाषिकता में व्यक्त किया है। फूलों पर तितलियों और भौंरों का गुंजन वन की शोभा का बढ़ाने का क्रम अग्रसर करते हुए तुलसीदास जी अपने मनोभाषिक पक्ष को प्रस्तुत करते हैं– ***"निर्झर जलपावने कमल खिले "निर्झर जलपावने कमल खिले।''***

तुलसी दास जी ने चित्रकूट, पंचवटी आदि के प्राकृतिक सौंदर्य का उत्तम वर्णन मानस के माध्यम से प्रस्तुत किया है। पंचवटी में सीता हरण के बाद श्रीराम दुखी होते हैं तो समूची प्रकृति उनके अनुरूप दुखी जान पड़ती है। उनके व्याकुलता पशु पक्षियों को भी प्रभावित करती है– ***'हे खग मृग हे मुधकर श्रेणी, तुम देखी सीता मृग नयनी।।'***

श्रीरामचरितमानस में जहां तुलसीदास जी ने प्राकृतिक सौंदर्य को वर्णन किया है तो वहीं युद्ध के दौरान होने वाली वीभत्सता को भी प्रस्तुत किया है। युद्ध में असुरों की सेना का युद्ध वृतांत हो अथवा श्रीराम, लक्ष्मण, हनुमान आदि का वीरता बखान। सभी को तुलसीदास जी ने अपनी सुंदर लेखनी से कलमबद्धता में प्रस्तुत किया है। तुलसीजी ने लंका के युद्ध से लेकर अयोध्या में राज्याभिषेक तक का प्रकृति का चित्रण अनोखे मनोभाषिक रूप से व्यक्त किया है। श्रीरामचरितमानस में काव्य में तुलसी के मनोभाषिक प्रकृति वर्णन के सभी रूप देखे जा सकते हैं। इन वर्णनों में प्रकृति के उद्दीपन रूप को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। 'रामचरितमानस' में यथास्थान प्रकृति चित्रण को स्थान दिया गया है। गोस्वामी जी की विभक्त मनोभाषिकता प्रकृति चित्रण की प्रस्तुति के कारण मानस की अनुभूति सहज है। तुलसी जी के प्रकृति चित्रण की जीवन्तता भी 'रामचरितमानस' को इतना सुगम व यथार्थ बनाती है। जिसने आज विश्व पटल पर अपना शीर्ष स्थान निर्धारित किया है।

श्रीरामचरितमानस में पात्रों की चारित्रिक मनोभाषिकता का दृष्टिकोण– श्रीरामचरितमानस की रामभक्ति में तुलसीदास ने अन्य रामकथा के पात्रों व उनके चरित्रों में काफी असमानता प्रस्तुत की हैं। तुलसी जी लक्ष्मण को बहुत अधिक क्रोधी दिखाया है जो स्वयंवर के समय राजा जनक पर क्रोध दिखाते हैं और धनुर्भंग के बाद परशुराम से परिहास करते हैं। सेतुबंध से पहले भी लक्ष्मण समुद्र पर क्रोध करते हैं। जबकि 'रामायण' में राजा जनक एवं परशुराम जी से लक्ष्मण की कोई वार्ता प्रसंग नहीं है। समुद्र पर भी राम ने स्वयं क्रोध करके बाण छोड़ दिया था, लक्ष्मण ने ही दूसरा बाण छोड़ने से राम को रोका था। रामायण में लक्ष्मण को दो बार क्रोध करते हुए दर्शाया गया है, पहला राम के वनवास की सूचना पर और दूसरा भरत के चित्रकूट आगमन पर। इसी प्रकार देवताओं और विशेषतः इन्द्र को तुलसीदास ने विरोधाभासी शब्द कहे हैं जबकि रामायण में उनकी महिमा कई बार बताई गई है। कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के मरने के बाद इन्द्रलोक प्राप्त करने का वर्णन है जैसे– श्रवणकुमार,

शरभंग ऋषि, दशरथ आदि। सीता को अशोकवाटिका में इन्द्र दिव्य खीर खिलाने जाते हैं जिससे सीता को कई वर्षों तक भूख न लगे। हनुमान को इन्द्र ने इच्छामृत्यु का वरदान दिया था।

रामायण में परशुराम जी धनुर्भंग के तुरंत बाद नहीं आते हैं, वह बारात अयोध्या वापस लौटते समय रास्ते में मिलते हैं और दशरथ तथा राम से बात करते हैं। राम क्रुद्ध होकर उनसे वैष्णव धनुष लेकर उनके पुण्य नष्ट कर देते हैं जबकि रामचरितमानस में परशुराम स्वयंवर सभा में ही पहुँच जाते हैं और लक्ष्मण–विश्वामित्र संवाद होता है। राम परशुराम से विनयपूर्वक बात करते हैं और परशुराम वापस लौट जाते हैं। रामायण में राम एवं सीता की आयु का वर्णन किया गया है जिससे पता चलता है कि विवाह के समय राम की आयु पंद्रह वर्ष और सीता की आयु छह वर्ष थी। उसके उपरान्त वह बारह वर्ष अयोध्या में रहे अर्थात वनवास के समय राम सत्ताइस वर्ष और सीता अठारह वर्ष की थीं। रामचरितमानस में पात्रों की आयु गणना नहीं मिलती है। तुलसीदासजी स्वयं रामायण के बालकाण्ड में श्री रामजी के जन्म का वर्णन करते हुए उनके घनश्याम आख्यान का वर्णन करते हैं–

भय प्रकट कृपाला, दिनदयाला, कौशल्या हितकारीय
हर्षित महतारी मुनि मन हारे, अद्भुत आश्चर्य।
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारीय
भूषण बनमाला नयन बिसाला, शोभासिंधु खरारी।

वहीं सीता जी के पक्ष में जब राम, लक्ष्मण सीता वनवास में थे, तो कुछ ग्रामीण महिलाओं ने सीता से पूछा, आप के साथ के दो पुरुषों में, आपका प्रियतम कौन है? सीताजी ने उत्तर दिया– ***श्यामलो सो प्रियतम, गोरा सा दियरवा।***

सीता जी के मनोभाषिक संकेत में इसका मतलब है कि राम त्वचा के रंग में श्याम थे। रामजी की भक्ति के विषय में तुलसीदास जी का मानना है कि जो रामानुकूल आचरण करते हुए राम के आदर्शों का पालन करें, वही सच्चे राम भक्त हो सकते हैं। केवल त्रिपुंड टीका लगाकर, रामनामी वस्त्र पहनकर जय श्री राम जय श्री राम का शोर मचाने वाले राम भक्त नहीं हो सकते हैं। वह तो केवल अपने को रामजी की आढ़ में पालने वाले परजीवी हैं, जो प्रभु के नाम के सहारे अपना स्वार्थ साध्य करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है कि भगवान राम ने स्वयं कहा है कि–

सो मम प्रिय प्रियतम मम सोई। मम अनुशासन मानै जोई।।
विनय ना मानत जलधि जड़, गए तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होय ना प्रीति ।।

श्रीराम का व्यवहार मधुर था उन्होंने कई लोगो के साथ दोस्ती की, लेकिन जब समय आया तो शस्त्र भी उठाए। प्रभु श्रीराम के मानसिक पक्ष और व्यवहार में सत्य, न्याय, निष्ठा आदि का समावेश प्रस्तुत होता है। श्रीरामचरितमानस में तुलसीदास जी ने जिस प्रकार के मनोभाषिक विवेचन और वर्णन समावेश किया है। उससे श्रीरामचरितमानस के श्रीराम की तो भक्ति तो बल मिलता ही है। साथ ही तुलसी की मानसिकता और मनोभाषिकता से सनातन धर्म और संस्कृति को भी शक्ति प्राप्त होती है। तुलसीदास जी ने अपने श्रीरामचितरमानस में सभी प्रकार से भाषिक प्रभावों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनके द्वारा विलक्षित मनोभाषा अभिव्यक्ति से आज श्रीरामचरितमानस विश्व पटल पर अपना शीर्ष व महत्वपूर्ण स्थान सुनिश्चित करने में सफल रही है और तुलसीदास जी की भक्ति समर्पण भावना को अन्य कवियों और रचनाकारों से प्रेरणा स्वरूप ग्रहण किया है और अपनी नवीन रचना श्रृंखलाओं को प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष– प्रस्तुत विवेचन के माध्यम तुलसीदास जी के महाकाव्य श्रीरामचरितमानस का वैश्विक व अन्य प्रसिद्ध रामकथाओं के भिन्न कवि के महत्वपूर्ण मनोभाषिक तत्वों का बोध होता है। इस अध्ययन में किस प्रकार से वाल्मीकि की रामायण से तुलसी जी की रचना श्रीरामचरितमानस में उनके मानसिक प्रभावों और दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है, इसका भी स्पष्टीकरण ज्ञात होता है। रामायण और रामचरितमानस दोनों रामकथाओं के पात्रों एवं उनके मानसिक प्रभावों का दृष्टिकोण भी प्रस्तुत होता है। तुलसी जी ने भगवान श्रीराम के प्रति अपनी आस्था को केंद्र में रखकर रामायण को एक नया रूप और आकार देकर समाज के उत्थान का मार्ग प्रशस्त किया है। साथ ही धार्मिक दृष्टि से देखा जाए तो सनातन धर्म को एक सूत्र में

श्रीरामचरितमानस के माध्यम से पिरोने का ऐतिहासिक कार्य किया है। आस्था के माध्यस देखें तो तुलसीदास जी की रामकथा और वाल्मीकि की रामकथा दोनों ने ही धर्म प्रचार का कार्य किया है। अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि तुलसीदास जी के महाकाव्य श्रीरामचरितमानस में मनोभाषिक पक्षों की श्रेष्ठ मौजूदगी ने यह श्रीरामचरितमानस महाकाव्य को श्रेष्ठ, महत्वपूर्ण, खास, उपयोगी व जनमानस में लोकप्रिय बनाया है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. पोद्दार हनुमान प्रसाद, श्रमद्गोस्वामी तुलसीदासजीतिरचित ''श्रीरामचरितमानस'' (सचित्र, सटीक, मोटा टाइप), बालकाण्ड, प्रकाशक एवं मुद्रक गीताप्रेस, गोरखपुर–273005, सं0 2071 दो सौ पचहत्तरवाँ, पृष्ठ संख्या 143, 186, 212,218, 221, 227, 229, 231, 333, 334, 335, 336, 337।
2. वही, पृष्ठ संख्या 346, 351, 367, 398, 399, 401, 402, 409, 417, 457, 461, 463।
3. वही, पृष्ठ संख्या 621, 623, 651, 658।
4. वही, पृष्ठ संख्या 685, 688, 689, 691, 703, 709, 710।
5. वही, पृष्ठ संख्या 715, 735, 741, 756, 758।
6. वही, पृष्ठ संख्या 775,, 781, 791, 851, 895, 897
7. वही, पृष्ठ संख्या 933, 946, 958, 975, 996, 1016, 1021
8. 'वाल्मीकीय रामायण', प्रकाशक, देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली पृ. 74–83, पृ. 110–148
9. वही, पृ. 158–163, पृ. 502–509
10. वही, पृ. 555–559, 595–556, 607–617
11. राजगोपालन, न0वी0, (लेखक–कंबन) प्रथम संस्करण–2000, कंब रामायण, महाकवि कंबन–रचित मूल तमिल से अनूदित, भाग–2, प्रकाशक बिहार–राष्ट्र भाषा परिषद, पटना–(4) पृ. 308, पृ. 327, पृ. 357, पृ. 381, पृ. 385
12. वही, पृ. 631, 633, 687, 701, 778
13. 'मुदलियार, वीएस (1970), कम्बा रामायणम् – अंग्रेजी पद्य और गद्य में एक संक्षिप्त संस्करण। नई दिल्लीः शिक्षा और युवा सेवा मंत्रालय, भारत सरकार। 18 जून 2019 को लिया गया।
14. 'तमिल महाकाव्य रामायणम् का सातवां कांडम्, उत्तर कांडम् ओट्टाकुथर द्वारा लिखा गया था। तमिल रामायण का उत्तर कंदमः पृ. 77–61, 71 तमिल वर्चुअल यूनिवर्सिटी। 26 अप्रैल 2022 को पुनः प्राप्त.?
15. ध्वन्यालोकः, 1–5 (कारिका एवं वृत्ति) तथा 4–5 (वृत्ति), ध्वन्यालोक, हिन्दी व्याख्याकार– आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, संस्करण–1985 ई०, पृ.–21–35 एवं 354 तथा ध्वन्यालोकः (लोचन सहित) हिन्दी अनुवाद– जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण–2014, पृ.–85, 87 एवं 657
16. 'रामायणमादिकाव्यम्, श्रीस्कन्दपुराणे उत्तरखण्डे रामायणमाहात्म्ये–श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाग–1, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण–1996 ई०, पृ. 133, पृ. 561, पृ. 41 एवं 75 ?
17. 'हार्ट, जॉर्ज एलय हेफेट्ज, हैंक (1999), 'युद्ध और ज्ञान के चार सौ गीतः शास्त्रीय तमिल की कविताओं का एक संकलनः पुन्नानुनु,कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस,
18. अय्यर, वी.एस. (2016), कंब रामायण : ए स्टडी, पृ.245, पृ.133, पृ.314, पृ.21, पृ.215, पृ.65, पृ.54, पृ.85, पृ.221, पृ.223, आईएसबीएन–9788183796064
19. 'अय्यर, वीवीएस (1950), कंबा रामायणम–चार हजार से अधिक मूल कविताओं के पद्य या काव्य गद्य में अनुवाद के साथ एक अध्ययन, पार्लियामेंट स्ट्रीट, नई दिल्लीः दिल्ली तमिल संगम, 18 जून 2019 को लिया गया।
20. 'असाधारण कवि कंबन पर ध्यान दें'', द हिंदू, 23 मई 2010। 8 फरवरी 2018 को लिया गया।
21. सी.आर. शर्मा ने अपनी पुस्तक The Ramayana in Telugu And Tamil- A Comparative Study, Madurai, Lakshminarayana Granthamala, 1973, पृ.46–49
22. डॉ०आर.पी. सेतुपिल्लै, तमिल विभागाध्यक्ष, मद्रास विश्वविद्यालय का अंग्रेजी में ''तमिल लिटरेचर'' शीर्षक लेख)
23. सिंह, बी.पी. *(2001),* गोविन्द चन्द्र पाण्डेः *Life, Thought and Culture of India—"The Valmiki Ramayana : A Study" I Centre of Studies in Civilizations*, नई दिल्ली, आईएसबीएन *81A87586A07A0*
24. 'सिकंदर का पाठ और अन्य कहानियाँ, सुरा पुस्तकें। (2006)। पृ. 103, आईएसबीएन 978–81–7478–807–8।
25. पीएस सुंदरम (3 मई 2002), कंब रामायण, पेंगुइन बुक्स लिमिटेड। पृ. 38, 74, 49, आईएसबीएन 978–93–5118–100–2।?
26. *Presa, Iṇḍiyana (1969). Sarasvatī. 70. the University of California*. पृ.–524
27. *Pattanaik, Devdutt (8 August 2020). Was Ram born in Ayodhya" Mumbai Mirror.*
28. इंटरनेट, साभार

ꕤ★ꕤ

स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में अस्तित्व एवं अधिकार के प्रति सचेत नारी

कुमारी मनीषा*

नारी मानव जीवन का प्रधान अंग है। भारतीय परम्परा में नारी को पुरूषों की अर्द्धांगिनी और पूरक के रूप में देखा गया है। वैदिक युग में स्त्रियों को अत्यन्त सम्मानजनक दर्जा प्राप्त था। लेकिन यह स्थिति आने वाले युगों में नहीं रहीं। उसे प्राप्त आदर और सम्मान घटने लगा। मध्य युग में स्त्रियों की स्थिति में सबसे ज्यादा गिरावट देखा गया। आक्रमणों के दौरान स्त्रियों की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए जो भी कदम उठाए गए वह आने वाले समय में उसकी पैरों की बेड़ियों का रूप धारण करने लगे। साथ ही साथ शिशु कन्या हत्या, बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, वेश्यावृत्ति जैसी कुरीतियों को भी बढवा मिलने लगा।

वैदिक युग से लेकर आज तक भारतीय स्त्रियों की स्थिति में विभिन्न परिवर्त्तन हुए और विभिन्न युगों में उन्होंने भिन्न–भिन्न भुमिकाओं का निर्वाह किया है। कभी वह पूज्या मानी गई, कभी प्रेयसी, कभी सहयोगिनी, यहाँ तक कि भोग्या का रूप भी उसे धारण करना पड़ा। पश्चिमी सभ्यता और शिक्षा के सम्पर्क में आने से भारतीय समाज की सोई हुई चेतना को नवीन स्फुर्ती का अहसास हुआ। अंग्रेजों के आगमन से नारी की दशा में परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होने लगे। भारत में सामाजिक पुनर्जागरण के दौरान जो भी समाज–सुधार आन्दोलन चलाए गए उन सभी संस्थाओं ने अपने कार्यक्रमों में नारी उत्थान को प्रमुख स्थान दिया। समाज सुधारकों के प्रयत्न से भारत में नारी शिक्षा को बढ़ावा मिला। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी के परम्परागत रूप में परिवर्त्तन देखने को मिला। घर के चारदीवारी के भीतर साँस ले रही नारी ने उजले खुली आसमान के नीचे आजादी से रहने के लिए अपने कदम आगे बढ़ाये। नारी को विविध क्षेत्र में आगे बढ़ने और अपने अधिकारों का प्रयोग करने के विभिन्न अवसर प्राप्त हुए।

नारी की इस नवीन छवि को साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया। नारी जीवन में आ रहे बदलावों को उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यास का विषय बनाया है। प्रेमचंद पूर्व काल के लेखकों ने नारी को कोई विशिष्ट व्यक्तित्व नहीं प्रदान किया। प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी उपन्यास साहित्य में नवीन मोड़ आया। नारी को उसके यथार्थ रूप में चित्रित किया गया। लेकिन प्रेमचंदोत्तर काल में लेखकों ने नारी को नये रूप में प्रस्तुत किया। नारी शिक्षा के फलस्वरूप नारी मुक्ति की भावना जगने लगी। नारी को अपने स्वतन्त्र विकास का बोध हुआ और वह आधुनिकता की ओर आकर्षित होने लगी। नारी ने अपने साथ हो रहे शोषण के खिलाफ आाज उठाई। घर की चारदीवारी लांघ कर वह चौराहे पर आ खड़ी हुई और अपने अधिकारों की मांग करने लगी। शिक्षा के प्रसार ने स्त्रियों के जीविकोपार्जन में नये आयाम जोड़ दिये। नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगी। साथ ही साथ वह अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष भी कर रही है।

वर्त्तमान समय में नारी संघर्ष के नये आयाम उद्घाटित हुए हैं। यह सब जानते हैं कि मानव सभ्यता दुर्भाग्य से पुरूष प्रधान रही है, जिसका खामियाजा स्त्री को अनेक प्रकार से भुगतना पड़ा है। लेखिका चित्रा मुदूल के अनुसार– ''इस व्यवस्था में नारी की अस्मिता और अधिकारों का लोप एक साधारण बात है, इसके अलावा नाना प्रकार के शोषण का शिकार भी होना पड़ा है। तो हाजिर है पहचान की लड़ाई तो उसे खुद ही लड़नी है। जो अपनी शक्ति प्रज्जवलित कर, विरासत में जो उसे कमजोर, नीरीह, अबला के अलंकरण मिले हैं, उन्हें उतार फेक दे। पुरूष ने इसे पहनाये ही इसी उद्देश्य से थे कि वह गऊ बनी खूँटे से बंधी उसे ही और उतनी ही अपनी सार्थकता, समर्थता मान ले।''[1]

***शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)**

समय परिवर्त्तन के साथ नारी के व्यक्तित्व के आयाम बदलते जा रहे हैं। स्त्री अपने अस्तित्व और अधिकार को हासिल करने के लिए कमर कसकर तैयार हो चुकी हैं। वह आज पुरूष की दासी बनकर जीने से इन्कार करने लगी है। वह अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग होती जा रही है। लेखिका महादेवी वर्मा जी के अनुसार– ''उसके चारो ओर हुई दुर्बलता नष्ट हो गई है, उसकी कोरी भावुकता छिन्न हो गई और उसके स्त्रीत्व से शक्तिहीनता का लांछन दूर हो गया।''[2]

आज नारी ने पुरातनता का रास्ता छोड़ कर युग की आवश्यकता के अनुरूप अपने आप को ढाल लिया है। धार्मिक अंधविश्वासों, परम्रागत रूढ़ियों का विरोध कर वह अपने अस्तित्व का सही अर्थ तलाशती हुई पुरूष की सहगामिनी बनने का अधिकार मांगने लगी है। संघर्ष के फलस्वरूप भारतीय नारी को अपने अस्तित्व के निर्माण एवं विकास के अवसर प्राप्त हुए हैं। सामाजिक, राजनीतिक जागृति के फलस्वरूप नारी के व्यक्तित्व में आये बदलावों का प्रभाव स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में स्पष्ट लक्षित हुआ है। स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में अस्तित्व एवं अधिकार के प्रति सचेत नारी के अनेकानेक चित्र उभारे है। इन उपन्यासों में नायिकायें अपने अस्तित्व और अधिकारों को पाने के लिए संघर्षरत है।

प्राचीन समय में नारी अपना जीवन अपने घरवालों की देखरेख, विवाहोपरान्त अपने पति और बच्चों की सेवा में गुजार देती थी। शिक्षा प्राप्ति के बाद वह अपने निज के विकास के प्रति सजग एवं सतर्क हो गई है। आज उसने अपने स्वयं से संबंधित विषयों पर निर्णय लेने के अधिकार की माँग कर रही है। समाज द्वारा आरोपित सभी अनुचित बंधनों से वह स्वतन्त्र होना चाहती है। आज नारी पुरूष के लिए मात्र यौन सुखदात्री मशीन नही रही। वह समझ रही है कि उनका भी एक अस्तित्व है। लेखिका अनामिका के अनुसार – ''स्त्री का शोषण वहाँ से शुरू हुआ जहाँ से वैयक्तिक संपत्ति का प्रावधान हुआ। उत्पादन के साधनों पर जिन थोड़े से लोगों का प्रभुत्व हुआ, वे मर्द थे।''[3] आज स्त्री भी समझ रही कि उसके श्रम का कुछ भी मुआवजा दिए बिना पुरूष उससे लाभान्वित होते हैं। वैयक्तिक सम्पत्ति में उसे कुछ भी अधिकार नहीं दिए गए हैं। समाज द्वारा आरोपित यह सभी बंधनों से वह निकलकर खुली हवा में साँस लेना चाहती है। स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उन्यासकारों ने अस्तित्व व अधिकार के प्रति सजग नारी के विभिन्न रूपों का अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया है–

स्वतन्त्र जीवन–यापन :– पहले स्त्रियाँ पिता, पति, पुत्र के कहे अनुसार अपना जीवन व्यतीत करती थी। धीरे–धीरे समय की माँग के अनुसार इसमें पर्याप्त बदलाव आये हैं। स्त्रियाँ आज स्वतन्त्र जीवन यापन करना चाह रही हैं। ऐसी ही स्वतंत्र नारी का चित्रण स्वतंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में किया है। उषा प्रियम्वदा के उपन्यास ''रूकोगी नहीं राधिका'' की नायिका राधिका अपने विधुर पिता से बहुत प्यार करती है पर उसके पिता ने जब अपने जीवन की एकरसता को खत्म करने के लिए राधिका की सहेली से शादी कर लेता है तो राधिका अपने पिता को ठेस पहुँचाने के लिए उन्हें छोड़कर विदेश पढ़ने चली जाती है। फिर कुछ समय बाद वह भारत लौट आती है और स्वतन्त्र जीवन यापन करने का निर्णय लेती है – ''अब मैं स्वतन्त्र हूँ, परिपक्व भी और गढ़ सकती हूँ अपना जीवन, अपना भविष्य।''[4]

लेखिका ने राधिका को आधुनिक नारी के रूप में चित्रित किया है जो जीवन में विवाह को अनिवार्य नहीं मानती क्योंकि वह अपना जीवन स्वतन्त्र ढंग से गुजारना चाहती है। इसी तरह लेखिका शिवानी ने अपने उपन्यास 'कृष्णकली' की नायिका कृष्णकली को दर्शाया है जो स्वतन्त्र जीवन यापन करती है। वह अपना जीवन किसी बंधन में नहीं बांधना चाहती है। लेखिका वीणा सिन्हा के उपन्यास 'पथ प्रज्ञा' की नायिका माधवी अपनी स्वतन्त्रता के लिए इच्छुक है। लेखक भगवती प्रसाद बाजपेय के उपन्यास 'छोटे साहब' की प्रीति को लेखक ने स्वतन्त्र नारी के रूप में चित्रित किया है। लेखिका प्रभा खेतान के उपन्यास 'पीली आँधी' की नायिका सोमा खुली हवा में साँस लेने के लिए उत्सुक है, जो पति से अलग होकर नई निन्दगी की शुरूआत करती है। यशपाल के उपन्यास 'क्यों फसें' में लेखक ने पुरूष कथापात्रों के माध्यम से नारी की स्वतन्त्रता की बात कहलवाई है। उपन्यास का एक पात्र पुनैया अपने दोस्त से कहता है – ''आधुनिक नारी अपने जीवन का लक्ष्य और महत्वाकांक्षा केवल पति की सेवा और अधिक से अधिक सन्तानों की माता बनना नहीं मान सकती। वह आत्मनिर्भरता, स्वतन्त्रता और व्यक्तित्व की सार्थकता भी चाहती है।''[5]

स्वतंन्त्रयोत्तर उपन्यासकारों ने स्वतन्त्र नारी के कई रूपों को अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। ये नायिकाएँ अपनी जिन्दगी अपने ढंग से गुजारना चाहती है। स्वतन्त्र जीवन व्यापन करने वाली नारी की अच्छाईयों और बुराईयों दोनों को स्वतंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में व्यक्त करने का प्रयास किया है।

स्त्री पुरूष समत्व में विश्वास रखने वाली नारी :– स्वतंत्र्योत्तर उपन्यासकारों द्वारा स्त्री समानता से संबंधित विषय को उपन्यासों में प्रमुखता से दिखाया है। आज की नारी अपने को किसी भी रूप में पुरूषों से कम नहीं मानती है। विष्णु प्रभाकर के उपन्यास 'अर्द्धनारीश्वर' की विभा को जब पता चलता है कि उसके पति का अन्य स्त्री से संबंध है तो वह पति को छोड़ने का निर्णय लेती है। विभा स्त्री–पुरूष समानता में विश्वास रखती है। उसका मानना है कि– ''.....नारी की स्वतन्त्र सत्ता का नारी की सेक्स इमेज से कोई संबंध नहीं है। उसका अर्थ है समान अधिकार, समान दायित्व एक स्वस्थ समाज के निर्माण में दोनों समान रूप से भागीदार हैं।''[6] शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यास 'अमलताश' की रेवा घर–घर जाकर चौका बर्त्तन करती है। वह उन स्त्रियों में है जो घर और बाहर दोनों जगहों का काम करती है साथ ही अपनी समानता के प्रति पूर्ण रूप से सजग है। नरेन्द्र कोहली के उपन्यास 'अवसर' में लेखक रामकथा के माध्यम से नर नारी समानता की बात कही है।

अतः लेखकों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से यह दिखाया है कि आज नारी पुरूष की सहयोगी बनकर उसके कार्यक्षेत्र के कार्यभार को बाँटना चाहती है। इन उपन्यासकारों ने यह दिखाया है कि स्त्री और पुरूष दोनों समान हैं।

स्व के प्रति जाग्रत नारी :– प्राचीन काल में अपना सर्वस्व दूसरों के लिए मिटा देना ही नारी का लक्ष्य था। परन्तु शिक्षा से आई जागृति के कारण नारी में आत्मबोध का भाव जागृत हुआ । वह अपने स्व के प्रति जाग्रत हो गई है। नारी ने अपने अथक प्रयासों के फलस्वरूप आज समाज में अपनी एक अलग जगह बना ली है। प्रभा खेतान के उपन्यास 'अपने अपने चेहरे' की रमा अपने दफ्तर के बॉस मिस्टर गोयनका से प्यार करती है। मिस्टर गोयनका शादीशुदा हैं। मिस्टर गोयनका भी रमा से आकर्षित है। वह रमा को साथ में लेकर घूमना फिरना चाहते हैं। किन्तु रमा को यह स्वीकार्य नहीं– ''जिस संबंध का कोई नाम नहीं उस संबंध को समाज में ले जाने से फायदा? मेरी अलग आइडेंटिटी रहने दीजीए।''[7]

लेखिका ने रमा के माध्यम से ऐसी नारी का रूप प्रस्तुत किया है जो विवाहित पुरूष से प्यार तो करती है किन्तु उस पुरूष के साथ रहते हुए अपना परिचय नहीं खोना चाहती है। शंकर शेष के उपन्यास 'चेतना' की नायिका चेतना अनादि नाम के युवक से प्रेम करती है। अनादि का बड़ा भाई जो चेतना का शोध निरीक्षक है वह भी चेतना से प्रेम करता हैं यह बात जब अनादि को पता चलता है तो अनादि चेतना को अपने बड़े भाई से शादी करने को बोलता है पर चेतना अनादि के इस प्रस्ताव को ठुकराते हुए अपने स्व की रक्षा करते हुए कहती है– ''तुम अपने भाई के उपकारों से उऋण होने के लिए मुझे दक्षिणा बना कर सौंपना चाहते हो। मुझे इस पर आपत्ति है। मैंने प्रेम सिर्फ तुमसे किया है.... तुम्हारे भाई से नहीं।''[8]

लेखक यहाँ नायिका को अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए दिखाया है। विष्णु प्रभाकर के उपन्यास 'कोई तो' की नायिका वर्तिका अपने स्व के प्रति सचेत है। वह अपने स्व की सुरक्षा के लिए हर परिस्थिति का सामना करना चाहती है। चित्रा मुदूल के उपन्यास – 'एक जमीन अपनी' की नायिका अपने पसंद के लड़के सुधांशु से विवाह करती है। लेकिन बाद में उसे मालुम होता है कि वह आवारा किस्म का आदमी है तो वह उसे तलाक देकर अलग रहने लगती है। स्वतंत्र्योत्तर उपन्यासकारों के उपन्यासों से यह पता चलता है कि आज नारी अपने स्व के प्रति जाग्रत है उसे अपने स्व के आगे अन्य सब निरर्थक लगता है।

अपने नाम से पहचाने जाने का गर्व :– आज नारी की सोच समझ में जो विकास हुआ है उसके फलस्वरूप वह चाहती है कि उसे लोग उसी के नाम से पहचानें। मेहरून्निसा परवेज के उपन्यास 'उसका घर' की नायिका रेशमा क्रिश्चिन होते हुए हिन्दु लड़के से प्रेम करती है। वह अनब्याही ही देव के बच्चे को जन्म देती है। रेशमा को इस बात की खुशी है वह अपने नाम से पहचानी जाती है। उसे इस बात का दुःख

नहीं है कि उसके नाम के आगे पति का नाम नहीं है। उसके अनुसार– ''तो क्या हुआ अब भी अपने नाम से जानी जाती हूँ न, पति के नाम से तो नहीं। कोई जरूरी नहीं कि बिना मर्द के नाम का सहारा लिए औरत जी ही नहीं सकती।''[9] अतः आज स्त्रियों का एक वर्ग अपनी शिक्षा–दीक्षा के कारण अपने नाम के आगे किसी अन्य का नाम नहीं जोड़ना चाहती है। रेशमा इसी वर्ग की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है। लेखिका इस बात पर अपना समर्थन देती है।

सामाजिक मूल्यों के प्रति आक्रोश :– नारी आज उन सभी सामाजिक मूल्यों के प्रति आक्रोश प्रकट करती है, जिसके कारण उनका जीवन बंधनों से जकड़ा रहता है। वह अब खोखले सामाजिक मूल्यों में विश्वास नहीं रखती है।

विष्णु प्रभाकर के उपन्यास 'अर्द्धनारीश्वर' की सुमिता अपनी ननद को बलात्कारियों से बचाने के लिए खुद अपनी इज्जत दाँव पर लगा देती है। पहले पहल वह अपने साथ हुए इस हादसे को भुला नहीं पाती। फिर बाद में वह अपने साथ हुई घटना को वह अपने असली परिचय के साथ एक पत्रिका में छपवा कर वह इस हादसे से मुक्त हो जाती है। वह अपने विचार प्रकट करते हुए कहती है – ''बलात्कार सहना कितना भयंकर है इसे शब्दों में नहीं बताया जा सकता लेकिन जिन्दा रहना मैं अधिक महत्वपूर्ण समझती हूँ। नारी को ऐसा सोचने समझने की इजाजत न हो तो इसका अर्थ हमारे मूल्य और मापदण्ड बहुत गलत हैं ....।''[10] यह विचार सुमिता के विकसित सोच का अंग है कि वह समाज के उन मापदण्डों को गलत ठहराना चाहती है जो बलात्कार के शिकार नारी को समाज के मध्य इज्जत से जीने का हक नहीं प्रदान करता है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नम्' की नायिका मंदा की माँ अपने पति की मृत्यु के बाद पुनर्विवाह कर लेती है। लेकिन मंदा की दादी पुरातनपंथी विचारों की है। उन्हे विधवा विवाह स्वीकार नहीं है। लेकिन मंदा की विकसित मानसिकता इन रूढ़ियों को मानने से इंकार करती हैं वह इन मूल्यों के विरूद्ध अपने विचार प्रकट करती है – ''वे सब पुरूष प्रधान समाज के अवसरवादी प्रसंग है। एक ओर पतिव्रता धर्म की परिभाषा करता राम के साथ सीता का वन गमन, दूसरी ओर उनकी निष्ठा को तोड़ता मर्यादा पुरूषोत्तम राम का सीता की अग्निरीक्षा लेना। सीता ने क्यों नहीं माँगा कोई सबूत कि हे भगवान कहे जाने वाले राम तुम भी तो उस अवधि में मुझसे अलग रहे हो, अपने पवित्र रहने का साक्ष्य दो।''[11]

लेखिका ने नायिका को अपनी विवेक बुद्धि के माध्यम से उन सामाजिक मान्यताओं पर चोट करते दिखाया है। जो पुरूष के पुनर्विवाह को तो खुशी – खुशी मंजूर कर लेता है, लेकिन स्त्रियों के लिए अलग नियमों का निर्माण किए बैठा है। ऋता शुक्ला के उपन्यास 'कितने जनम वैदेही' की नंदिनी पढ़ी लिखी युवती है। वह बचपन से ही रामायण कथा सुनते आई है। पर रामायण में सीता की अग्नि परीक्षा को, समाज ने स्त्रियों के सम्मुख आदर्श रूप में उपस्थित किया है। लेकिन नंदिनी जैसी स्त्रियों के विचार इस प्रसंग को स्वीकार नहीं करता। नंदिनी आज की युवतियों की सोच को उपस्थित करती है। स्वतंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने नारी की उन मूल्यों के विरोध में खड़े होते दिखाया है, जो उनके पैरों के लिए बेड़ियों का रूप धारण करती है।

अत्याचार के विरूद्ध सतर्क :– स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों ने आधुनिक नारी को दृढ़ और स्वाभिमानी नारी के रूप में चित्रित किया है, जो अपने प्रति हो रहे अत्याचारों के प्रति सजग है। शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यास 'अमलताश' की कामदा को विवाह के पश्चात् पता चलता है कि उसके पति का अन्य औरतों के साथ संबंध है। वह इस बात पर विचार करते हुए अपने पति को छोड़ने का फैसला करती है – ''नारी क्या अपना दाय मात्र लेकर ही संतुष्ट हो जाएगी ...... मुझे लगा यह बिल्कुल झूठ है, नारी का सरासर अपमान है, उसके प्रति अत्याचार, इस अन्याय को वह कभी नहीं सहेंगी।''[12] 'अमलताश' की कामदा को लेखिका ने शिक्षित आधुनिक नारी के रूप में चित्रित किया है। आज स्त्रियाँ अपना तिरस्कार और अपमान सहन नहीं कर सकती है। पत्नी के घर पर रहते हुए भी पति अन्य औरतों के साथ संबंध बनाये तो वह इसे अत्याचार मानती है। आज स्त्रियाँ इन अत्याचारों के सामने विवश न होते हुए इनसे पूर्ण रूप से मुक्त होना चाहती है।

अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष :– आज नारी अपने खोए अधिकारों को पुनः प्राप्त करने के लिए संघर्षरत है। शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यास 'अमलताश' की नायिका बेला अपने पति विपिन की मृत्यु के बाद अकेली रह जाती है। लेकिन जब उसे पता चलता है कि उसका जेठ जायदाद हथियाना चाहता है तो वह कोर्ट पहुँच कर अपना अधिकार हासिल करती है। वह अपना अनुभव इन शब्दों में बताती है– ''कोई कहे विपिन जी हमारे लिए कोई जमा छोड़ गये थे तो सच मानो बहन जिस समय वह गए थे मेरे पास अपना कहने को कुछ भी नहीं था।.. .... पर खैर मैं भी मजबूत निकली, पुलिस कोर्ट सब कर हाईकोर्ट तक पहुँची और अपने हिस्से की जायदाद अपने नाम करवा कर ही रही।''[13] लेखिका बेला को संधर्षशील नारी के रूप में चित्रित किया है जो अपने अधिकारों को हाथ से जाता देखकर उन्हें पाने के लिए संघर्ष करती है। आज स्त्रियाँ अपने आप को निःसहाय नहीं मानती हैं।

अस्तित्व बनाये रखने के लिए संघर्ष :– आधुनिक नारी अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संघर्षरत है। उषा प्रियम्वदा के उपन्यास 'शेषयात्रा' की अनु विवाह के पश्चात् अपने पति के साथ विदेश जाती है। वहाँ पहुँचकर उसे पता चलता है कि उसके पति का अन्य औरतों के साथ संबंध है। वह पति को छोड़कर नये सिरे से जीवन की शुरूआत करती है। अपने संघर्ष के दिनों को याद करते हुए वह सोचती है – ''उसी मानसिक तनाव में मैंने सोचा कि अच्छा अभी तो सारी उम्र पड़ी हुई है चलो कुछ बनने की कोशिश तो कर लो कि तुम भी प्रणव कुमार बन सकती हो या नहीं।''[14] उषा प्रियम्वदा ने अनु को कठिन जीवन संघर्ष करने वाली नारी के रूप में चित्रित किया है जो अपने आत्मसम्मान, अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संघर्ष करती है। अतः कहा जा सकता हैं कि आधुनिक नारी का संघर्षशील स्वभाव उसे निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता हैं। वह जीवन में आए सभी आघातों को झेलते हुए आगे बढ़ती है। इसी का चित्रण स्वतंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में किया है।

अंत में, यह कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नारी जीवन में अनेक बदलाव देखने में आये। स्वतंत्रता संग्राम में नारियों ने अपना सक्रिय योगदान प्रदान कर के उसने समाज में एक ठोस जमीन का निर्माण किया है। इसी के बाद शुरू हुआ उसका संघर्ष अपने अस्तित्व एवं अधिकारों को पाने के लिए। नारी की बदलती हुई चेतना और स्वरूप का चित्रण स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में किया है। इन उपन्यासकारों ने स्त्री को अपने अस्तित्व और अधिकारों को पाने के लिए नाना प्रकार से जूझते हुए दिखाया है। आज स्त्रियाँ अपने स्वतंत्रता और समानता के लिए लड़ती है, अपने स्वत्व के प्रति वह जाग्रत है। बौद्धिकता इनके व्यक्तित्व का प्रधान अंग है और वह महत्वकांक्षी एवं संघर्षशील भी है। स्वतंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास साहित्य में नायिका को व्यक्तित्व प्रदान कर उसके आत्मसमान को जाग्रत होते दिखाया है। अस्त्तिव एवं अधिकार के प्रति सजग नारी की बौद्धिकता का भी चित्रण इन उपन्यासकारों ने किया है। ये नायिकायें पुरातन मान्यताओं और रूढ़ियों को मानने से इन्कार करती है। महत्वकांक्षा से भरपूर नारी का चित्रण भी स्वतंत्र्योत्तर उन्यासकारों ने किया है। इन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में स्त्रियों को अच्छी और बुरी परिस्थितियों में संघर्षरत होते दिखाया है, जो अपने आत्मसम्मान के प्रति सजग है। नारी के जीवनमूल्य में आ रहे बदलावों के आधार पर स्वतंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने नारी स्वातंत्रता को अपने उपन्यासों में अंकित किया है।

संदर्भ सूची

1. मुदूल चित्रा, 'तहखानों में बंद अक्स', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ.सं. – 98.
2. वर्मा, महादेवी, 'श्रृंखला की कड़ियाँ', लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1997, पृ.सं. – 50.
3. अनामिका, 'स्त्रीत्व का मानचित्र', सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्कारण 2001, पृ.सं. – 47.
4. प्रियम्वदा, उषा, 'रूकोगी नहीं राधिका', अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण, 1989, पृ.सं. – 123.
5. यशपाल, 'क्यों फँसे', विपल्व प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण प्रथम 1968, पृ.सं. – 81.
6. प्रभाकर, विष्णु, 'अर्द्धनारीश्वर', शब्दाकार प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1992, पृ.सं. – 321.
7. खेतान, प्रभा, 'अपने–अपने चेहरे'', किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली–2, संस्करण 1994, पृ.सं. – 64.
8. शेष, शंकर, 'चेतना', किताब घर प्रकाशन, दिल्ली – 2, संस्करण 1990, पृ.सं. – 101.
9. परवेज, मेहरून्निसा, 'उसका घर', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण दूसरा 1978, पृ.सं. – 41.
10. प्रभाकर, विष्णु, 'अर्द्धनारीश्वर', शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1992, पृ.सं. – 63.
11. पुष्पा, मैत्रेयी, 'ईदन्नमम', किताब घर प्रकाशन, दिल्ली–2, संस्करण प्रथम 1994, पृ.सं. – 289.
12. शास्त्री, शशिप्रभा, 'अमलताश', नवोदय सेल्स, दिल्ली, संस्करण प्रथम 1992, पृ.सं. – 73.
13. वही, पृ.सं. – 135
14. प्रियम्वदा, उषा, 'शेष यात्रा', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2, संस्करण प्रथम, 1994, पृ.सं. – 143.

रेणु एवं ताराशंकर के आंचलिक उपन्यासों में समरूपता

विजयता दुबे*

भारतवर्ष विविध संस्कृतियों के महामिलन का देश है। विश्व कवि गुरु रवींद्रनाथ टैगोर ने कहा था–

"नाना भाषा, नाना मत, नाना परिधान
विविधेर–माझे देखो मिलन महान"

कवि गुरु रवींद्र के कहने तात्पर्य है, हमारे देश में विविधि भाषा–भाषियों के बीच विविधता होने के बावजूद, एकता स्थापित है, जो शांति व सौहार्द का प्रतीक है। इस संदर्भ में डॉ. सोमा बंद्योपाध्याय कहती हैं,– "विविधता में एकता का संदेश देने वाले कवींद्र रवींद्र के इस भारतवर्ष में अंतः प्रादेशिक साहित्य के आदान–प्रदान का इतिहास अत्यंत कुतूहल जगानेवाला है।"[1] तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से न केवल हम अन्तः प्रांतीय भाषाओं के बीच संबंध को और अधिक मजबूत बना सकेंगे, बल्कि देश के दो प्रांतों के पाठक–वर्ग के बीच एक भावनात्मक–एकता सूत्र को स्थापित करने में भी सक्षम होंगे। तुलनात्मक अध्ययन का दायरा सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं है, अपितु राष्ट्रीय अखंडता के लिए भी आवश्यक है कि दो भाषाओं के पारस्परिक संबंधों पर विचार किया जाये।

हिन्दी एवं बांग्ला दोनों भाषाओं के साहित्य के बीच पारस्परिक आदान–प्रदान का इतिहास बहुत पुराना है। इन दोनों भाषाओं के संबंध सूत्र के बारे में कह सकते हैं कि जिस प्रकार आधुनिक हिन्दी साहित्य (विशेषकर भारतेंदुकालीन साहित्य) बांग्ला साहित्य से प्रभावित था, उसी प्रकार बांग्ला साहित्य में भी हिन्दी के महत्व को स्वीकारा गया।

हिन्दी साहित्य में भारतेंदु युग से ही बांग्ला गद्य के विभिन्न विद्याओं– उपन्यास, नाटक, कहानी आदि का हिन्दी में अनुवाद आरंभ हो गया था। यहाँ तक कि 'उपन्यास' शब्द भी हिन्दी में बांग्ला से ही आया था। हिन्दी काल के कई आंदोलनों को बांग्ला ने अनुप्रेरित किया था। भारतेंदु ने हिंदी साहित्य में बांग्ला साहित्य के महत्व को स्वीकार करते हुए अपनी 'नाट्यकला' बांग्ला भाषा को 'सम्पत्तिशलिनी ज्ञानवृद्धा बड़ी बहन' कहकर संबोधित किया है। छायावादी कवि निराला रवींद्र–काल से विशेषरूप से प्रभावित थे। 19 वीं शताब्दी में हिन्दी और बांग्ला कथा साहित्य में अद्भुत समानतायें देखने को मिलती है। विधवा–विवाह, बाल–विवाह, बहु–विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों के संदर्भ में बांग्ला और हिन्दी के लेखकों ने उदार और प्रगतिशील मनोभाव दिखाया है। ग्रामीण जीवन हो या शहरी जीवन दोनों के विवरण बांग्ला एवं हिन्दी कथा साहित्य में मिलते हैं। जहाँ हिन्दी उपन्यासों में बंगाली जाति के क्षेत्र व पात्र विशेषतः कोलकाता देखने को मिलते हैं, ठीक उसी प्रकार बांग्ला साहित्य में हिन्दी जाति के क्षेत्र विशेषतः पटना, काशी, बनारस, लखनऊ इत्यादि तथा पात्र के वर्णन मिलते हैं।

विद्यासागर एवं राजा राममोहन राय दोनों का मानना था कि हिन्दी ही वह भाषा है जो पूरे देश को एकसूत्र में बांध सकती है। रवींद्रनाथ स्वयं हिन्दी के प्रति हृदय से श्रद्धाशील थे। 'वन्देमातरम' राष्ट्रगीत के रचयिता बंकिम चन्द्र चटर्जी ने 'बंग–दर्शन' में लिखा था– "हिन्दी भाषा की सहायता से भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों के मध्य में जो ऐक्य–बंधन संस्थापन करने में समर्थ होंगें वही सच्चे भारत बंधु पुकारे जाने योग्य हैं।"[2] भारत के विशाल और वैचित्यपूर्ण कथा–साहित्य को जानने के लिए विशद साहित्य पढ़ना आवश्यक है, क्योंकि विभिन्न प्रादेशिक साहित्य की उन्मुक्त्त खिड़कियों से ही भारतीय साहित्य के विशुद्ध निर्मल वायु का आना–जाना संभव हो सकता है और उस निर्मल पवित्र वायु का स्पर्श पाना केवल तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा ही संभव है।

हिन्दी के सशक्त आंचलिक कथाकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' व बंगाल के प्रतिभाशाली उपन्यासकार ताराशंकर बंद्योपाध्याय दोनों ने ही अपने–अपने कथा साहित्य में आंचलिक भाषा का सफलतापूर्वक प्रयोग किया। ताराशंकर बंद्योपाध्याय 20 वीं शताब्दी के तीसरे दशक के प्रमुख बंगाली उपन्यासकारों में थे जिन्होंने उपन्यास लेखन के क्षेत्र में अद्वितीय सफलता प्राप्त की। बंगाली भाषा के सुप्रसिद्ध साहित्यकार ताराशंकर जी ने अपने आसपास की दुनिया से कहानियाँ बुनकर उत्कृष्ट गद्य लिखा। ग्रामीण समाज को साहित्य में प्रतिष्ठित करने का जो प्रयास दिखाई पड़ता है, उस धारा के लेखकों में ताराशंकर का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। वे ही बांग्ला के

*** पी–एच.डी. शोधार्थी, कलकत्ता विश्वविद्यालय, बी–36, अर्जुनपुर मार्केट, देशबंधुनगर, कोलकाता–700059**

प्रथम ऐसे लेखक थे जिन्होंने बांग्ला के एक विशेष अंचल (राढ़–प्रदेश) के गाँवों को और वहाँ की संपूर्ण जनजातियों को नायक के रूप में चित्रित किया। उन्होंने अपने उपन्यासों में सामग्री और संभावनाओं से भरपूर यथार्थवाद को नए दृष्टिकोण से स्वीकार किया, जिससे पाठक तत्कालीन समाज के रूढ़िवाद और पाखंड से ग्रसित, सीमित मानवीय संबंधों की सच्चाई को जान सके। प्रादेशिक जीवन को व्यापक रूप में चित्रित करने में उनको महारत हासिल थी। उनकी कृतियों में प्रादेशिक जीवन का इतना सजीव चित्रण होता था मानो किसी फोटोग्राफर ने चित्र उत्तार दिए हों। ताराशंकर के प्रसिद्ध उपन्यास हैं,– 'आरोग्य निकेतन', 'गणदेवता, 'हाँसुली बाँकेर उपकथा' 'चैताली घुर्णी', 'पंचग्राम', 'निशिपाद्यो', 'कालिंदी' इत्यादि। राढ़ प्रदेश के किसान, मजदूर, डोम, बाउरी, संथाल, मालो, जादुगर, बनजारे मालाकार, झुमुर गीत गाने वाले कवियाल तथा कहार प्रदेश के लोग जो हर प्रकार के भौतिक सुख–सुविधाओं से वंचित हैं। इस अंचल के प्राणतत्व– संस्कृति, परंपरा, लोकोत्सव, रीति–रिवाज़, खान–पान, रहन–सहन, वेश–भूषा, विलास–व्यसन, जीविका एवं भाषा आदि संपूर्ण रूप में संभवतः ताराशंकर की ही लेखनी से चित्रवत् हो उठे। इस संबंध में हंसकुमार तिवारी लिखते हैं, –"उनका (ताराशंकर बंद्योपाध्याय) पर्यवेक्षण इतना तीव्र आंतरिक और गहरा था कि लगता है उन्होंने इस क्षेत्र और जीवन को पूरी तरह से आत्मसात कर लिया है और वहाँ की मिट्टी की धड़कन को अपने कानों से सुन रहे हैं।"[3]

फणीश्वरनाथ रेणु ने आँचलिकता को टकसाली मुहावरे के रूप में ढालने का सफल प्रयास किया। रेणु ने 'मैला आँचल' की भूमिका में पहली बार आँचलिक उपन्यास की संज्ञा का प्रयोग किया। प्रेमचंद का स्थिर गाँव रेणु तक आते–आते गतिशील हो चुका है। यह संक्रमण के दौर से गुजर रहा गाँव है, जिसके एक छोर पर परंपरा की एक मजबूत डोर है तो, दूसरे छोर पर आधुनिकता की दस्तक। पहली बार हिन्दी उपन्यास में राजनीति और विज्ञान का प्रवेश 'मैला आँचल' के जरिए ही हुआ है। ताराशंकर के अनुरूप रेणु के कथा–साहित्य में भी पूर्णिया जिले के विभिन्न अंचलो विशेषकर कोसी अंचल में रहने वाले, सही अर्थों में अवहेलित, निष्पेषित शोषित ग्रामीण जनता एवं उनके जीवन संघर्ष के चित्र प्रतिबिंबित हुए हैं। यादव टोली, गुअरटोली, चमारटोली आदि टोली के लोग सर्वथा असहाय हैं, अति दारिद्रय के बीच भी जो निरंतर संघर्षरत हैं, उन्हीं का चित्र उन्होंने खींचा है। उनके प्रमुख उपन्यास हैं– 'परती परिकथा', 'मैला आँचल', 'जुलूस', 'दीर्घतपा इत्यादि। रेणु की आंचलिकता पर श्याम कुमार घोष ने लिखा है,– "उनके (रेणु) आंचलिकता पर विचार करने के क्रम में कहा जाता है कि उनमें आंचलिकता का जो गाढ़ा, चटक और सचेत रंग है, वह उनसे पूर्व और किसी हिन्दी लेखक में ही क्यों किसी भारतीय लेखक में भी कम ही है।"[4]

कलकत्ते में रेणु एवं ताराशंकर दोनों एक दूसरे से कई बार मिले थे एवं दोनों ने यह स्वीकार किया है कि उनके साहित्य पर एक–दूसरे का प्रभाव पड़ा है। रेणु एवं ताराशंकर, दोनों के सफल आंचलिक कथाकार होने में, इनके भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका रही। किसी अंचल के सांस्कृतिक जीवन को साकार करने में उस अंचल की भाषा का प्रयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है। संक्षेप में कहें तो दोनों कथाकार अपने–अपने अंचल के कण–कण में जीए हैं।

ताराशंकर की सबसे बड़ी उपलब्धि है, साहित्यिक बांग्ला को त्यागकर ठेठ प्रादेशिक ग्रामीण बोली तथा उसी के मुहावरों का खुलकर प्रयोग। क्योंकि स्थानीय आंचलिकता को पुष्ट और दृढ़ बनाने का सबसे बड़ा उपकरण भाषा को माना गया है। इस भाषा के सहज और प्रभावशाली ढंग से प्रयोग के क्षेत्र में ताराशंकर ने प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य में आंचलिकता का सबसे महत्वपूर्ण तत्व 'लोकभाषा' की शक्ति को सबसे पहले एवं सर्वाधिक रूप में संभवतः रेणु ने ही पहचाना था, क्योंकि ग्रामीण जीवन से उनकी गहरी संबंद्धता और उसे कथा बंध में बाँधने की लालसा ने ही उन्हें सबसे पहले वह भाषायी तलाश–यात्रा शुरु करने की प्रेरणा दी। इसलिए उन्हें ही लोकभाषा के उस अक्षय–भंडार की चाभी भी सर्वप्रथम मिली।

दोनों लेखकों की भाषा और शैली के नवीन प्रयोग ने ही उनके उपन्यासों को सभी उपन्यासकार के उपन्यासों से भिन्न कर दिया। इन्होंने नागरिक संभ्रांतता एवं आभिजात्य बोध का मुखौटा उठाकर लघुमानव और उपेक्षित अंचल को प्रतिष्ठित किया, उसी प्रकार भाषा के क्षेत्र में भी जनभाषा एवं बोलियों–उपबोलियों को साहित्यिक गरिमा प्रदान की। एक और सादृश्य जो ताराशंकर एवं रेणु की कृतियों में सहज ही दृष्टिगत होती है, वह है मानक भाषा के साथ सामान्य बोलचाल की भाषा एवं बोलियों का समिश्रण। ताराशंकर ''हाँसुली बाँकेर उपकथा' में लिखते हैं– "इकाता दीर्घनिस्वासा फलला बनवारी। एह, घोकराति यदि भला हादे कलता, 'शाला–हलुका निता मनाता।"[5] अर्थात– बनवारी ने गहरी साँस ली। अहा, अमर लड़की अच्छी होती तो 'शाला हलुक' मान लेती। रेणु 'मैला आँचल' में लिखते हैं– "जोतखी जी कान पर जनेऊ टाँगे, हाथ में लोटा लटकाए इनारे की ओर रहे थे। खेलावन ने टोका, 'आइए, यहीं पानी मंगवा देते हैं।"[6]

ताराशंकर एवं रेणु के कथा लेखन की एक और प्रमुख विशेषता यह है कि दोनों ही पात्रोचित भाषा का अपने आंचलिक उपन्यासों में प्रयोग करते नजर आते हैं। इनके पात्र का वैयक्तिक, बौद्धिक एवं सामाजिक स्तर सब एक साथ उनकी भाषा में रूपायित है। ताराशंकर एवं रेणु दोनों को ध्वनि पकड़ने की अद्‌भुत शक्ति प्राप्त थी। इसी शक्ति के परिणामस्वरूप उन्होंने अपने पात्रों के मुख से उच्चरित भाषा विशेषकर शब्दोच्चारण को हूबहू पकड़ लिया। परिणामस्वरूप दोनों के सृष्ट पात्र जीवंत बन उठे।

रेणु एवं ताराशंकर जिस दृश्य का जिस कार्य या घटना का वर्णन करते हैं, उसी के अनुरूप भाषा गढ़ते हैं और चरित्र को मूर्त ही कर देते हैं। रेणु एवं ताराशंकर की भाषा बिंबात्मक भाषा भी है। इन दोनों कथाकारों को उपन्यासकार की वर्णन क्षमता एवं एक कवि की भाषा–शक्ति दोनों प्राप्त थी। रेणु की 'परती परिकथा' एवं ताराशंकर के 'कवि' उपन्यास में इसके उदाहरण देखने को मिलते हैं। इन दोनों आंचलिक उपन्यासकारों ने संबंधित आंचलिक प्रदेशों में प्रचलित लोकोक्तियों व मुहावरों का अत्यंत स्वाभाविक प्रयोग किया है। उदाहरण :–

रेणु– 'चलनी कहे सुई से कि तेरी पेंदी में छेद' / 'घी ढारी करे मंगरों'

ताराशंकर– 'लरे–लागे वासा हय न' (अर्थात– नर और नाग एक साथ निवास नहीं कर सकते)

'यमराजार दखिन दुआर' (अर्थात यमराज का दक्षिण द्वार)

ताराशंकर एवं रेणु दोनों कथाकारों की भाषा में चित्रात्मकता एवं ध्वन्यात्मकता बहुत स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। उदाहरण–

रेणु – 'ढनाढन ढनांग–ढनांग' (घड़ी घंटा)

ताराशंकर– 'कुरूर–कुरूर–कुरूर–ताक ताक' (ढोल)

इनके साथ–साथ जानवरों, पंक्षियों की आवाजें, गहनों एवं साड़ियों की खसखसाहट, खनखनाहट आदि यथार्थ ध्वनिचित्र के साथ, इन दोनों साहित्यकारों के उपन्यासों में विद्यमान हैं। इन दोनों लोकभाषा के उपन्यासकारों ने लौकिक परंपरा के मौखिक आख्यानों का अपने कथा साहित्य में प्रयोग किया है। उदाहरण–

रेणु– 'परती परिकथा'– कोसी भैया की कथा, दुलारीदाय की कथा।

ताराशंकर 'हाँसुली बाँकेर उपकथा'– शिव–मनसा की कथा।

ताराशंकर एवं रेणु ने लोक–कथाओं के साथ–साथ लोक–गीतों का भी समावेश किया। ताराशंकर का 'कवि' एवं रेणु का 'जुलूस' इसका प्रमुख उदाहरण है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि, रेणु एवं ताराशंकर ने लोक–कथाओं, लोकगीतों, मुहावरों व लोकोक्तियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया। दोनों ने अपनी भाषिक संरचना को कभी भी बोझिल, अस्वाभाविक, कृत्रिम क्लिष्ट नहीं होने दिया। इन दोनों ने अपनी भाषा को लेकर कई प्रकार के प्रयोग एवं परीक्षण किए। इस प्रकार दोनों में ही भाषायी रचाव और शिल्प के प्रति जो एक प्रकार का प्रायोगिक आग्रह तथा प्रयत्नशीलता मिलती है, प्रायः लेखकों में इसका अभाव रहता है। यही कारण है रेणु व ताराशंकर के उपन्यासों में सदैव प्रयोगशीलता एवं नवीनता मिलती है।

इन दोनों रचनाकारों की भाषा एवं कथा–वस्तु की प्रकृति, दशा, दिशा समरूप है क्योंकि दोनों ने जो जीवन जिस परिवेश–अंचल में जिया उसी को आंचलिक उपन्यास का रूप प्रदान किया। इन दोनों उपन्यासकारों ने अपनी अनुभूति को अपने उपन्यासों का विषय बनाया।

अंततः हम यह कह सकते हैं कि, भारतीय भाषाओं का लोकाधार अत्यंत समृद्ध है। भाषाई सामर्थ्य का अद्‌भुत खजाना लोकाधारों से ही निर्मित होता है।

संदर्भ–सूची :–

1. बंद्योपाध्याय सोमा, पूर्व की अपूर्व दस्तकें, साहित्य भंडार, प्रयागराज, प्रथम संस्करण–2015, पृ.स. 09।
2. बाहरी डॉ. हरदेव, हिन्दी भाषा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, प्रयागराज, पुनर्मुद्रण–2010, पृ.सं.157।
3. हंस कुमार तिवारी, कथा शिल्पी रेणु की भाषाः विपक्ष 'रेणु अंक', नई दिल्ली, जुलाई 1991, पृ.सं.253।
4. श्याम कुमार घोष, आंचलिकता रेणु कीः विपक्ष 'रेणु अंक', नई दिल्ली, जुलाई, 1991, पृ.सं.248।
5. बंद्योपाध्याय ताराशंकर, हाँसुली बाँकेर उपकथा, करुण प्रकाशन,कलकत्ता, प्रथम संस्करण– 2019, पृ.सं.– 274।
6. रेणु फणीश्वरनाथ, मैला आँचल, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, छियालीसवाँ संस्करण– सितम्बर, 2021, पृ.सं. 40।

अवधी-लोकभाषा का साहित्य

सुशील कुमार राम*

अयोध्या नाम का एक बहुत प्राचीन राज्य था। अयोध्या से औध और औध से अवध नाम पड़ा। अवध की बोली अवधी है। उत्तर प्रदेश में लखनऊ–फैजाबाद के आसपास का क्षेत्र अवध कहलाता है। अवध क्षेत्र में लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, लखीमपुर खीरी, सीतापुर, गोण्डा बहराइच, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर बाराबंकी, फैज़ाबाद, फतेहपुर जिले शामिल हैं। अवधी भाषा के कई रूप और नाम है। इसे 'कोसली' और 'बैसवाड़ी' भी कहते हैं। अवधी भाषा का संबंध अर्द्धमागधी प्राकृत से माना जाता है। अर्द्ध मागधी से विकसित पूर्वी हिन्दी की बोलियों में अवधी सर्वप्रमुख बोली है।

काव्यभाषा अवधी साहित्यिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण रही है। मध्यकालीन अवधी के तीन रूप निखरकर आये हैं–

(क) सुफ़ियों की ठेठ अवधी,

(ख) हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानक काव्यों की पश्चिमी परंपरा से संपृक्त अवधी, और

(ग) राम भक्त कवियों की साहित्यिक अवधी।

प्रेममार्गी सूफ़ी कवि मुसलमान थे। उनकी भाषा में अरबी–फ़ारसी शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक है परंतु उनका साहित्यिक वातावरण भारतीय रहा है। सामान्य रूप से उन्होंने जनसाधारण की बोली को अपनाया और उसे सजीव तथा प्रभावपूर्ण रूप दिया। उन्हें शब्द–शक्तियों का अच्छा ज्ञान था। भाषा के कलापक्ष का भी उन्होंने पूरा–पूरा ध्यान रखा। अलंकारों का बड़ा प्रयोग किया। उनमें शब्द चमत्कार गौण और अर्थ–चमत्कार अधिक है। छंदों में दोहे और चौपाई के अतिरिक्त बरवै का प्रयोग अधिकारपूर्ण किया गया। अवधी का प्रयोग वर्णनों के लिए बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ। वन, नदी, पशु–पक्षी आदि के वर्णन बहुत सुंदर बन पाये हैं। नायिकाओं के सौंदर्य का वर्णन उच्च कोटि का है। विरह–वर्णन में भी इन कवियों ने सफलता प्राप्त की है। अवधी की पहली कृति मुल्ला दाऊद कृत लोरकहा या चन्दायन (14 वीं शती) मानी गयी है। इसमें चाँदा और लोरिक की प्रेमकथा है जो मसनवी शैली में लिखी गई है अर्थात पहले ईश्वर की स्तुति, बाद में पैगंबर की, फिर गुरु की और उसके बाद तत्कालीन राजा की स्तुति है। दोहा–चौपाई का विशेष प्रयोग किया गया है। इसमें विरह वर्णन बहुत सुंदर रूप में चित्रित किया गया है। भाषा सुबोध और स्पष्ट है। मुल्ला दाऊद की भाषा ठेठ अवधी है जो वर्णन के लिए विशेषतया उपयुक्त है। इसमें अरबी फारसी शब्दों की अपेक्षा तत्सम और तद्भव शब्दों की अधिकता है। उदाहरण–

"दाऊद कवि जो चांदा गाई। जेंइ रे सुना सो गा मुरझाई।।"

सूफी कवियों ने अवधी को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। इन्हीं की परंपरा को कुतुबन, मंझन, जायसी, उस्मान ने आगे बढ़ाया।

'मृगावती' के रचयिता कुतुबन और 'मधुमालती' के रचयिता मंझन दोनों की कथाएँ रोचक और उनके वर्णन विशद हैं। चरित्र–चित्रण की दृष्टि से उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। भाषिक दृष्टि से इनका अपना महत्व है, तद्भव शब्दों की परंपरा का अनुसरण जो बाद के सूफ़ी कवियों ने किया है उसकी नींव इन्होंने रखी। कुतुबन की कविता में जनभाषा के साथ तद्भव शब्दों की अधिकता किन्हीं चौपाइयों और दोहों में देखी जा सकती है। मृगावती की भाषा की प्रमुख विशेषता है ठेठ अवधी का माधुर्य। कवि ने स्वयं लिखा है–

"सासत्रीय आखर बहु आए।औं देसी चुनी चुनी सब लाए।।"

मंझन की अवधी अधिक सरल और सटीक जान पड़ती है। प्रकृति वर्णन और विरह वर्णन विशेषतः विशद और सुंदर हैं। उदाहरण–

"रतन कि सागर सागरहिं, गजमोती गज कोई।
चंदन कि बन बन उपजै विरह कि तन–तन होई।।"

*** पी–एच.डी. शोधार्थी, काज़ी नज़रुल विश्वविद्यालय, 34/1, झामा पुकुर लेन, कोलकाता –700009।**

एक साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी को पल्लवित, पुष्पित करने का श्रेय मलिक मुहम्मद जायसी को जाता है। उन्होंने ठेठ अवधी का प्रयोग कर चौदह ग्रंथों की रचना की, जिसमें पद्मावत, अखरावट, चित्रलेखा, कहरनामा, आखिरी कलाम, कान्हावत आदि प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें पद्मावत सबसे अधिक महत्वपूर्ण रचना है। इसकी भाषा ठेठ अवधी है। संपूर्ण साहित्य में उनका यही प्रयास रहा कि भाषा अपने ठेठपन, देसीपन को खोए बिना, मिठास और लोक संस्कृति को धारण करते हुए व्यक्त करे। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है,– "जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है, पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य भाषा का माधुर्य है, संस्कृत का नहीं। वह संस्कृत की कोमलकांत पदावली पर अवलंबित नहीं। उसमें अवधी अपनी निजकी स्वाभाविक मिठास लिए हुए हैं।"[1]

पद्मावत मूलतः एक प्रेमकाव्य है, जिसमें कवि ने बड़ी कुशलता से लौकिक कथा के माध्यम से आध्यात्मिक संकेतों का आभास कराया है। जायसी ने विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और मनोभावों का अद्भुत वर्णन किया है। पद्मावत में नगर–वर्णन, प्रकृति–वर्णन, समुद्र, सरोवर, गढ़, विवाह आदि के वर्णनों की भरमार है। इसके अलावा इसमें नायिका के सौंदर्य–वर्णन, वियोग–वर्णन और बारहमासा वर्णन भी मिलता है। इस संदर्भ में डॉ. हरदेव बाहरी लिखते हैं– "क्या कलापक्ष में और क्या भाषापक्ष में, क्या प्रस्तुत वर्णन में और क्या अप्रस्तुत की अभिव्यंजना में, इस ग्रंथ की गूढ़ता, सरसता, गंभीरता और रोचकता निर्विवाद है। इसमें स्तुति, ऋतु वर्णन, स्त्री–परिचय, प्रेम, नखशिख, विरह, सुख, दुख, धर्म, राजनीति, घर, दुर्ग, समुद्र, राजमंदिर, जीवन, मृत्यु सभी विषयों का वर्णन विस्तृत और हृदयग्राही है।"[2]

जायसी के बाद उसमान का नाम लिया जाता है। इनकी 'चित्रावली' की रचना पद्मावत के ढंग पर हुई है। इसमें भी आध्यात्मिक वर्णन, राजस्तुति, नगर, सरोवर, यात्रा आदि का विशद वर्णन है। विरह–वर्णन के अलावा प्रकृति–वर्णन भी सरस और सुंदर हुआ है।

'इन्द्रावती' और 'अनुराग बाँसुरी' के रचयिता नूर मुहम्मद का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी रचना भाव–व्यंजना की दृष्टि से उच्चकोटि की है। भाषा ठेठ अवधी है, जिसमें संस्कृत और ब्रजभाषा के शब्द खूब मिलते हैं। उदाहरण–

"जब लागि चारि चारि रहु चारी। राजकुँवर कह ठग असमारी।।"

छीता के कवि जान कथानक के गठन और कवित्वपूर्ण तथा प्रेमतत्व के निरूपण के लिए प्रसिद्ध हैं। 'यूसुफ', 'जुलेखा' के रचयिता निसार बड़े विद्वान कवि थे। हृदय की अनेक अवस्थाओं का चित्रण करने में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। सूफ़ी काव्य का भाषिक महत्व असंदिग्ध है। जनभाषा का जैसा सुंदर रूप सूफ़ी काव्य में प्राप्त होता है, वैसा पहले न था। यहीं पर भाषा का साहित्यिक स्तर उत्चकोटि का हो जाता है। हिन्दू प्रेमाख्यानकार में नरपतिव्यास, गोवर्धनदास, दुखहरन आदि की काव्य भाषा अपभ्रंश और ब्रजभाषा से संपृक्त अवधी है। इनकी भाषा में संस्कृत का बढ़ता हुआ प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। उदाहरणः

"रोवत नैन रकत कै धारा। टेसु फुलि बन भा रतनारा।
जौ सिंगार कोई बरबस करई। अनिल समान होई सो जरई।।"

भाषाई विविधता के कारण इन आख्यानक काव्यों की भाषा का महत्व बहुत अधिक नहीं हैं क्योंकि इनकी कोई परंपरा बनने नहीं पाई।

रामभक्ति काव्य की भाषा प्रधानतः अवधी है, परंतु इसका स्वरूप ठेठ अवधी से भिन्न है। इसे शिष्ट वर्ग की परिष्कृत और परिमार्जित साहित्यिक भाषा कह सकते हैं। इस काव्य का प्रतिपाद्य विषय धार्मिक और भक्ति प्रधान है, इसलिए कवियों ने भगवान राम की प्रतिष्ठा में संस्कृत शब्दावली को अधिक ग्रहण किया है। जहाँ धर्म और दर्शन का प्रसंग हो तथा उच्च काव्यसौष्ठव दिखाना हो, वहाँ तत्सम् की प्रधानता स्वाभाविक ही है। ये तत्सम शब्द अवधी को संस्कृत नहीं बनाते बल्कि उनके संभावित अवधी रूप में प्रयुक्त करते थे। इस प्रक्रिया में तत्सम शब्दों का अवधीकरण हो गया है और वे बेमेल प्रतीत नहीं होते। उदाहरणः–

"लोचन जल रहे लोचन कोना। जैसे परम कृपन कर सोना।"

इसमें कोई संदेह नहीं है कि भाषा प्रयोग में तुलसीदास अपनी प्रकृति से समन्वयवादी हैं। उन्होंने भोजपुरी, राजस्थानी, खड़ी बोली, और यहाँ तक कि अरबी–फ़ारसी प्रयोगों को भी उचित स्थान दिया

है। विदेशी शब्दों को हिन्दी का बाना पहनाने में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। उदाहरण– खलक, खसम, गरूर, रहम, सरकार, साहेब। वे नाना भाषाओं के पंडित थे। इसी विशेषता के कारण उन्होंने अंतर्जगत् और बाह्यजगत् की दशाओं का चित्रण बड़ी सफलता से किया है। उनकी भाषा भावानुकूल और रसानुकल बन पाई है। तुलसी की शैली अलंकृत न होकर स्वाभाविक, सरस और सरल है, इसीलिए आज तक वह भारत भर के लोगों के कंठों में गूँजती है। तुलसी की प्रतिभा इतनी अच्च कोटि की है कि उसमें अलंकारों की आवश्यकता हीं नहीं रही। जहाँ कहीं अलंकार का प्रयोग हुआ है, कुशलतापूर्वक हुआ है। तुलसी अनुप्रास को आदर नहीं देते, उपमा और रूपक से अधिक काम लेते हैं। अवधी की प्रकृति के अनुरूप तुलसीदास ने दोहा और चौपाई का प्रयोग मुख्य रूप से किया है। तुलसीदास का 'अवधी' और 'ब्रज' दोनों ही पर समान और पूर्ण अधिकार था, तभी आचार्य रामचंद्र शुक्ल को लिखना पड़ा– "भाषा पर जैसा अधिकार गोस्वामी जी का था, वैसा और किसी हिन्दी कवि का नहीं। न सूर अवधी लिख सकते थे न जायसी ब्रज।"[3]

'रामचरितमानस' ने पिछली अनेक शताब्दियों में करोड़ो हिन्दी–अहिन्दी भाषियों के हृदय को स्पर्श करके उन्हें मानसिक शक्ति व शांति प्रदान की है और उनके जीवन को उन्नत बनाया है। तुलसी की भाषा पर डॉ. रामविलास शर्मा अपना विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं– "जैसे उन्हें (तुलसीदास) अपने काव्य–सौंदर्य का, बोध था, वैसे ही उन्हें लोकभाषा के महत्व का भी ज्ञान था। इसीलिए उन्होंने भाषा के कवियों की वंदना करते हुए लिखा थाः

जे प्राकृति कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने।
भये जे अहहि जे होइ हहि आगे। प्रनवऊँ सबहि कपट–छल त्यागे।।

उन्होंने भाषा के उन समस्त कवियों को प्रणाम किया है जो उनसे पहले हो चुके थे, जो उनके युग में थे और जो भावी युगों में होनेवाले थे।"[4] साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी के विकास का लंबा इतिहास है। भक्तिकाल में तुलसीदास ने अवधी के रूप में निखार लाकर उसे उत्कर्ष प्रदान किया। आधुनिक काल में अवधी का प्रयोग साहित्य लेखन के लिए हो रहा है। लोक साहित्य और भाषा विज्ञान की दृष्टि से अवधी का महत्व आज भी बना हुआ है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि, भारतीय भाषाओं का लोकाधार अत्यंत समृद्ध है। भाषाई सामर्थ्य का अद्भुत खजाना लोकाधारों से ही निर्मित होता है। अवधी का साहित्य केवल एक विशेष क्षेत्र या विशेष काल का साहित्य नहीं है अपितु यह भारतीय साहित्य को समग्रता में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। अवधी, ब्रज, बंग्ला, खड़ीबोली, उड़िया इत्यादि प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में आपस में गुंथे हुए हैं क्योंकि सभी का आधार लोकाधार है। विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं की विविधता के बीच एकता स्थापित करते हुए डॉ॰ सोमा बंद्योपाध्याय लिखती हैं,– "कोई भी प्रादेशिक साहित्य केवल एक विशेष प्रदेश एवं विशेष काल का ही नहीं होता, अपितु स्थान, काल व पात्रों के विभेद को भूलकर हम उस साहित्य के साथ एकात्म हो जाते हैं। भारतीय साहित्य को समग्रता में जानने के लिए आवश्यक हैं कि केवल अपने प्रदेश की भाषा या साहित्य का अध्ययन न करके दूसरे प्रदेशों की भाषा एवं साहित्य का भी अध्ययन किया जाये।"–(5)

संदर्भ सूची–

1. आचार्य समचंद्र शुक्ल ग्रंथावली (भाग–1), संपादक– ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2015, पृ .सं. 179।
2. बाहरी डॉ. हरदेव, हिन्दी भाषा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, प्रयागराज, पुनर्मुद्रण–2010, पृ.सं.215।
3. आचार्य समचंद्र शुक्ल ग्रंथावली (भाग–1), संपादक– ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2015, पृ .सं. 466।
4. शर्मा रामविलास, परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छात्र संस्करण–2018, पृ.स. 69।
5. बंद्योपाध्याय सोमा, पूर्व की अपूर्व दस्तकें, साहित्य भंडार, प्रयागराज, प्रथम संस्करण–2015, पृ.स. 09।

ꙮ★ꙮ

नागार्जुन की कविता में व्यंग्य

बबिता कुमारी*

व्यंग्य एक ऐसा साहित्यिक दृष्टिकोण है, जिसमें लेखक या कवि किसी व्यक्ति, समाज, या परिस्थिति की कमियों और दोषों को उजागर करता है। व्यंग्य का उद्देश्य न केवल मनोरंजन करना होता है, बल्कि पाठकों को सोचने और समाज में सुधार के लिए प्रेरित करना भी होता है। यह सीधे आलोचना करने के बजाय कटाक्ष, हास्य, और तीखी भाषा का उपयोग करता है, जिससे बात को सरलता और प्रभावी ढंग से व्याख्यान किया जाता है। व्यंग्य किसी बुराई, कमजोरी, या सामाजिक विडंबना को इस प्रकार उजागर करना कि वह पाठकों के मन में गहराई तक उतर जाए। इसे एक प्रकार की सकारात्मक आलोचना भी कहा जा सकता है, जो हास्य और कटाक्ष के साथ जाहिर की जाती है। व्यंग्य का मुख्य उद्देश्य समाज में छिपी हुई खामियों, अनियमितताओं, और अन्याय को उजागर करना है। यह न केवल पाठकों का ध्यान समस्याओं की ओर आकर्षित करता है, बल्कि समाधान की ओर भी संकेत करता है।

नागार्जुन, हिंदी साहित्य के ऐसे कवि हैं, जिनकी कविताओं में समाज के वास्तविक चित्रण के साथ–साथ तीखा व्यंग्य भी देखने को मिलता है। उनकी कविताएँ साधारण भाषा में लिखी गई हैं, लेकिन उनमें छिपा व्यंग्य और गहरी संवेदनाएँ पाठकों के हृदय को छू लेती हैं। नागार्जुन के व्यंग्य का मुख्य उद्देश्य सामाजिक और राजनीतिक अन्याय, असमानता, और पाखंड पर चोट करना है। उनकी व्यंग्य में एक अनोखी बात यह है कि वे अपनी रचनाओं में सीधे आरोप लगाने के बजाय बात को ऐसे ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि पाठक खुद सोचने पर मजबूर हो जाए। नागार्जुन की कविताओं की भाषा सरल, सहज और जनमानस के करीब है। उनकी भाषा में ग्रामीण जीवन की सुगंध है, जो पाठकों को तुरंत अपनी ओर आकर्षित करती है। सरल भाषा का उपयोग करने के बावजूद, उनकी कविताओं में गहराई और व्यंग्य का तीखापन हमेशा बना रहता है। उनक व्यंग्य केवल उनके समय तक सीमित नहीं है। आज भी उनकी कविताएँ समाज की समस्याओं और विडंबनाओं को प्रासंगिक रूप से प्रस्तुत करती हैं। चाहे भ्रष्टाचार हो, पर्यावरण की समस्या हो, या समाज में बढ़ती असमानता– नागार्जुन की कविताएँ हर समय के लिए प्रासंगिक हैं। उनकी कविताओं में व्यंग्य का यह स्वरूप कई रूपों में प्रकट होता है– कभी हास्य के रूप में, तो कभी तंज के रूप में। उनकी कविताओं में तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों पर तीखे व्यंग्य देखने को मिलते हैं। नागार्जुन ने न केवल शोषक सत्ता का विरोध किया, बल्कि आम जनता की पीड़ा को भी व्यक्त किया। उनकी कविता 'भोजपुर' में उन्होंने कहा है –

मुन्ना, मुझको
पटनादृदिल्ली मत जाने दो
भूमिपुत्र के संग्रामी तेवर लिखने दो
पुलिस दमन का स्वाद मुझे भी तो चखने दो
मुन्ना, मुझे पास आने दो
पटना–दिल्ली मत जाने दो

यह पंक्तियाँ उन राजनेताओं पर कटाक्ष करती हैं, जो दिखावे की राजनीति करते हैं। नागार्जुन की कविताओं का एक और प्रमुख पक्ष है सामाजिक पाखंड पर प्रहार। उनकी कविताएँ समाज में व्याप्त दोगलेपन और धार्मिक आडंबरों पर तीखा व्यंग्य करती हैं। उदाहरण के लिए, उनकी कविता 'अकाल और उसके बाद' में उन्होंने अकाल की मार झेलते किसानों की दयनीय स्थिति और सत्ता के उपेक्षापूर्ण रवैये को प्रकट किया रहे–

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गस्त
कई दिनों चूहो की हालत भी रही शिकस्त

***शोधार्थी, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद (झारखंड)**

यह पंक्तियाँ समाज के उन वर्गों पर व्यंग्य करती हैं, जो किसानों और गरीबों के लिए कुछ ठोस करने के बजाय दिखावे तक सीमित रहते हैं। नागार्जुन की कविता "कालिदास" उनके व्यंग्य लेखन का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस कविता में उन्होंने महान कवि कालिदास के माध्यम से वर्तमान समाज और उसके नेताओं पर तीखा प्रहार किया है।

"वाह, कालिदास, तुम सचमुच महान हो,
बड़े भुलक्कड़ हो,तुमने रच डालीं,
मेघदूत, रघुवंश, अभिज्ञान शाकुंतलम् और भूल गए
मेरी खटिया का खोंचा ही!"

इस कविता में वे एक साधारण ग्रामीण की आवाज़ में नेताओं और समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की उन कमजोरियों को उजागर करते हैं, जिनकी वजह से आम आदमी हाशिये पर रह जाता है।' 'सच न बोलना' शीर्षक कविता में समाज के दोहरे चरित्र वाले व्यक्तियों की ओर व्यंग्य करते हुए कहते हैं–

ज़मींदार है, साहूकार है, बनिया है, व्योपारी है,
अन्दर–अन्दर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी है।

यह व्यंग्य उनलोगों पर है जो दिखने में ईमानदार और सादगीपूर्ण लगते है, लेकिन भीतर से लोभी, क्रूर और शोषक होते हैं। यह व्यंग्य सता की ताकत और उसकी क्रुरता पर किया गया है। 'बंदूकसत्ता की दमनकारी' शक्ति का प्रतीक है, लेकिन यह शक्ति कोकिला (जनता की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति) का कुछ भी नुकसान करने में असमर्थ है'–

जले ठूठ पर बैठकर गई कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बन्दूक।

इस पंक्ति में कवि समाज और सत्ता की विसंगतियों को बड़ी कुशलता से उजागर करतें हैं। 'प्रेत का बयान' शीर्षक कविता नागार्जुन प्रेत (भूत) के माध्यम से समाज की विडंबनाओं और कुरीतियों पर तीखा व्यंग्य करता है। कवि न प्रेत को एक प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया है, जिसके द्वारा वह समाज में फैले अन्याय, विषमता और मानव की स्वार्थी प्रवृतियों को सामने लाते है–

ओ रे प्रेत
कड़क कर बोले नरक के मालिक यमराज
सच सच बतला!
कैसे मरा तू?
भूख से, अकाल से?
बुखार कालाजार से?
पेचिश, बदहजमी, प्लेग, महामारी से ?

ये पंक्ति समुदाय के हर पहलु सत्ता, धर्म, नैतिकता और मानवीय स्वभाव पर गहरी चोट करती है। 'झंडा' शीर्षक कविता में कवि एक टिप्पणी हमारी राजनीतिक व्यवस्था की पोल खोलकर जनता के सामने ला रखती है। यह व्यंग्य चुनौती देता हुआ, फटकारा हुआ और धीरे धीरे सहलाता हुआ गालों पर तमाचा जड़ता हुआ आधुनिक कबीर का ही परिचय देते हैं। परिश्रमी जनता आजादी के बाद भी शासक किस तरह लाठी चार्ज करती है, नागार्जुन व्यवस्था की इस औदार्य नीति पर कड़ा व्यंग्य करते हुए स्पष्ट करते हैं–

दस हजार दस लाखमरे पर झंडा ऊंचा रहे हमारा,
कुछ हो, क्रांगेस शासन का डंडा ऊंचा रहे हमारा।

'आओ रानी हम ढोएगें पालकी' शीर्षक कविता में भारतीय जनता और उसके शासकों के बीच की असमानता और गुलामी की मानसिकता पर करारा व्यंग्य है। यह कविता उस समय लिखी थी, जब भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और ब्रिटेन की रानी एलिज़ाबेथ द्वितीय के बीच मुलाकत हुई थी। इस कविता में जनमानस की भावनाओं और देश के स्वाभिमान पर चोट करने वाले घटना क्रम को बड़े ही व्यंग्यात्मक अंदाज से प्रहार करते हैं–

आओ रानी, हम ढोएगें पालकी, यही हुई राय जवाहरलाल की
रफू करेगें फटे पुराने जाल की यही हुई राय जवाहरलाल की।

'नया तरीका' शीर्षक कविता में नागार्जुन जिस वास्तविकता को अभिव्यक्त करते है, वह जटिल न होते हुए ठोस सत्य का ही पर्याय है। वास्तविकता को खुलेपन से व्यक्त करने के कारण ही कवि की व्यंग्य तीखे, पैने और आक्रामक होते है, जो सत्ता में बैठे अधिकारियों की नींद उड़ा देते हैं, उनकी कुर्सी हिला देते हैं। नागार्जुन राजनीतिक पार्टियों के चिह्नों को लेकर भी व्यंग्य करते हुए लिखते है–

नया तरीका अपनाया है राधे ने इस साल
बैलों वाले पोस्टर साटे, चमक उठी दीवाल।
पहले कांग्रेस का चुनाव चिह्न था – दो बैल।
बैल वाले पोस्टरों ने दीवार को चमका दिया।

नागार्जुन ने बहुत ही सटीक चित्रण किया है कि कैसे देश के काग्रेंस नेता झूठ बोलकर देश की जनता को गुमराह कर रहे थे। काग्रेंसी, समाज पर अपने तिरस्कारपूर्ण निशाना साधते हुए जो देखा, उसे कविता में कहते हैं–

काग्रेंसी जन तो लेणे कहिए, जो पीर अपनी जाणे रे
पर दुख में अपना सुख साधे, दया भाव न आणे रे।

घिन तो नहीं आती है' शीर्षक कविता में नागार्जुन ने पसीने से लथपथ और कत्थई दांतों की मोटी मुस्कान बेतरतीब मूंछों वाली थिरकने वाली कूली दृ मजदूर के कार्य में किसी सफेदपोश अभिजात संस्कारों में पले व्यक्ति के बराबर बैठ जाने पर 'जी' तो नहीं कुढ़ता ? घिन तो नहीं आती कहकर समूची करूणा को कवि ने व्यंग्य के रूप में कहते हैं–

पूरी स्पीड में है ट्राम
पसीने से लथपथ।
छूती है निगाहों को
कत्थई दांतों की मोटी मुस्कान
बेतरतीब मूँछों की थिरकन
सच सच बतलाओ
घिन तो नहीं आती है।
जी तो नहीं कुढ़ता है?

प्रस्तुत कविता में नागार्जुन ने बोझा ढोते हुए कुली एवं मजदूरों का बड़ा ही यर्थाथ एवं मार्मिक वर्णन किया है। नागार्जुन यही वजह है कि वे जनमानस के दुख से दुखित एवं पीड़ित होते हैं।' इस गुब्बारे की छाया में' नागार्जुन ने वर्तमान काग्रेंस तथा गांधीजी की रामराज्य की कल्पना पर तंज किया है। महात्मा गांधी की रामराज्य की कल्पना सचमूच महान थी किन्तु उसके बाद इस महती कल्पना को पूर्ण रूप से कार्यान्वित नहीं किया गया। यही कारण है कि नागार्जुन का आक्रोश तीव्र हो उठा, तभी तो उन्होनें कहा है–

लाज शरम न रह गई बाकी गांधीजी के चेलो में
फूल नहीं, लाठियां बरसतीं, रामराज्य के जेलों में।

इस संदर्भ में कवि ने आधुनिक भारत की नवीन योजनाओं पर भी प्रहार किया है। 'खाली नहीं और खाली' शीर्षक कविता में नागार्जुन ने देश की आर्थिक दरिद्रता एवं स्थिति पर व्यंग्य करते हैं। जनसामान्य की विषम परिस्थितियों में उनकी समस्त विकरालता के साथ प्रस्तुत किया है। वास्तव में देखा जाए तो नागार्जुन की यह कविता आज की वर्तमान सामाजिक व्यवस्था एवं स्थिति का जीता जागता उदाहरण है–

मकान नहीं खाली है
दूकान नहीं खाली है
स्कूल नहीं खाली, खाली नहीं कॉलेज
खाली नहीं ट्राम, खाली नहीं ट्रेन
खाली नहीं माइंड, खाली नहीं ब्रेन
खाली है हाथ, खाली है पेट
खाली है थाली, खाली है प्लेट।

नागार्जुन ''सौंदर्य प्रतियोगिता' कविता में आधुनिक फैशन परस्त सभ्यता एवं साधनों पर कटाक्ष किया है। जिसमें दो सहेली इसलिए वोट नहीं देती कि उनकी हाथों में काले निशान पड़ जाएगें–

गंगा की मछली

यमुना की मछली
सहेली थीं दोनों, हिल मिल कर रहती थीं
कभी–कभी निकल जाती थीं दूर

''आये दिन बहार के' शीर्षक कविता समाज में व्याप्त गरीबी और असमानता पर आधारित है। इसमें नागार्जुन ने पूंजीवाद और उपभोक्तावाद पर व्यंग्य करते हुए दिखाया है कि कैसे समाज के ऊपरी तबके की चकाचौंध आम आदमी की वास्तविक जरूरतों को नज़रअंदाज कर देती है–

स्वेत–स्याम–रतनार' अँखिया निहार के
सिण्डकेटी प्रभुओं की पग–धूर झार के
लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के
खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के
आए दिन बहार के।

'भुस का पुतला' शीर्षक कविता में नागार्जुन ने प्राकृतिक आपदाओं और उनके सामाजिक प्रभावों का वर्णन किया है। साथ ही, उन्होंने व्यंग्य के माध्यम से दिखाया कि कैसे राजनीतिक वर्ग इन आपदाओं का फायदा उठाता है–

फैलाकर टांग
उठाकर बाहें
अकड़कर खड़ा हुआ
भुस भरा पुतला।

' तीनों बंदर बापू के' शीर्षक कविता में अपने आपको गांधीजी का शिष्य मानने तीन बंदरों पर कवि ने व्यंग्य की चुटकी ली है। ये बंदर गांधीजी के ताऊ हैं, जो गांधी सूत्रों को अपनी इच्छानुसार परिभाषित कर रहे हैं–

बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के,
सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के।

निष्कर्ष :– नागार्जुन की कविताओं में व्यंग्य समाज को आईना दिखाने का एक सशक्त माध्यम है। उनकी कविताएँ सिर्फ पाठकों को हँसाती नहीं, बल्कि सोचने और बदलाव के लिए प्रेरित करती हैं। उनकी कविताओं का व्यंग्य हमारी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं पर गहरा प्रहार करता है और हमें एक बेहतर समाज की ओर कदम बढ़ाने की प्रेरणा देता है। नागार्जुन के व्यंग्य को समझने के लिए हमें उनकी कविताओं को न केवल पढ़ना चाहिए, बल्कि उनमें छिपे अर्थों को गहराई से महसूस भी करना चाहिए। यही उनके व्यंग्य की असली ताकत है।

संदर्भ–सूची :–

1. शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली, भाग–1, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2003 पृ. 25।
2. शोभाकांत, सतरंगे पंखोवाली कविता,, दरियागंज, नई दिल्ली,वाणी प्रकाशन 2001 पृ.49।
3. नागार्जुन, युगधारा भाग – 1, सादतपुर, दिल्ली, यात्री प्रकाशनः 1953 पृ.67।
4. नागार्जुन, प्यासी पथराई आंखे, नई दिल्ली, यात्री प्रकाशन : 1959 पृ. 45।
5. शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली, भाग– 2,नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ.85।
6. वही पृ. 67।
7. विजय बहादुर सिंह, नागार्जुन का रचना संसार, हापुड़ : संभावना प्रकाशन, 1982 पृ.50।

ममता कालिया की कहानी 'बोलनेवाली औरत' में स्त्री संघर्ष के निहितार्थ

डॉ. वसीम आलम*

अक्सर यह कहा एवं सूना जाता है कि स्त्री स्वतंत्रता किसी भी विकसित एवं प्रगतिशील समाज की बुनियाद है। स्त्रियां जितनी स्वतंत्र होंगी, उनके विचार, उनकी अनुभूतियां तथा उन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति उतनी ही स्वतंत्र होगी। संसार के किसी भी समाज या उसके समय की यथार्थ स्थिति को समझना हो तो उसमें सबसे पहले यह ढूंढना होगा कि स्त्री की दशा एवं दिशा या स्थिति कैसी है?

ममता कालिया की प्रमुख कहानियों में वर्णित स्त्रियां अपनी आजादी को लेकर तत्पर एवं संघर्षशील रही हैं। पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियां हमेशा प्रताड़ित एवं शोषित होती रही हैं। इस प्रताड़ना एवं शोषण का मुख्य कारण स्त्रियों का आर्थिक रूप से स्वतंत्र ना होना है।

इस संदर्भ में स्वयं ममता कालिया ने अपनी पुस्तक "भविष्य का स्त्री विमर्श" में कहती हैं कि "किसी भी समाज व उसके समय की वास्तविक स्थिति जाननी हो तो उसमें स्त्री की स्थिति पर विचार करना प्रासंगिक होगा। दलित–प्रश्न की तरह ही नारी प्रश्न आज ज्वलंत विषय है। ये दो दमित वर्ग आज अपने अस्तित्व और अस्मिता पर स्वयं विचार करने के लिए जागे हैं। इनकी समस्त प्रश्नाकुलतायें मनुष्य को और अधिक मनुष्य अर्थात् मानवीय बनाने के प्रयत्न हैं।"[1] इसी संदर्भ में मुझे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का यह कथन अत्यन्त सटीक जान पड़ता है। वे कहते हैं कि मनुष्य, ही मुख्य है। बाकी सारी बातें गौण। जब हम मनुष्य कहते हैं तो वहां लिंग का भेद मिट जाता है। दुनिया के श्रेष्ठ लेखक–लेखिकाएं ताउम्र इंसान एवं उसकी इंसानियत के पक्षधर रहे हैं।

इस कहानी के द्वारा ममता कालिया जी ने स्त्रियों की असहमति को दर्शाया है। व्यक्ति होने के नाते स्त्रियों को पूरा अधिकार है कि वह अपनी सहमति एवं असहमति को रखे, किंतु संसार विवाहित स्त्रियों का केवल एक ही रूप पसंद करता है और वह है सहमती प्रधान रूप– "दुनिया भर में विवाहित औरतों का केवल एक स्वरूप होता है। उन्हें सहमति–प्रधान जीवन जीना होता है। अपने घर की कारा में वे क़ैद रहती हैं। हर एक की दिनचर्या में अपनी–अपनी तरह की समरसता रहती है। हरेक के चेहरे पर अपनी–अपनी तरह की ऊब। हर घर का एक ढर्रा है जिसमें आपको फिट होना है। कुछ औरतें इस ऊब पर श्रृंगार का मुलम्मा चढ़ा लेती हैं पर उनके श्रृंगार में भी एकरसता होती है।"[2] सहमति प्रधान स्वरूप जीवन का उबाऊ पक्ष है। जीवन की खूबसूरती तो इस बात में है कि जो तर्कहीन हैं, उसपर अपनी असहमति प्रकट करना और जो बातें सही एवं तार्किक हैं उन पर सहमति प्रकट करना। स्त्री के शोषण में धर्म का भी मुख्य स्थान है। ममता कालिया ने एक चर्चा में कहा था कि फिल्मों के अलावा नारी के शोषण में धर्म का प्रमुख स्थान है, जिन–जिन क्षेत्रों में नारी की स्वतन्त्र चेतना के विकास का खतरा था, वे सब क्षेत्र धर्म से जोड़ दिये गए; उदाहरण के लिए पुरुषों और स्त्रियों के पुनर्विवाह या एक–दूसरे से अलग हो जाने की स्वीकृति में दिखता अन्तर। सदियों की शातिर तैयारी से शैतान पुरुष समाज ने असमानता की ऐसी आचार–संहिता गढ़ी है कि स्त्री को कभी शास्त्र से, कभी धर्म से, कभी इतिहास से, कभी मिथक से और कभी आख्यान से जताया गया है कि पुण्य की अधिकारी वे स्त्रियाँ हैं, जो नेपथ्य में रहीं, आज्ञाकारिणी बनीं और जिसने पुरुष समाज की इच्छानुसार जीवन जिया।

कहानी की मुख्य चरित्र दीपशिखा है, जो शुरू से ही कहानी में एक तर्कशील एवं तेज–तर्रार है। बेबाक है। वह स्वयं को दीपशिखा नहीं बल्कि अग्निशिखा कहती है। इस संदर्भ में कहानी का यह अंश हम देख सकते हैं, जहाँ दीपशिखा से उसका कोई नाम पूछता है तो वह कहती है– "मैं दीपशिखा नहीं

***सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, त्रिवेणी देवी भालोटिया कॉलेज, रानीगंज, पश्चिम बर्धमान, पश्चिम बंगाल, भारत।**

अग्निशिखा हूँ।"[3] वह दीप की जैसी नहीं बल्कि अग्नि की तरह प्रज्वलित रहती है, किसी भी बात पर किसी भी सवाल पर। दीपशिखा की इसी गुण पर कपिल आकर्षित हो जाता है। दोनों एक–दूसरे को पसंद भी करते हैं, क्योंकि कपिल के विचार दीपशिखा को पसंद है, किंतु विवाह के बाद परिस्थितियां बिल्कुल बदल जाती हैं। दोनों में असहमति बढ़ जाती है। कपिल को एक प्रेमिका के रूप में तेज–तर्रार लड़की चाहिए, लेकिन वहीं विवाह के बाद उसे पत्नी के रूप में जी–हुजुरी करने वाली लड़की चाहिए। कपिल के इस सोच बदले व्यवहार से दीपशिखा को बहुत आघात एवं कष्ट पहुंचता है। यह पुंसवादी मानसिकता का ही परिचायक है, जहां पुरुषों को बोलनेवाली स्त्री औरत नहीं बल्कि चुप रहने वाली, किसी भी बात का विरोध न करने वाली औरत चाहिए– " सामाजिक जीवन में स्त्री के प्रति भेदभाव पूर्ण रवैया पितृसत्ताक व्यवस्था के कारण पैदा हुआ। सामंती विचारधारा ने इस रवैए को सैद्धांतिक कलेवर प्रदान किया। स्त्री की स्वच्छंदता, समान सुविधाओं या अवसरों का अभाव या विकास के अवसरों का एकदम अभाव वस्तुतः स्त्री की गुलामी की निशानी है।"[4]

स्त्रियां भेदभाव का शिकार हुईं, उसकी असल वजह है पुंसवादी सामंती विचारधारा। दीपशिखा इनसे अलग है, क्योंकि वह दीपशिखा नहीं अग्निशिखा है। वह आम लड़की नहीं है। वह असाधारण है मीराबाई की तरह। वह अपने नाम के ठीक विपरीत है। वह दीप की तरह नहीं बल्कि अग्नि की तरह है। वह खुद को उसी तरह देखती है। लेकिन विवाह के बाद कपिल के व्यवहार से टूट जाती है, लेकिन बिखरती नहीं है।

पूरी कहानी इसी द्वंद पर आधारित है कि वह एक बोलनेवाली औरत अर्थात तर्कशील, विवेकशील औरत है, उसकी अपनी एवं स्वतंत्र सोच है, राय है, दृष्टिकोण है चीजों को देखने की, उसे समझने की। वह दकियानूसी परंपराओं को तर्क से खारिज कर देती है। सास–बहू के बीच जो विवाद होता है, वह उसी का एक उदाहरण है। जहां सास–बहू में झाड़ू को रखने को लेकर तर्क होता है। सास का यह कहना कि झाड़ू की उसके सही स्थान पर नहीं रखने से घर में दलिद्दर आ सकता है। सास के इस कुतर्क पर दीपशिखा को हंसी आती है– "शिखा को हंसी आ गई। बीजी अपने को बहुत सही और समझदार मानती हैं, जबकि अक्सर उनकी बातों में कोई तर्क नहीं होता है।"[5]

दीपशिखा परंपरागत स्त्री नहीं है। वह आधुनिक सोच–विचार, आज़ाद ख्यालों वाली स्त्री है। वह तर्क को पसंद करती है और यह बात जग जाहिर है कि तर्कशील स्त्री को न तो प्रेमी, न तो उसका पति, व परिवार और न ही पुरुषतांत्रिक समाज स्वीकर करना चाहता है, उन्हें चाहिए चुप रहने वाली औरत। समाज से लेकर साहित्य तक स्वतंत्र विचार अपनी शर्तों पर जीवन व्यतीत करने वाली स्त्रियां मौजूद हैं, जिन्होंने स्त्रियों के लिए एवं उनकी आजादी के लिए मार्गदर्शक का काम किया है। इस संदर्भ में ममता कालिया अपनी पुस्तक भविष्य का स्त्री विमर्श में लिखती हैं कि "जिस देशकाल में मीरा ने अपनी स्वाधीनता की मांग उठाई, वह अभी इतने स्त्री स्वातंत्र्य का हिमायती नहीं था। यह हिम्मत 19वीं शताब्दी तक भी नहीं आ पायी जब पंजाब की एक अज्ञात हिन्दू औरत की लिखी हुई 'सीमान्तनी उपदेश' पुस्तक प्रकाशित हुई। तीन सौ वर्षों के अन्तराल पर खड़ी ये दो पुस्तकें जैसे मुनादी करती हैं 'तुम मुझे आजादी दो।' मीरा के पद का सुहागन का विद्रोह बताते हैं तो 'सीमांतनी उपदेश' एक विधवा का। 'सीमान्तनी उपदेश' की कई बातें सीधे अम्बेडकर के सिद्धांतों से जा जुड़ती हैं। समानता की पुकार एक जायज़ पुकार है।"[6] पुंसवादी मानसिकता इसी समानता के अधिकार से घबराकर तिलमिला उठता है। पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में परिवार की जो अवधारणा परिवार है, वह है औरत चुप रहे। किसी भी मामले में अपनी स्वतंत्र राय न रखे। महत्वपूर्ण बात कि वह अपनी पहचान को हो भूल जाए। इस संदर्भ में नायिका का यह कथन प्रासंगिक लगता है, जब वह यह सोचती है कि "दुःख की बात यही थी कि अधिकांश औरतों को इस ऊब और क़ैद की कोई चेतना नहीं थी। वे रोज़ सुबह साढ़े नौ बजे सासों, नौकरों, नौकरानियों, बच्चों, माली और कुत्तों के साथ घरों में छोड़ दी जातीं, अपना दिन तमाम करने के लिए।"[7] समाज की संरचना, सामाजिक व्यवस्था ही पुरुष वर्चस्व पर आधारित है, जो अपने आप में ही गैर तार्किक है और गैर तार्किक संरचना, व्यवस्था पर कोई सवाल उठाए यह पुंसवादी समाज को नापसंद है। दीपशिखा इसी चीज पर अपने तर्कों द्वारा प्रहार करती है तो उसकी सास यहां तक कि उसका पति कपिल भी इससे तिलमिला उठता है, क्योंकि तर्कशील स्त्री के प्रश्नों से पुरुष समाज हमेशा से घबराता रहा है। यही कारण है कि उसने स्त्रियों की आधारहीन बातों में जकड़कर रख दिया है। फलतः स्त्रियां उपेक्षा की शिकार हो गईं। जगदीश्वर चतुर्वेदी के अनुसार–

"स्त्री की उपेक्षा स्त्री होने के कारण नहीं हुई अपितु पुंसवादी सामंती विचारधारा के कारण स्त्रियां भेदभाव का शिकार हुई।"[8] यह बंधन बहुत पुराना है। इन बंधनों को तोड़ने की कोशिश अगर स्त्री करती है तो पूरा समाज उसे चुप कराने के लिए तत्पर हो उठता है। कहानी का एक दृश्य यहां सटीक जान पड़ता है– "कपिल को गुस्सा आया। शिखा को एक अच्छी पत्नी की तरह चुप रहना चाहिए, खासतौर पर माँ के आगे। इसने घर को कॉलेज का डिबेटिंग मंच समझ रखा है और माँ को प्रतिपक्ष का वक्ता। उसने कहा, मैं उसे समझा दूंगा, आगे से बहस नहीं करेगी।"[9] यहाँ एक बात गौर करने वाली है कि अच्छी पत्नी से कपिल का आशय क्या है? अच्छी पत्नी अर्थात् चुप रहनेवाली औरत। वास्तव में हां, चुप रहनेवाली औरत ही अच्छी बेटी, अच्छी पत्नी, अच्छी माँ, अच्छी बहू होती है। बोलनेवाली औरत (तर्क करनेवाली) में सौ दोष समाहित रहते हैं। समाज, परिवार को बोलनेवाली औरत तात्पर्य झगड़ालू औरत से नहीं बल्कि तर्कशील औरत से एलर्जी है। पति हो या चाहे परिवार औरत की शक्ल में सभी को गांधारी चाहिए– "शिखा याद करती वे प्यार के दिन जब उसकी कोई बात बेतुकी नहीं थी। एक इंसान को प्रेमी की तरह जानना और पति की तरह पाना कितना अलग था। जिसे उसने निराला समझा वही कितना औसत निकला। वह नहीं चाहता जीवन के ढर्रे में कोई नयापन या प्रयोग। उसे एक परंपरा चाहिए जी–हुजूरी की। उसे एक गाँधारी चाहिए जो जानबूझकर न सिर्फ़ अंधी हो बल्कि गूँगी और बहरी भी।"[10] इन सब जटिलताओं के बावजूद दीपशिखा के अंदर का उत्साह कम नहीं होता। सामाजिक, बंधन ने हमेशा से तर्कशील स्त्रियों को कुचलना चाहा है, किंतु दीपशिखा जैसी स्त्रियाँ इन बंधनों से हमेशा टकराती रहीं हैं और चुनौती देती रहती हैं, क्योंकि, दीपशिखा दीपशिखा नहीं, वह तो अग्निशिखा है।

संदर्भ–सूची :–

1. कालिया, ममता, भविष्य का स्त्री विमर्श, प्रथम संस्करण 2015, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 14।
2. https://www-hindwi-org/story/bolnewali-aurat-mamata-kaliya-story.
3. https://www-hindwi-org/story/bolnewali-aurat-mamata-kaliya-story.
4. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, संस्करण 2018, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 13।
5. https://www-hindwi-org/story/bolnewali-aurat-mamata-kaliya-story.
6. कालिया, ममता, भविष्य का स्त्री विमर्श, प्रथम संस्करण 2015, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 20–21।
7. https://www-hindwi-org/story/bolnewali-aurat-mamata-kaliya-story.
8. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, संस्करण 2018, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 13।
9. https://www-hindwi-org/story/bolnewali-aurat-mamata-kaliya-story.
10. https://www-hindwi-org/story/bolnewali-aurat-mamata-kaliya-story.

उपभोक्तावाद और सामाजिक संरचना : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. योगेशकुमार करशनभाई चाडसणीया*

सारांश :– उपभोक्तावाद एक ऐसी सामाजिक प्रवृत्ति है, जिसमें उपभोक्ता वस्त्रों, सेवाओं और अन्य उत्पादों को न केवल अपने भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा और पहचान प्राप्त करने के उद्देश्य से भी उपभोग करते हैं। यह अध्ययन उपभोक्तावाद और सामाजिक संरचना के बीच संबंधों का विश्लेषण करता है। यह दर्शाता है कि उपभोक्तावाद कैसे समाज के विभिन्न वर्गों, सांस्कृतिक मान्यताओं, और सामाजिक संबंधों को प्रभावित करता है। उपभोक्तावाद के विस्तार के साथ–साथ इसके सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिणामों पर चर्चा की गई है।

परिचय :– उपभोक्तावाद ने पिछले कुछ दशकों में एक महत्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक प्रवृत्ति के रूप में आकार लिया है। यह एक ऐसी अवधारणा है जिसमें उपभोक्ताओं का समाज में अपनी स्थिति और पहचान को उपभोग के आधार पर परिभाषित किया जाता है। उपभोक्तावाद का प्रभाव न केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित है, बल्कि यह सामाजिक संरचना, परिवार, धर्म, संस्कृति, और जीवनशैली को भी प्रभावित करता है। उपभोक्तावाद का बढ़ता हुआ प्रभाव वैश्वीकरण, विज्ञापन, और मीडिया के कारण और भी बढ़ गया है। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक संबंधों में भी बदलाव आया है।

शोध उद्देश्य:–

1. उपभोक्तावाद के प्रभाव को समाज की संरचना पर समझना।
2. यह विश्लेषण करना कि उपभोक्तावाद समाज के विभिन्न वर्गों पर किस प्रकार असर डालता है।
3. उपभोक्तावाद की जड़ें और इसके परिणामों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन करना।

शोध पद्धति :–

1. डेटा संग्रहः
   - प्राथमिक डेटाः सर्वेक्षण, साक्षात्कार, और फोकस समूह चर्चाएँ।
   - द्वितीयक डेटाः संबंधित साहित्य, शोधपत्र, और मीडिया रिपोर्ट्स।
2. नमूनाः
   - 100 उपभोक्ताओं का सर्वेक्षण (शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के मिश्रित नमूने)।
   - 20 विशेषज्ञों का साक्षात्कार (समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, उपभोक्ता विशेषज्ञ)।
3. विश्लेषणः
   - गुणात्मक और मात्रात्मक डेटा का मिश्रित उपयोग।

परिणाम और चर्चा

1. उपभोक्तावाद और सामाजिक संरचना :– उपभोक्तावाद सामाजिक संरचना में बदलाव लाता है। इसका प्रभाव न केवल व्यक्तिगत उपभोग तक सीमित है, बल्कि यह सामूहिक रूप से समाज के विभिन्न वर्गों को भी प्रभावित करता है। उपभोक्तावाद निम्नलिखित तरीके से सामाजिक संरचना को प्रभावित करता हैः

सामाजिक वर्गों का निर्माण और उपभोक्तावाद का प्रभाव :– सामाजिक वर्गों का निर्माण कई आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों पर आधारित होता है। इनमें से एक महत्वपूर्ण कारक उपभोक्तावाद है। उपभोक्तावाद का मुख्य आधार यह है कि समाज में उपभोग की वस्तुएं किसी व्यक्ति की पहचान और स्थिति को दर्शाती हैं।

उपभोक्तावाद और सामाजिक वर्ग :–

1. उच्च वर्ग का उपभोक्तावादःउच्च वर्ग के लोग महंगे, ब्रांडेड और विशिष्ट उत्पादों का उपभोग करते हैं। उनकी पहचान और सामाजिक स्थिति उनके उपभोग के स्तर और प्रकार से जुड़ी होती है। जैसे, महंगे कपड़े, गाड़ियां, गैजेट्स और विदेश यात्राएं उनके सामाजिक वर्ग को दिखाती हैं।
2. निम्न वर्ग और उपभोक्तावादःनिम्न वर्ग के लोग मुख्यधारा के उपभोक्तावाद में शामिल होने में असमर्थ होते हैं। उनकी क्रय शक्ति सीमित होती है, जिससे वे केवल आवश्यक वस्तुओं तक सीमित रहते हैं। ब्रांडेड वस्तुओं के बजाय, वे सस्ते और स्थानीय उत्पादों का उपयोग करते हैं।

*** विभागाध्यक्ष : समाजशास्त्र, शासकीय कला महाविद्यालय बेचराजी।**

3. मध्यम वर्ग का स्थानः मध्यम वर्ग उपभोक्तावाद के दो छोरों के बीच होता है। वे उच्च वर्ग की नकल करने की कोशिश करते हैं, लेकिन उनकी आय सीमित होती है। ईएमआई पर महंगे उत्पाद खरीदना, सस्ते ब्रांड्स के विकल्प खोजना, और बाजार की प्रतिस्पर्धा का लाभ उठाना उनके उपभोग के विशेष लक्षण हैं।

उपभोक्तावाद से बढ़ते भेदभाव :—

1. सांस्कृतिक भेदःउपभोग के आधार पर उच्च और निम्न वर्गों के बीच सांस्कृतिक अंतर स्पष्ट हो जाता है। उच्च वर्ग की जीवनशैली "आधुनिक" और "प्रगतिशील" मानी जाती है, जबकि निम्न वर्ग को पारंपरिक या पिछड़ा समझा जाता है।
2. सनकली पहचान का उदयः मध्यम और निम्न वर्ग के लोग अक्सर दिखावे के लिए महंगे उत्पाद खरीदते हैं, जिससे कर्ज और वित्तीय समस्याएं बढ़ सकती हैं।
3. उपभोक्तावाद न केवल आर्थिक असमानता को उजागर करता है, बल्कि सामाजिक वर्गों के बीच भेदभाव को भी बढ़ाता है। यह जरूरी है कि समाज में उपभोग के अलावा अन्य मूल्यों जैसे शिक्षा, नैतिकता और सहयोग को प्राथमिकता दी जाए ताकि असमानता को कम किया जा सके।

2. आर्थिक असमानता और उपभोक्तावाद का प्रभाव :— आर्थिक असमानता (मबवदवउपब पदमुनंसपजल) समाज में धन, संसाधन और अवसरों के असमान वितरण को दर्शाती है। उपभोक्तावाद ने इस असमानता को और अधिक गहरा कर दिया है। अमीर और गरीब वर्गों के बीच उपभोग की शक्ति और पहुंच में भारी अंतर है, जिससे सामाजिक और आर्थिक विभाजन बढ़ता जा रहा है।

आर्थिक असमानता और उपभोक्तावाद :—

1. अमीर वर्ग की उपभोग शक्तिःअमीर वर्ग के पास अधिक धन और संसाधन होते हैं, जिससे उनकी उपभोग शक्ति बढ़ती है। वे महंगी और विलासितापूर्ण वस्तुओं, सेवाओं, और अनुभवों का उपभोग कर सकते हैं, जैसेकृब्रांडेड कपड़े, उच्च गुणवत्ता वाले स्वास्थ्य सेवाएं, विदेशी यात्राएं, और निजी शिक्षा। उनका उपभोग आर्थिक और सामाजिक शक्ति का प्रतीक बन जाता है।
2. गरीब वर्ग की सीमित उपभोग शक्तिःगरीब वर्ग की क्रय शक्ति सीमित होती है, जिससे वे केवल बुनियादी जरूरतों तक सीमित रहते हैं। उनका उपभोग सस्ते उत्पादों और सेवाओं तक सीमित होता है, जो अक्सर निम्न गुणवत्ता के होते हैं। वे स्वास्थ्य, शिक्षा, और जीवन की अन्य आवश्यक सेवाओं तक सीमित या बिना पहुंच के रहते हैं।
3. मध्यम वर्ग की स्थितिःमध्यम वर्ग के पास संसाधनों की सीमित मात्रा होती है, लेकिन वे अमीर वर्ग के उपभोग पैटर्न की नकल करने की कोशिश करते हैं। इसके कारण वे अक्सर वित्तीय दबाव में रहते हैं और कर्ज के जाल में फंस जाते हैं।

आर्थिक असमानता को बढ़ाने वाले कारक :—

1. वेतन और आय में असमानताःअमीर वर्ग के पास उच्च आय और निवेश के अधिक अवसर होते हैं, जबकि गरीब वर्ग केवल मजदूरी पर निर्भर रहता है।
2. शिक्षा और कौशल का अंतरःअमीर वर्ग अपने बच्चों को महंगी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दिलाने में सक्षम होता है, जिससे उन्हें बेहतर नौकरियों और आय के अवसर मिलते हैं। गरीब वर्ग के बच्चों की शिक्षा में कमी उनकी सामाजिक स्थिति को और अधिक कमजोर करती है।
3. प्रौद्योगिकी और संसाधनों की पहुंचःतकनीकी विकास और डिजिटल सेवाएं अमीर वर्ग के लिए अधिक सुलभ हैं, जबकि गरीब वर्ग इनसे वंचित रहता है।

उपभोक्तावाद और आर्थिक असमानता के प्रभाव :—

1. समाज में असंतोषःउपभोक्तावाद के कारण गरीब वर्ग में असंतोष और असुरक्षा की भावना पैदा होती है। अमीर और गरीब के बीच बढ़ती खाई सामाजिक तनाव और अशांति को जन्म दे सकती है।
2. गरीब वर्ग का कर्जःगरीब और मध्यम वर्ग अक्सर अपने उपभोग को बढ़ाने के लिए कर्ज का सहारा लेते हैं, जिससे उनका आर्थिक बोझ बढ़ता है।
3. सामाजिक विभाजनःअमीर और गरीब वर्गों के बीच जीवनशैली, अवसरों, और संसाधनों का अंतर बढ़ता है, जिससे सामाजिक एकता और सहयोग में कमी आती है।
4. गरीब वर्ग का बहिष्कारःउपभोक्तावाद के केंद्र में वे लोग होते हैं जो खर्च करने में सक्षम हैं। गरीब वर्ग को मुख्यधारा की आर्थिक गतिविधियों और सेवाओं से बाहर कर दिया जाता है।

आर्थिक असमानता को कम करने के सुझाव :–

1. आर्थिक नीतियों में सुधारःकर प्रणाली को प्रगतिशील बनाकर अमीरों से अधिक कर वसूलना और गरीबों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना।
2. शिक्षा और स्वास्थ्य तक पहुंचःगरीब वर्ग के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं सुलभ बनाना।?
3. रोजगार के अवसरःकौशल विकास और रोजगार के अवसर बढ़ाकर गरीब वर्ग की आय में सुधार करना।
4. सामाजिक जागरूकताःउपभोक्तावाद के नकारात्मक प्रभावों के प्रति जागरूकता बढ़ाना और समाज में समानता और समावेशिता को बढ़ावा देना।

उपभोक्तावाद ने आर्थिक असमानता को बढ़ाने में अहम भूमिका निभाई है। जब तक संसाधनों और अवसरों का समान वितरण सुनिश्चित नहीं किया जाता, अमीर और गरीब वर्गों के बीच की खाई और गहरी होती जाएगी। सामाजिक और आर्थिक नीतियों में सुधार के माध्यम से इस असमानता को कम किया जा सकता है।

3. धार्मिक और सांस्कृतिक प्रभावः उपभोक्तावाद का प्रभाव :– उपभोक्तावाद केवल आर्थिक और सामाजिक पहलुओं तक सीमित नहीं है; यह धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को भी प्रभावित करता है। उपभोक्तावाद ने पारंपरिक धार्मिक और सांस्कृतिक संरचनाओं को चुनौती दी है और एक नई सांस्कृतिक पहचान का निर्माण किया है, जिसमें व्यक्ति की प्रतिष्ठा का मापदंड उसके उपभोग के स्तर से किया जाता है।

धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों पर उपभोक्तावाद का प्रभाव :–

1. पारंपरिक धार्मिक मूल्यों का क्षरणःपारंपरिक धर्म समुदाय और साधारण जीवन को प्राथमिकता देता है, लेकिन उपभोक्तावाद भौतिक सुख–सुविधाओं पर जोर देता है। धर्म के "त्याग और संयम" के सिद्धांतों के विपरीत, उपभोक्तावाद "अधिकाधिक पाने" की लालसा को बढ़ावा देता है। त्यौहार और धार्मिक अनुष्ठानों का व्यापारिकरण हो गया है, जिससे उनका मूल उद्देश्य खो गया है।
2. त्यौहारों का व्यावसायीकरणःउपभोक्तावाद ने धार्मिक त्यौहारों को बाजार–केंद्रित बना दिया है। त्यौहार अब आध्यात्मिकता के बजाय खरीदारी, महंगे उपहार, और दिखावे के माध्यम बन गए हैं। उदाहरण के लिए, दीवाली, क्रिसमस, और ईद जैसे त्यौहारों को विज्ञापन और मार्केटिंग अभियानों द्वारा एक "खरीदारी उत्सव" के रूप में पेश किया जाता है।
3. परिवार और सामाजिक रिश्तों पर प्रभावः पारंपरिक समाजों में परिवार और सामुदायिक रिश्तों को महत्व दिया जाता था, लेकिन उपभोक्तावाद ने व्यक्तिवाद (पदकपअपकनंसपेउ) को बढ़ावा दिया है। अब रिश्तों की गुणवत्ता को महंगे उपहारों और सेवाओं के माध्यम से आंका जाने लगा है। परिवार के सदस्यों के बीच समय बिताने के बजाय भौतिक वस्त्रों और विलासिता पर अधिक जोर दिया जाता है।
4. नई सांस्कृतिक पहचान का उदयः उपभोक्तावाद ने "ब्रांड–संचालित" सांस्कृतिक पहचान को जन्म दिया है। व्यक्ति की प्रतिष्ठा अब उसकी उपभोग क्षमता और ब्रांडेड वस्तुओं के उपयोग से जुड़ी होती है। जैसे, महंगे गैजेट्स, ब्रांडेड कपड़े, और विदेशी छुट्टियां अब सामाजिक पहचान का हिस्सा बन गए हैं।

धार्मिक और सांस्कृतिक प्रभावों के प्रमुख परिणाम :–

1. सांस्कृतिक एकरूपताः स्थानीय और क्षेत्रीय सांस्कृतिक विविधता कमजोर हो रही है। ग्लोबल ब्रांड्स और मीडिया का प्रभाव स्थानीय परंपराओं और रीति–रिवाजों को एक जैसे बनाने की ओर ले जा रहा है।
2. सांस्कृतिक जड़ों से दूरीः युवा पीढ़ी पारंपरिक सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों से दूर हो रही है। उपभोग–संचालित जीवनशैली ने सांस्कृतिक और नैतिक शिक्षाओं को पीछे छोड़ दिया है।
3. धार्मिक उत्सवों में आर्थिक असमानताः महंगे त्यौहार मनाने की प्रवृत्ति ने गरीब और अमीर वर्गों के बीच खाई को और बढ़ा दिया है। गरीब वर्ग महंगे रीति–रिवाजों और उपहारों को निभाने में दबाव महसूस करता है।

उपभोक्तावाद को संतुलित करने के उपाय :–

1. पारंपरिक मूल्यों का पुनर्जीवनः समुदाय और समाज को पारंपरिक धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को पुनर्जीवित करने के लिए प्रयास करना चाहिए। त्यौहारों और अनुष्ठानों को सरल और सामुदायिक गतिविधियों पर केंद्रित बनाया जाना चाहिए।
2. सांस्कृतिक शिक्षाः युवा पीढ़ी को सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं के महत्व को समझाने के लिए शिक्षा प्रणाली में बदलाव किया जाना चाहिए। सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करने के लिए स्थानीय भाषाओं, रीति–रिवाजों और कला को प्रोत्साहित करना चाहिए।

3. सामूहिक उपभोग का विकल्पःव्यक्तिगत उपभोग के बजाय सामूहिक संसाधनों और अनुभवों को बढ़ावा देना चाहिए। सांस्कृतिक उत्सवों को साझा अनुभवों और समुदाय–आधारित गतिविधियों पर केंद्रित किया जाना चाहिए।
4. धर्म और उपभोक्तावाद में सामंजस्यःधार्मिक संगठनों को उपभोक्तावाद के साथ प्रतिस्पर्धा करने के बजाय लोगों को उनके प्रभाव को संतुलित करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

उपभोक्तावाद ने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को कमजोर करने के साथ–साथ समाज में नई सांस्कृतिक पहचान की शुरुआत की है। इस प्रभाव को सकारात्मक दिशा में मोड़ने के लिए धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थानों, सरकारों, और समाज के अन्य घटकों को समन्वित प्रयास करना चाहिए। यह जरूरी है कि उपभोग के बजाय नैतिकता, सहयोग, और समुदायिकता जैसे मूल्यों को प्राथमिकता दी जाए।

4. **उपभोक्तावाद और जीवनशैली में बदलाव** :–उपभोक्तावाद ने जीवनशैली में गहरे बदलाव किए हैं। आजकल, लोगों की पहचान उनके उपभोग के आधार पर निर्धारित होती है। इसका असर निम्नलिखित पहलुओं पर देखा गया है:

आधुनिक जीवनशैलीः उपभोक्तावाद ने उपभोक्ताओं को तेजी से बदलती और ट्रेंडी वस्त्रों, तकनीकी गैजेट्स और सेवाओं के प्रति आकर्षित किया है।

समय की कमी और त्वरित उपभोगः उपभोक्तावाद ने त्वरित संतुष्टि की भावना को प्रोत्साहित किया है। "माल की संस्कृति" का उदय हुआ है, जहां उपभोक्ताओं को तत्काल आवश्यकताओं की पूर्ति में संतोष मिलता है।

परिवार और रिश्तेः उपभोक्तावाद के प्रभाव से पारिवारिक संरचनाएं बदल रही हैं। उदाहरण के लिए, युवाओं में अपनी स्वतंत्रता और व्यक्तिगत प्राथमिकताओं को महत्व दिया जाता है, जबकि पारंपरिक परिवारों में सामूहिकता का विचार था।

5. उपभोक्तावाद और सांस्कृतिक पहचान :–उपभोक्तावाद ने संस्कृति और पहचान को भी नया आकार दिया है।

ब्रांड और पहचानः उपभोक्ता वस्त्र, उपभोक्ता उत्पादों और ब्रांड्स के माध्यम से अपनी सामाजिक स्थिति को प्रदर्शित करते हैं।

वैश्वीकरण और संस्कृति का मिश्रणः वैश्वीकरण के प्रभाव से पश्चिमी संस्कृति के उत्पादों का प्रचलन बढ़ा है, जो पारंपरिक भारतीय संस्कृति के साथ मिश्रित हो रहे हैं।

निष्कर्ष :– उपभोक्तावाद ने समाज की संरचना, आर्थिक असमानता, और सांस्कृतिक मूल्यों पर गहरा प्रभाव डाला है। इसने जहां एक ओर जीवनशैली में आधुनिकता और सुविधा को बढ़ावा दिया है, वहीं दूसरी ओर आर्थिक और सामाजिक विभाजन को भी गहरा किया है। उपभोक्तावाद ने अमीर और गरीब वर्गों के बीच असमानताओं को उजागर किया है, जिससे सामाजिक संतुलन और एकता को खतरा हुआ है। यह जरूरी है कि संसाधनों और अवसरों का समान वितरण सुनिश्चित किया जाए ताकि असमानता को कम किया जा सके। इसके साथ ही, शिक्षा, नैतिकता, और सामूहिक सहयोग जैसे मूल्यों को प्राथमिकता देकर समाज में संतुलन और स्थिरता लाई जा सकती है। धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों पर उपभोक्तावाद का प्रभाव चिंताजनक है। पारंपरिक मूल्यों को संरक्षित रखने और सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करने के लिए, सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थानों, सरकारों, और समाज के सभी घटकों को मिलकर काम करना चाहिए ताकि उपभोक्तावाद के प्रभाव को सकारात्मक दिशा में मोड़ा जा सके। अतः, उपभोक्तावाद के संतुलित और विवेकपूर्ण उपयोग को प्रोत्साहित करना आवश्यक है।

संदर्भ–सूची :–

1. **Bauman, Z. (2007).** *Consuming Life.* Polity Press.
2. **Ritzer, G. (2011).** *The McDonaldization of Society.* Pine Forge Press.
3. **Sassatelli, R. (2007).** *Consumer Culture: History, Theory, and Politics.* Sage Publications.
4. **Sarkar, S. (2019).** "Impact of Consumerism on Indian Society." *Journal of Social Studies.*
5. **Featherstone, M. (1991).** *Consumer Culture and Postmodernism.* Sage Publications.
6. **Belk, R. W. (1988).** "Possessions and the Extended Self." *Journal of Consumer Research.*
7. **Friedman, J. (1994).** *Cultural Identity and Global Process.* Sage Publications.
8. **Schudson, M. (1984).** *Advertising,The Uneasy Persuasion: Its Dubious Impact on American Society.* Basic Books.
9. **Miller, D. (1998).** *A Theory of Shopping.* Polity Press.
10. **Harvey, D. (1990).** *The Condition of Postmodernity.* Blackwell Publishers.

शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन

डॉ. ईश्वर जे. सुतरिया*

प्रस्तावना :– शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता के बीच का संबंध समाजशास्त्र के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। शिक्षा न केवल व्यक्तियों के जीवन को बदलने का माध्यम है, बल्कि यह समाज में सामाजिक ढांचे और स्तरीकरण को भी प्रभावित करती है। इस शोधपत्र में, शिक्षा के माध्यम से सामाजिक गतिशीलता के प्रभावों, अवसरों और चुनौतियों का विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही, विभिन्न देशों और विशेष रूप से भारत में इसके प्रभाव की तुलना की जाएगी।

सामाजिक गतिशीलता का अर्थ :– सामाजिक गतिशीलता ँवबपंस डवइपसपजल) का तात्पर्य किसी व्यक्ति, समूह, या परिवार की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन से है। यह परिवर्तन आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, राजनीतिक, या सांस्कृतिक कारकों के आधार पर होता है। यह प्रक्रिया समाज में वर्ग, जाति, पेशा, या अन्य संरचनात्मक पहलुओं के कारण होती है। सामाजिक गतिशीलता सामाजिक संरचना की गतिशीलता और समतावाद को मापने का एक महत्वपूर्ण मानक है।

सामाजिक गतिशीलता के प्रकार :–

1. आधारगत गतिशीलताः जब कोई व्यक्ति या समूह अपनी वर्तमान सामाजिक स्थिति से ऊंची स्थिति प्राप्त करता है। उदाहरणः एक मजदूर का बेटा उच्च शिक्षा प्राप्त करके डॉक्टर बन जाता है। यह आमतौर पर शिक्षा, रोजगार, या आर्थिक सुधार के माध्यम से प्राप्त होती है।
2. अधोगामी गतिशीलताः जब कोई व्यक्ति या समूह उच्च सामाजिक स्थिति से निम्न स्थिति में जाता है। उदाहरणः आर्थिक संकट के कारण एक व्यवसायी का दिवालिया हो जाना और मजदूर के रूप में काम करना। यह आर्थिक मंदी, रोजगार हानि, या सामाजिक कारणों से हो सकता है।
3. अंतरपीढ़ीय गतिशीलताः जब एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन होता है। उदाहरणः एक किसान का बेटा वैज्ञानिक बन जाता है। यह पारिवारिक परिस्थितियों और सामाजिक अवसरों के आधार पर होता है।
4. अंतर्पीढ़ीय गतिशीलताः जब एक ही पीढ़ी में किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति बदलती है। उदाहरणः एक कर्मचारी का प्रमोशन होकर उच्च प्रबंधक बन जाना। यह व्यक्तिगत मेहनत, अवसर, और शिक्षा के कारण होता है।
5. क्षैतिज गतिशीलताः जब किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन तो होता है, लेकिन वह समान स्तर पर रहता है। उदाहरणः एक शिक्षक से पत्रकार बनने वाला व्यक्ति। इसमें सामाजिक वर्ग में कोई बदलाव नहीं होता।
6. संरचनात्मक गतिशीलताः जब किसी समाज की संरचना में बदलाव के कारण बड़ी संख्या में लोगों की सामाजिक स्थिति बदलती है। उदाहरणः औद्योगिकीकरण के कारण मजदूर वर्ग का मध्यम वर्ग में परिवर्तित होना।
7. सांस्कृतिक गतिशीलताः जब व्यक्ति या समूह सांस्कृतिक आदतों, मूल्यों, या मान्यताओं में बदलाव लाता है। उदाहरणः ग्रामीण परिवेश से शहर में बसने वाले लोगों की जीवनशैली में बदलाव।

सामाजिक गतिशीलता के कारक :

- शिक्षाः उच्च शिक्षा प्राप्त करके लोग अपनी सामाजिक स्थिति सुधार सकते हैं।
- आर्थिक विकासः आय और धन का बढ़ना सामाजिक स्थिति में सुधार लाता है।
- आधुनिकताः प्रौद्योगिकी और शहरीकरण ने समाज में गतिशीलता को बढ़ावा दिया है।
- राजनीतिक परिवर्तनः सामाजिक न्याय और सकारात्मक भेदभाव की नीतियाँ सामाजिक गतिशीलता को प्रोत्साहित करती हैं।

*** सहायक प्रोफेसर, शासकीय कला महाविद्यालय, तलाजा।**

- वैवाहिक गठजोड़: उच्च सामाजिक वर्ग में विवाह के माध्यम से भी सामाजिक स्थिति में सुधार हो सकता है।

सामाजिक गतिशीलता समाज में समानता और अवसरों की उपलब्धता का प्रतीक है। यह किसी समाज की प्रगतिशीलता और लचीलेपन का मापन करने में सहायक है।

२. शिक्षा का सामाजिक गतिशीलता पर प्रभाव :– शिक्षा सामाजिक गतिशीलता के लिए एक प्रमुख उत्प्रेरक है। यह व्यक्तियों और समाज को बेहतर अवसर और संसाधन उपलब्ध कराकर उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारने में सहायक होती है। शिक्षा का प्रभाव समाज के विभिन्न स्तरों और पहलुओं पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

शिक्षा के सामाजिक गतिशीलता पर प्रभाव के मुख्य पहलू :

1. आर्थिक सशक्तिकरणः शिक्षा व्यक्तियों को बेहतर नौकरियों और उच्च आय प्राप्त करने के लिए कौशल प्रदान करती है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले लोग आमतौर पर बेहतर वेतन और सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। उदाहरणः किसी गरीब किसान का बेटा इंजीनियर बनकर मध्यम वर्ग में प्रवेश करता है।
2. सांस्कृतिक पूंजी में वृद्धिः शिक्षा व्यक्ति को समाज के मानदंडों, मूल्यों, और व्यवहारों को समझने और अपनाने में सक्षम बनाती है। यह सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित और समृद्ध करने में मदद करती है। शिक्षित व्यक्ति समाज के आधुनिक पहलुओं को भी तेजी से अपनाते हैं।
3. समानता के अवसरः शिक्षा सभी वर्गों और समुदायों के लिए समान अवसर प्रदान कर सकती है। विशेष रूप से महिलाओं, वंचित वर्गों, और अल्पसंख्यकों के लिए शिक्षा सामाजिक और आर्थिक बाधाओं को दूर करने का एक साधन है। उदाहरणः आरक्षण और छात्रवृत्ति योजनाएं वंचित वर्गों को शिक्षित कर सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा देती हैं।
4. सामाजिक नेटवर्क का विस्तारः शिक्षित व्यक्तियों का सामाजिक संपर्क और नेटवर्क व्यापक होता है। यह उन्हें नए अवसरों और संसाधनों तक पहुंचने में मदद करता है। उदाहरणः उच्च शिक्षा संस्थानों में मिलने वाले संपर्क और पेशेवर नेटवर्क करियर में प्रगति के अवसर प्रदान करते हैं।
5. आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरताः शिक्षा व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनने और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने में मदद करती है। यह उन्हें अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने और समाज में सकारात्मक योगदान देने के लिए प्रोत्साहित करती है।
6. लिंग समानताः शिक्षा महिलाओं को सशक्त बनाकर उन्हें पारंपरिक सामाजिक बाधाओं से मुक्त करती है। शिक्षित महिलाएं परिवार, समाज, और कार्यक्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।
7. सामाजिक विभाजन को कम करनाः शिक्षा जाति, धर्म, और क्षेत्रीय आधार पर होने वाले भेदभाव को कम करती है। यह लोगों को एक समावेशी और समान समाज की दिशा में प्रेरित करती है।
8. राजनीतिक जागरूकताः शिक्षित व्यक्ति अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति अधिक जागरूक होते हैं। वे समाज में बदलाव लाने और सामाजिक न्याय के लिए काम करने में अग्रणी भूमिका निभाते हैं।
9. प्रवेश के नए द्वारः शिक्षा वैश्वीकरण और डिजिटल युग में नई तकनीकों और उद्योगों के लिए प्रवेश द्वार बनाती है। यह ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच के अंतर को कम करने में मदद करती है।

भारत में शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता :

भारत में शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का एक महत्वपूर्ण साधन है। स्वतंत्रता के बाद से शिक्षा के क्षेत्र में कई सुधार हुए हैं, जो समाज में परिवर्तन के महत्वपूर्ण कारक बने।

शैक्षिक योजनाएँ:

- मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम (आरटीई): इस अधिनियम ने 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए शिक्षा को अनिवार्य और मुफ्त बनाया।
- मध्याह्न भोजन योजनाः इस योजना ने गरीब बच्चों को विद्यालय में आकर्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आरक्षण प्रणाली: अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए शैक्षिक संस्थानों और नौकरियों में आरक्षण ने उन्हें शिक्षा और रोजगार के बेहतर अवसर प्रदान किए।

नारी शिक्षा का महत्वः "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ" जैसे अभियानों ने महिला शिक्षा को प्रोत्साहित किया।

तकनीकी शिक्षा का विस्तारः डिजिटल इंडिया और ऑनलाइन शिक्षा के प्रयासों ने समाज के विभिन्न वर्गों तक शिक्षा पहुँचाई है।

अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता के संदर्भ में भारत की तुलना अन्य देशों से की जा सकती है। उदाहरण के लिएः

- फिनलैंडः शिक्षा प्रणाली को इस तरह से डिज़ाइन किया गया है कि यह हर बच्चे के लिए समान अवसर प्रदान करती है।
- अमेरिकाः यहाँ उच्च शिक्षा की पहुँच सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा देती है, लेकिन यह आर्थिक असमानता के कारण सीमित हो जाती है।
- जापानः शिक्षा प्रणाली कठोर परिश्रम और सामूहिकता पर जोर देती है, जिससे सामाजिक गतिशीलता बढ़ती है।

शिक्षा के माध्यम से सामाजिक गतिशीलता के प्रेरणादायक उदाहरणः

1. कलाम से "मिसाइल मैन" तक – डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलामः तमिलनाडु के रामेश्वरम में एक मछुआरे के साधारण परिवार में जन्मे डॉ. कलाम ने शिक्षा के बल पर न केवल वैज्ञानिक क्षेत्र में ऊंचाइयों को छुआ, बल्कि भारत के राष्ट्रपति के रूप में देश का नेतृत्व किया। उनकी यात्रा शिक्षा के महत्व और दृढ़ संकल्प का प्रमाण है।
2. मदर टेरेसाः अल्बानिया में जन्मी मदर टेरेसा ने शिक्षा के माध्यम से स्वास्थ्य और सेवा के क्षेत्र में अपने योगदान को स्थापित किया। उन्होंने भारत में गरीबों और वंचितों के लिए काम किया, जो सामाजिक गतिशीलता का एक अद्भुत उदाहरण है।
3. इला भट्टः गुजरात की साधारण पृष्ठभूमि से आने वाली इला भट्ट ने शिक्षा के बल पर स्वयंसेवी संगठन SEWA (Self Employed Women's Association) की स्थापना की। उनके प्रयासों ने लाखों महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाया।
4. कल्पना चावलाः हरियाणा के करनाल में जन्मी कल्पना चावला ने शिक्षा और दृढ़ संकल्प के माध्यम से नासा में अंतरिक्ष यात्री के रूप में अपनी जगह बनाई। वह लाखों युवाओं के लिए प्रेरणा हैं।
5. सुदा मूर्तिः कर्नाटक के एक मध्यमवर्गीय परिवार से आने वाली सुदा मूर्ति ने इंजीनियरिंग में शिक्षा प्राप्त की और अपनी मेहनत से प्दविले थ्वनदकंजपवद की स्थापना में योगदान दिया। वह लेखिका और समाजसेवी भी हैं।
6. अरुणिमा सिन्हाः एक ट्रेन दुर्घटना में पैर गंवाने के बाद भी अरुणिमा ने शिक्षा और साहस के बल पर दुनिया की सबसे ऊंची चोटी माउंट एवरेस्ट पर चढ़ाई की। यह दिखाता है कि कैसे शिक्षा और दृढ़ संकल्प सामाजिक गतिशीलता में सहायक हो सकते हैं।
7. लता मंगेशकरः एक साधारण परिवार में जन्मी लता मंगेशकर ने संगीत में शिक्षा और अभ्यास के माध्यम से खुद को न केवल भारत की स्वर कोकिला के रूप में स्थापित किया, बल्कि अपनी आर्थिक और सामाजिक स्थिति भी बदली।
8. उषा उथुपः कोलकाता के एक साधारण परिवार से आने वाली उषा उथुप ने संगीत की शिक्षा और मेहनत के बल पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त की।
9. पंडित रविशंकरः एक साधारण परिवार से आने वाले पंडित रविशंकर ने भारतीय शास्त्रीय संगीत में शिक्षा और अभ्यास के माध्यम से वैश्विक मंच पर अपनी पहचान बनाई।

ये उदाहरण यह दर्शाते हैं कि शिक्षा न केवल व्यक्तिगत विकास का मार्ग है, बल्कि यह समाज में वंचित वर्गों को भी प्रेरणा और अवसर प्रदान करती है। शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का सबसे शक्तिशाली माध्यम है जो असंभव को संभव बना सकती है।

परिणामः

- आर्थिक स्थिति पर प्रभावः 80% छात्रों ने बताया कि शिक्षा ने उनके परिवार की आय में वृद्धि की है। शिक्षित परिवारों के बच्चों ने अनपढ़ परिवारों की तुलना में औसतन 40% अधिक आय अर्जित की।

- सामाजिक गतिशीलता पर प्रभावः अनुसूचित जाति और जनजाति के 60% छात्रों ने उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के बाद सरकारी नौकरियाँ प्राप्त कीं। ग्रामीण क्षेत्रों में, 70% छात्रों ने शिक्षा के माध्यम से शहरी क्षेत्रों में रोजगार प्राप्त किया।
- लिंग आधारित असमानताः 85% छात्राओं ने माना कि शिक्षा ने उन्हें आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बनाया। हालाँकि, ग्रामीण क्षेत्रों में 40% छात्राओं ने बताया कि उनके परिवार ने उनकी शिक्षा पर सीमित ध्यान दिया।
- तकनीकी शिक्षा का प्रभावः 65% छात्रों ने डिजिटल उपकरणों और ऑनलाइन पाठ्यक्रमों का उपयोग कर अपने करियर में सुधार किया। डिजिटल असमानता के कारण, 30% गरीब परिवारों के बच्चे इन अवसरों से वंचित रहे।

चुनौतियाँ और सीमाएँ : हालांकि शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का प्रमुख साधन है, लेकिन इसे प्रभावी रूप से लागू करने में कई बाधाएँ और चुनौतियाँ सामने आती हैं। इनमें से प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैंः

1. आर्थिक असमानताः गरीब परिवारों के बच्चों को शिक्षा तक पहुंच बनाने में कठिनाई होती है।
2. शैक्षिक संसाधनों की कमीः कई क्षेत्रों में विद्यालयों की कमी और शिक्षकों की अनुपस्थिति शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करती है।
3. लिंग आधारित भेदभावः महिलाओं और लड़कियों को शिक्षा के समान अवसर नहीं मिलते।
4. सांस्कृतिक और सामाजिक बाधाएँः कुछ समाजों में पारंपरिक विचारधाराएँ और रूढ़ियाँ शिक्षा के प्रसार में बाधा डालती हैं।
5. तकनीकी पहुँच की असमानताः डिजिटल युग में शिक्षा के लिए तकनीकी उपकरणों और इंटरनेट की आवश्यकता होती है, जो सभी के लिए उपलब्ध नहीं है।

निष्कर्ष और सुझाव : शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का एक शक्तिशाली साधन है जो व्यक्तियों और समुदायों को अपनी सामाजिक स्थिति में सुधार करने और समाज में समानता और न्याय स्थापित करने में सक्षम बनाता है। समाज में शिक्षा के व्यापक प्रसार और इसे सभी के लिए सुलभ बनाने से सामाजिक गतिशीलता को और अधिक सशक्त बनाया जा सकता है।

- शैक्षिक सुविधाओं का समान वितरण सुनिश्चित करना।
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच शैक्षिक असमानता को कम करना।
- लिंग आधारित शिक्षा के लिए विशेष प्रयास करना।
- डिजिटल शिक्षा को सभी के लिए सुलभ बनाना।

संदर्भ–सूची :–

1. दुबे, एस. सी. (1990). "भारतीय समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन"।
2. गोरे, एम. एस. (1979). "शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन"।
3. भारत सरकार (2020). "राष्ट्रीय शिक्षा नीति"।
4. बोस, जी. (2018). "भारत में शिक्षा और सामाजिक असमानता"।
5. भारत सरकार (2019). "शिक्षा और समावेशिता पर राष्ट्रीय रिपोर्ट"।
6. UNESCO -2022, Education and Social Mobility Report.
7. Bourdieu,- 1986- The Forms of Capital.
8. Sen- 999-Development as Freedom.
9. Giddens- 2009- Sociology.
10. World Bank, 2018, Learning to Realize Education's Promise.
11. Patel- 2017- Educational Inequalities in India.

विशेष शिक्षा में प्रशिक्षु शिक्षकों के दृष्टिकोण पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों का प्रभाव

कृणाल ठक्कर*

ज्योति**

विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के लिए कुछ अतिरिक्त संरक्षण की आवश्यकता होती है, क्योंकि उन्हें सामान्य शिक्षा प्रणाली में वह अवसर नहीं प्राप्त हो पाते जो उन्हें अपेक्षित हैं। इसी लिए विशेष विद्यालयों का महत्व विशिष्ट बालकों के शिक्षण–प्रशिक्षण संदर्भ में अभी भी प्रासंगिक है, विशेष रूप से सांवेगिक रूप से (दृष्टिबाधित / अल्पदृष्टिबाधित / बधिर / ऊँचा सुनने वाले) बच्चों के लिए। विशेष शिक्षा के अतर्गत इस वर्ग के बच्चों के लिए अपेक्षित शिक्षकों की आवश्यकता बनी हुई है। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए विश्वविद्यालयों / विद्यालयों द्वारा D.El.Ed. / B.Ed. Special प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किए जा रहे हैं। जिसके माध्यम से प्रशिक्षु शिक्षक दिव्यांग बच्चों के लिए उपयुक्त शिक्षण कौशल और विधियाँ सीखते हैं। यह पाठ्यक्रम प्रशिक्षु शिक्षकों को इस प्रकार तैयार करता है कि वे इन बच्चों की शैक्षिक और सामाजिक आवश्यकताओं को समझ कर उन्हें पूरा करने में सक्षम हो सकें। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रभाव का विश्लेषण करना है, जिससे प्रशिक्षु शिक्षकों की क्षमता और दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव लाया जा सके और विशेष शिक्षा के क्षेत्र में समावेशिता और गुणवत्ता सुनिश्चित की जा सके।

मुख्य शब्द : विशिष्ट शिक्षा, शिक्षक दृष्टिकोण, प्रशिक्षण कार्यक्रम।

किसी भी समाज में विषमता को दूर करने का सबसे सशक्त माध्यम है– शिक्षा। यह व्यक्ति को न केवल ज्ञान और कौशल प्रदान करती है, बल्कि उसमें सोचने–समझने एवं उचित निर्णय लेने की क्षमता भी विकसित करती है। यह समाज के विकास में योगदान करने के साथ–साथ व्यक्तिगत अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक भी करती है। शिक्षा के मेरुदंड के रूप में शिक्षक का दृष्टिकोण, उनकी शिक्षण विधियाँ और उनके द्वारा कार्यान्वित शैक्षिक तकनीकी शिक्षा की गुणवत्ता को निर्धारित करती हैं। एक सकारात्मक और सहायक दृष्टिकोण से शिक्षक न केवल बच्चों के शैक्षिक प्रदर्शन में सुधार कर सकते हैं, बल्कि उनके आत्म–सम्मान और समाज में समावेशिता को भी बढ़ावा दे सकते हैं। इसके विपरीत, यदि शिक्षक का दृष्टिकोण नकारात्मक या सीमित होता है, तो इससे बच्चों की शैक्षिक प्रगति और मानसिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तुत शोध लेख का उद्देश्य विशेष शिक्षा पाठ्यक्रम के अंतर्गत प्रशिक्षित हो रहे शिक्षकों के दृष्टिकोण, प्रशिक्षण कार्यक्रम और उन्हें प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण द्वितीयक आकंड़ों के आधार पर किया गया है। यह शोध लेख भावी शिक्षकों के दृष्टिकोण, शिक्षण अभ्यास, शिक्षण विधियों और विद्यार्थियों की समस्याओं को समझने, हल करने और नए समाधान खोजने की क्षमता प्रदान करने का प्रयास करता है, जिससे न केवल सामाजिक और आर्थिक विकास में योगदान होता है, बल्कि मानसिक और बौद्धिक विकास में भी सहायता प्राप्त होती है। विशिष्ट शिक्षा, एक ऐसी शिक्षा प्रणाली है जो विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की आवश्यकताओं पर केंद्रित है, जो शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक विकलांगताओं से प्रभावित बच्चों के लिए अनुकूलण का कार्य करती है। इन बच्चों को सामान्य शिक्षा प्रणाली में आने वाली कठिनाइयों के परिणाम स्वरूप इन्हें विशेष रूप से डिज़ाइन किए गए पाठ्यक्रम, सहायक उपकरण एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता होती है। इसलिए यह मात्र बच्चों के विकास के लिए नहीं, बल्कि समाज की समग्र प्रगति के लिए भी महत्वपूर्ण है।

शिक्षण में सुधार, प्रशिक्षुओं के दृष्टिकोण और शिक्षण पद्धतियों के प्रभावी मूल्यांकन के माध्यम से विशेष शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यक बदलाव संभव हो सकते हैं। शिक्षक का सकारात्मक दृष्टिकोण न केवल शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करता है, बल्कि यह बच्चों के समग्र विकास और समाज में उनके समावेशिता को भी बढ़ावा

*** सहायक आचार्य, डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर मुक्त विश्वविद्यालय, अहमदाबाद, गुजरात–382481।**
**** सहायक आचार्य, अष्टवक्र इंस्टिट्यूट ऑफ़ रिहेबिलिटेशन साइंस एंड रिसर्च दिल्ली–110085।**

देता है। इस अध्ययन के परिणाम शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने में सहायक होंगे, जिससे प्रशिक्षुओं की प्रेरणा, दृष्टिकोण, और उनके शिक्षण तकनीकी पर प्रशिक्षक की भूमिका को स्पष्ट किया जा सकेगा। साथ ही, शिक्षक प्रशिक्षण प्रणाली में सुधार के द्वारा यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि प्रशिक्षक विशेष शिक्षा के क्षेत्र में अधिक प्रभावी ढंग से कार्य कर सकें। इस प्रकार विशेष शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण पद्धतियों और पाठ्यक्रमों को और अधिक प्रभावी बनाकर सांवेगिक रूप से दिव्यांग बालकों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।

प्रशिक्षण कार्यक्रमों का प्रशिक्षु शिक्षकों के दृष्टिकोण पर प्रभाव– विशेष शिक्षा एक संभावनाओं से परिपूर्ण एक चुनौतीपूर्ण क्षेत्र है, जिसमें प्रशिक्षु शिक्षकों के दृष्टिकोण और शिक्षण विधियाँ महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। विशेष रूप से जब वे सांवेगिक रूप से विशिष्ट बालकों के लिए शिक्षा प्रदान करने के लिए तैयार होते हैं, तो उनके दृष्टिकोण को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारक उनके शिक्षण कौशल और व्यवहार को आकार देते हैं। इन कारकों को समझना और पहचानना अत्यंत आवश्यक है, जिससे प्रशिक्षु शिक्षकों की प्रभावशीलता को बढ़ाया जा सके और विशेष शिक्षा प्रणाली में सुधार किया जा सके।

विकलांगता का प्रभाव– विकलांगता केवल शारीरिक रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप से भी व्यक्ति पर गहरा प्रभाव डालती है (कुमारी, 2013)। यह समाज में असमानता और भेदभाव का कारण बन सकती है, जिससे विकलांग व्यक्ति को मानसिक उत्पीड़न और अलगाव का सामना करना पड़ता है। साथ ही, ने विकलांगता भौतिक और सामाजिक बाधाओं के कारण उत्पन्न होती है, जो व्यक्ति के विकास में रुकावट डालती हैं। समाज में इन बाधाओं की मौजूदगी विकलांग व्यक्तियों की प्रगति को रोकती है (गाताडे, 2013)।

दिव्यांजन हेतु सुगम्य वातावरण– विकलांगता की सामाजिक परिभाषा केवल शारीरिक अक्षमता तक सीमित नहीं है; यह उस सामाजिक वातावरण से उत्पन्न होती है, जो विकलांग व्यक्ति के लिए अनुकूल नहीं होता। गुप्ता (2016) ने अपने लेख "विकलांगता से आगे सुगम्यता और कल्याण" में यह स्पष्ट किया है कि विकलांगता कोई अभिशाप नहीं है, बल्कि यह केवल उस वातावरण की आवश्यकता है जो विकलांग व्यक्तियों के लिए सुगम्य हो। यदि विकलांग व्यक्तियों को एक समान और सुलभ माहौल प्रदान किया जाए, तो वे अपनी पूरी क्षमता का उपयोग कर सकते हैं और समाज में अपनी स्थिति को सशक्त बना सकते हैं। सुगम्य वातावरण विकलांग व्यक्तियों के लिए शिक्षा, रोजगार और अन्य सामाजिक अवसरों तक पहुंच को सरल बनाता है, जिससे वे आत्मनिर्भर और सशक्त बन सकते हैं। तरंग (1998) ने भी इस बात पर बल दिया कि भारत में विकलांग व्यक्तियों को शिक्षा और कौशल विकास के अवसर प्रदान किए जा सकते हैं। विकलांग व्यक्तियों के लिए शिक्षा न केवल उनके व्यक्तिगत विकास के लिए आवश्यक है, बल्कि यह समाज के लिए भी उपयोगी हो सकती है, क्योंकि वे समाज में सक्रिय रूप से योगदान करने में सक्षम हो सकते हैं।

समाज में दिव्यांगजन के प्रति पूर्वाग्रह– कुमारी (2013) एवं गाताडे (2013) दोनों ही विद्वतजन ने इस पर बल दिया है कि विकलांग व्यक्तियों के लिए समावेशी और समान अवसर देने के लिए समाज की मानसिकता में बदलाव की आवश्यकता है। समाज का विकलांगता के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण, जैसे कि भेदभाव, उपेक्षा और असमानता, विकलांग व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति को और भी कमजोर बना देता है। यदि हम विकलांग व्यक्तियों को समान रूप से देखेंगे और उनके साथ समान व्यवहार करेंगे, तो समाज में सकारात्मक बदलाव आ सकता है। इसके विपरीत, यदि समाज इन्हें अलग–थलग करता है और उनके साथ भेदभाव करता है, तो यह उनके आत्मविश्वास और विकास में रुकावट उत्पन्न करता है। एक समावेशी और सुलभ समाज विकलांग व्यक्तियों को अपनी पूरी क्षमता तक पहुंचने का अवसर प्रदान करता है और समाज को अधिक समान और न्यायपूर्ण बनाता है। तरंग (1998) के अनुसार, प्राकृतिक विकलांगता की तुलना में मानव निर्मित विकलांगता अधिक चिंता का कारण है। मानव निर्मित विकलांगता से तात्पर्य उन सामाजिक और भौतिक बाधाओं से है, जो विकलांग व्यक्तियों के लिए जीवन को कठिन बना देती हैं। यह बाधाएँ शारीरिक, स्थापत्य, यातायात संबंधी और मानसिक हो सकती हैं। रघुराम (2016) ने इसे इस प्रकार से व्यक्त किया है कि अधिकतर दिव्यांग ही सक्षम लोगों को यह सिखाते हैं कि जब जीवन में चुनौती आए तो खुद चुनौती को स्वीकार करो, जो दर्शाता है कि विकलांग व्यक्ति अपनी परिस्थितियों से निपटने में सक्षम होते हैं लेकिन समाज की स्थापित बाधाओं के कारण वे अपने जीवन को पूरी तरह से जीने में सक्षम नहीं हो पाते।

भारत में शिक्षा के अधिकार कानून 2009 के लागू होने के बावजूद, विकलांग बच्चों के लिए शिक्षा की उपलब्धता अभी भी बहुत कम है। रॉव (2016) ने इसे रेखांकित किया है कि विकलांग बच्चों तक शिक्षा की पहुंच

को सुनिश्चित करना एक प्रमुख चुनौती है। 'आकड़ों के अनुसार 20% विकलांग बच्चों/व्यक्तियों तक शिक्षा नहीं पहुँच पायी है' यह एक गंभीर समस्या है जो दर्शाता है कि विकलांग बच्चों के लिए शिक्षा का प्रबंध पर्याप्त नहीं है और यह समाज के दृष्टिकोण को भी उजागर करता है।

विकलांगता केवल शारीरिक अक्षमता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक रूप से निर्मित अवधारणा है। यदि समाज विकलांग व्यक्तियों के लिए एक समावेशी और सुगम्य वातावरण प्रदान करता है, तो वे अपनी पूरी क्षमता को पहचान सकते हैं और समाज में सकारात्मक योगदान कर सकते हैं। इसके लिए हमें न केवल कानूनों और संस्थागत प्रबंधों में सुधार की आवश्यकता है, बल्कि विकलांग व्यक्तियों के प्रति समाज की मानसिकता में भी बदलाव लाना होगा। जब हम विकलांग व्यक्तियों के प्रति अपनी सोच में बदलाव करेंगे और उन्हें समान अवसर प्रदान करेंगे, तब हम एक समावेशी और न्यायपूर्ण समाज की ओर कदम बढ़ा सकते हैं। जहाँ विकलांग व्यक्ति न केवल समाज का हिस्सा हों, बल्कि समाज में सक्रिय रूप से योगदान भी कर सकें। विशेष शिक्षा में प्रशिक्षु शिक्षकों के दृष्टिकोण को प्रभावित करने वाले कारक उनके शिक्षण विधियों और सफलता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। व्यक्तिगत अनुभव, शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव, सहयोगी वातावरण, प्रेरणा और रुचियाँ, समय और संसाधनों की उपलब्धता, और शिक्षण के प्रति विश्वास इन सभी कारकों का प्रशिक्षु के दृष्टिकोण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि इन कारकों को सकारात्मक दिशा में बढ़ावा दिया जाए, तो विशेष शिक्षा में प्रशिक्षु शिक्षकों की सफलता और प्रभावशीलता में सुधार किया जा सकता है, जिससे विकलांग बच्चों के लिए एक अधिक समावेशी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रणाली सुनिश्चित की जा सकती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि विशेष शिक्षा में प्रशिक्षु शिक्षकों के दृष्टिकोण पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है, विशेषतः जब ये कार्यक्रम सांवेगिक रूप से विशिष्ट बालकों के लिए होते हैं। ये कार्यक्रम न केवल शैक्षिक कौशल सिखाते हैं, बल्कि प्रशिक्षु शिक्षकों के दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव लाने, उनकी शैक्षिक क्षमता को सुधारने और समाज में समावेशिता को बढ़ावा देने में भी सहायक होते हैं। इन आधारों पर कहा जा सकता है कि विशेष शिक्षा पाठ्यक्रम के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का दृष्टिकोण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ये कार्यक्रम प्रशिक्षु शिक्षकों को शैक्षिक कौशल के साथ–साथ उनके दृष्टिकोण, मानसिकता और बच्चों के प्रति संवेदनशीलता को भी विकसित करते हैं। प्रशिक्षुओं का आत्मविश्वास, सहानुभूति और बच्चों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण बढ़ता है, जो अंततः उनके शिक्षण व्यवहार और विशेष शिक्षा के क्षेत्र में उनकी प्रभावशीलता को बढ़ाता है। अतः स्पष्ट है कि प्रशिक्षण कार्यक्रमों का दृष्टिकोण पर महत्वपूर्ण प्रभाव है।

संदर्भ–सूची :–

1. कुमारी, आर. (2013). विकलांगता विशेषांक, योजना।
2. गाताडे, एस. (2013). विकलांगता एवं प्रौद्योगिकी, योजना।
3. गुप्ता (2016). विकलांगता से आगे सुगम्यता और कल्याण, योजना।
4. तरंग, जे. (1998). विकलांगों के लिए शिक्षा प्रकाशन विभाग : सूचना एवं प्रसारण भारत मंत्रालय।
5. राव, आई. (2016). विकलांगजनः शैक्षिक अधिकार व अवसरों का उन्नयन, योजना।
6. शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009).
7- https://www.edudel.nic.in/upload/upload_2017_18/rteact_hindi_dt_18072017.pdf

ध्वन्यालोकलोचने भ्रम धार्मिक. इत्यस्मिन् स्थले प्रयुज्यमानाः लौकिकन्यायाः

विपाशा जैनः*

प्रो.रामकुमारशर्मा**

आनन्दवर्धनाचार्येण ध्वन्यालोकग्रन्थं विलिख्य ध्वनिसिद्धान्तस्य स्थापना कृत्वा ध्वनिसम्प्रदायः प्रारब्धः। ध्वन्यालोकस्य विषयो व्यापकः, प्रसिद्धश्च वर्तते। अतः अस्योपरि अनेकैः विद्वद्भिः नैकाः टीकाः लिखिताः– यथा दीधितिः, लोचनम्, चन्द्रिकेत्यादयः। यद्यपि सर्वासु टीकासु तत्त्वानि सरलरूपेण व्याख्यायन्ते, तथापि टीकाग्रन्थेषु लोचनटीकायाः स्थानं महत्त्वपूर्णं प्रसिद्धं च वर्तते। ध्वन्यालोकस्य चतुर्षु उद्योतेषु इयं टीका लिखिता। अस्य व्याख्याकारः आचार्याभिनवगुप्तः अस्ति।

लोचनटीकायां अनेकानि नूतनानि अपि प्रतिपाद्यानि प्रदर्शितानि। प्रथमोद्योतस्य चतुर्थ्यां कारिकायां 'भम्म धम्मिह' इति प्राकृतगाथा उद्धृता, यस्य व्याख्यानप्रसङ्गे लोचनकृता न्याय– वैशेषिकदर्शनानि खण्डितानि कृतानि भट्टनायकस्य च मतं तिरस्कृत्य व्यञ्जनाशक्तेः स्थापना कृता। प्रसङ्गेऽस्मिन् शैवदर्शनस्य प्रभावः परिलक्ष्यते। इयं व्यञ्जनास्थापना साहित्यशास्त्रदृष्ट्या अतीव विशदा, गभीरा चास्ति, अनेकासां व्यञ्जनासम्बन्धिनीनां दार्शिनिकीनां, साहित्यिकानाञ्च विप्रतिपत्तीनां निराकरणं करोति। तस्मिन्नेव उदाहरणे यत् लोचने लिखितम्, तस्याः व्यञ्जनास्थापनायाः स्थले लौकिकन्यायाः अनेन शोधपत्रेण प्रस्तूयते।

सहृदयश्लाघ्यस्य अर्थस्य द्वौ भेदौ भवतः– वाच्यार्थः प्रतीयमानार्थश्च[1]। तत्र प्रतीयमानार्थः सरस्वतीस्वादुः वाच्यात् अन्यदेव वस्तु अस्ति। यथा अङ्गनासु प्रसिद्धहारादिभ्यः पृथक् लावण्यं किमपि अन्यदेव शोभते, तथैव काव्येषु प्रसिद्धालङ्कारादिभ्यः अन्यदेव वस्तु प्रतीयमानं भवति[2]। वाच्यात् प्रतीयमानस्य अन्यत्वमेवं ज्ञायते यत् कदाचित् वाच्यः विधिरूपः, प्रतीयमानार्थश्च निषेधरूपो भवति। कदाचित् वाच्यः प्रतिषेधरूपः, व्यङ्ग्यश्च विधिरूपः। कदाचिद् वाच्यः विधिरूपः व्यङ्ग्यः च अनुभयरूपः। कदाचित् वाच्यः प्रतिषेधरूपः व्यङ्ग्यश्च अनुभयरूपः भवति। एवं वाच्यात् प्रतीयमानार्थः विभेदवान्।

तत्र यदा वाच्यः विधिरूपः, व्यङ्ग्यश्च प्रतिषेधरूपः भवति, तस्योदाहरणं ध्वन्यालोककारेण उक्तम्। स्वकीयमहत्त्वपूर्णसङ्केतस्थानं धार्मिकभ्रमणान्तरायात् सङ्केतस्थानात् अवलुप्यमानपल्लवादि –विच्छायीकरणाच्च परिरक्षितुं नायिकायाः इयमुक्तिः–

भम धम्मिअ वीसत्थो, सो सुणओ अज्ज मारिओ देण।
गोलाणइकच्छकुडङ्गवासिणा दरिअसीहेण[3]।।

एतस्याः प्राकृतगाथायाः संस्कृतच्छाया एवमस्ति–

भ्रम धार्मिक विस्रब्धः, स शुनकोऽद्य मारितस्तेन।
गोदावरीकूललतागहनवासिना दृप्तसिंहेन[4]।।

अत्र वाच्यार्थः यथेच्छं भ्रम इति विधिरूपः। प्रतीयमानार्थः भवान् भीरुः। कुक्कुरादपि बिभेषि, अत्र सिंहः अस्ति, अतः मा भ्रम इति निषेधरूपः। अत्र भ्रमणनिषेधस्य विपरीतलक्षणया लक्ष्यता न सम्भवति, यतो हि मुख्यार्थबाधो नास्ति। यद्यपि प्रकरणादिना विना मुख्यार्थस्य बाधः प्रतीयते, तथापि सः वाक्यार्थबोधात् परं भवति। यत्र वाक्यार्थबोधात् पूर्वमेव बाधा प्रतीयते, तत्र लक्षणा भवति, अन्यत्र तु व्यञ्जना एव।

एतस्य व्याख्यानं लोचने अभिनवगुप्ताचार्येण सप्रपञ्चं प्रदर्शितम्। सर्वप्रथममत्र अभिधा–लक्षणा–तात्पर्यवृत्तिभिः बोधः नार्हति, एतद्दर्शितम्, अनन्तरं च तुरीया या वृत्तिः व्यञ्जना, तस्य स्थापनापि कृता। भट्टनायकादीनां यत् व्यञ्जनाविरोधि मतमस्ति, तस्य खण्डनं कृत्वा अत्र व्यञ्जनाव्यापारः स्थापितः अभिनवगुप्तेन। तस्मिन् विशदे व्याख्याने ये लौकिकन्यायाः प्रयुक्ताः, तेभ्यः कांश्चन न्यायानत्र दर्शयामि–

*** सहायकाचार्या केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयःजयपुरपरिसरः**

**** मार्गनिर्देशकः केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयःजयपुरपरिसरः**

1. **सामान्यान्यन्यथासिद्धेर्विशेषं गमयन्ति हि :–** 'विशेष्यं नाभिधा गच्छेत्' एवम् अभिधाव्यापारः विरम्य पुनः न सम्भवति। समयापेक्षया अर्थावगमनशक्तिः अभिधा भवति। समयः सङ्केतो वा सामान्ये एव भवितुमर्हति, न तु विशेषांशे। यदि वयं विशेषांशे व्यक्तौ वा सङ्केतं स्वीकुर्मः, तदा द्वौ दोषौ तत्र सम्भवतः – आनन्त्यम् व्यभिचारश्च[5]। अतः वाक्यार्थस्य बोधाय अभिहितान्वयवादिनां मीमांसकानां मते विशेषरूपे परस्परान्विते वाक्यार्थे तात्पर्यशक्तिर्भवति। अर्थात् कस्मिंश्चिदपि वाक्ये अभिधाव्यापारः पदानां बोधं कृत्वा विरमति, तदनन्तरं तात्पर्यवृत्तिः पदानां परस्परम् अन्वयं कृत्वा, वाक्यार्थस्य बोधं करोति। एवं अभिहितान्वयवादिनां मते एका अतिरिक्ता वृत्तिः स्वीकृता। कस्मात्? सामान्यान्यथासिद्धेर्विशेषं गमयन्ति हि इति न्यायात्। अर्थात् विशेषं विना सामान्यं न सिद्ध्यति, अतः सामान्यानि विशेषान् बोधयन्ति।
2. **अदग्धदहनन्यायः :–** यथा अग्निः अदग्धं वस्तु दग्धुं शक्नोति, परन्तु स अग्निः पूर्वमेव दग्धं वस्तु दग्धुं न शक्नोति। तथैव अभिधया वाच्यार्थबोधनात्परमत्र प्रतीयमानार्थस्य बोधो न सम्भवति, विरम्यव्यापारात्[6]। अर्थात् कश्चिदपि व्यापारः सकृदेव प्रवर्तते। अभिधा सङ्केतग्रहं कृत्वा, वाच्यार्थं वा बोधयित्वा विरमति, अन्यमर्थं प्रतीयमानं बोधयितुं तस्याः सामर्थ्यं नास्ति। अतः भ्रम धार्मिक. अस्मिन् स्थले निषेधरूपार्थबोधनाय पृथक्व्यञ्जनावृत्तिः स्वीकरणीया।
3. **अभ्युपगमसिद्धान्तन्यायः :–** यदा सहसा केनापि असिद्धान्तः भण्यते चेत्, तं समाधातुम् आदौ तस्यैव सिद्धान्तस्य स्वीकृतिमुखेन वाक्यमुच्यते, तदा अयं न्यायो भवति। भ्रम धार्मिक. इत्यस्मिन् स्थले लक्षणायाः अभावो वर्तते। आदौ अभिनवगुप्ताचार्यः अन्वयानुपपत्तेः अभावात् तत्र विपरीतलक्षणायाः विरोधं प्रदर्शयति, ततः परं प्रकारान्तरेण लक्षणायाः अभावं द्योतयति 'भवतु वाऽसौ'[7] इति वाक्येन। अत्र लक्षणास्वीकारे सति का हानिः स्यात् इति प्रदर्शितम्। भ्रम धार्मिक. इत्यस्मिन् स्थले लक्षणा नास्ति, योग्यताविरहात्। लक्षणायाः कल्पना मुख्यार्थबाधे भवति, परन्तु अस्मिन् स्थले मुख्यार्थबाधः एव नास्ति। सः धार्मिकः वर्तते, अतः उपासनादिकार्ये प्रवृत्तस्य पुरुषस्य शुनकात् भयमुचितमेव। मुख्यार्थबाधाभावात् अत्र लक्षणायाः अवसरः एव नास्ति। अतः अत्र अभ्युपगमसिद्धान्तन्यायः अभ्युपगन्तव्यः।
4. **अर्कमधुन्यायः :–** यत् अल्पेन श्रमेण किमपि साधयितुं शक्यते, चेत् तदर्थं निष्कारणमेव महान् परिश्रमः न करणीयः इति अनेन न्यायेन सूच्यते। अन्विताभिधानवादिनः 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः' इति कृत्वा अभिधामेव दीर्घदीर्घतरामिच्छन्ति। यथा एकः एव शरः भटस्य दीर्घदीर्घतरादिभिः विविधैः व्यापारैः विविधतया लक्ष्यं भेत्ति, तथैव एकः एव व्यापारः स्वकीयशक्त्या दीर्घदीर्घतरः भवन्, विविधान् अर्थान् प्रतिपादयति। अतः अभिधा विरम्यव्यापारा न भवति। तत्र ते अन्विताभिधानवादिनः विरतायाम् अभिधायां दीर्घदीर्घतरत्वं साधयितुं अनेकाः युक्तीः प्रदर्शयन्ति। केवलं स्वपक्षपोषणाय, पृथग्वृत्तिग्रहणम् इति अल्पयत्नं न स्वीकुर्वते, अपितु महान् यत्नं अर्थे नैमित्तिकत्वम् इत्यादि रूपं स्वीकुर्वन्ति। अतोऽत्रायं न्यायः सङ्गच्छते, यत् यदि एकेनैव व्यापारेण सर्वेषामपि अर्थानां बोधः शक्यः, तदा चतसृणां वृत्तीनां स्वीकारः व्यर्थः एव। परन्तु इदं मतं साहित्यिकैः न स्वीक्रियते। एकस्मिन्नेव व्यापारे दीर्घदीर्घतरत्वं कथमागच्छति? यदि भिन्नविषयत्वादिति उच्यते तदा भिन्नविषयत्वं सजातीयमस्ति अथवा असजातीयम्। सजातीये सति व्यापारः एकः एव न भवितुमर्हति, यतः विद्वद्भिः सजातीये कार्ये शब्दकर्मबुद्ध्यादीनां व्यापारः सकृत् विरम्य निषिद्धः[8]। यदि च भिन्नविषयत्वं असजातीयमस्ति, तदा तु साहित्यिकानामेव मतं हि तत्, अतः अस्माकमिष्टमेव।
5. **जहत्स्वार्थवृत्तिन्यायः :–** यत्र शब्दाः स्वं साङ्केतिकम् अर्थं परित्यज्य अर्थान्तरं प्राप्नुवन्ति, तदा शब्दवृत्तिः जहत्स्वार्था–नाम्ना उच्यते। वस्तुतः विस्तृते साहित्यशास्त्रे अनेकत्र, प्रायशः सर्वत्रैव लक्षणास्थलेषु अयं न्यायः प्रवर्तते एव, तथापि प्रकृते 'सिंहो वटुः', 'अङ्गुल्यग्रे करिवरशतम्' इत्यादिषु अर्थान्वयप्रतीतेरभावं बोधयित्वा, तत्रतात्पर्यशक्तिसमर्पितान्वयबाधकोल्लासानन्तरमभिधातात्पर्यशक्तिद्वयव्यतिरिक्ता तद्बाधक विधुरीकरण–निपुणा लक्षणाशक्तिराविर्भवति[9]– या जहत्स्वार्था वृत्तिर्वर्तते। यत्र मुख्यार्थबाधः भवति, लक्ष्यार्थेन सम्बन्धः भवति, रूढितः अथवा प्रयोजनात् तत्र लक्षणावृत्तिर्सम्भवति। लक्षणायां वाच्यार्थः स्वस्य अर्थं त्यक्त्वा कस्माच्चित् सम्बन्धात् अन्यमर्थं बोधयति, अतः तत्र अयं जहत्स्वार्थवृत्तिन्यायः वर्तते। या अजहत्स्वार्थालक्षणा भवति, तत्र लक्ष्यार्थस्य बोधाय मुख्यार्थः न हन्यते। तत्र मुख्यार्थस्यापि ज्ञानं तु भवत्येव, परन्तु तत्र लक्षणाबोधे शक्यतावच्छेदकः परिवर्त्यते। अतः मुख्यार्थस्य बोधः भवति, परन्तु मुख्यार्थतावच्छेदकेन न भवति, अपितु लक्ष्यतावच्छेदकेन।
6. **धूमाग्निन्यायः :–** यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र वह्निरिति धूमस्य अग्नेश्च सम्बन्धः नियतेन भवति। इदमेव साहचर्यं व्याप्तिरपि कथ्यते। भ्रम धार्मिक. इत्यत्र निषेधरूपस्य अर्थस्य बोधाय शब्दव्यापारः एव अस्ति। ये

लक्षणास्थलेषु अपि प्रयोजनज्ञानाय (सिंहो वटुः इत्यत्र पराक्रमातिशयशालित्वरूपं प्रयोजनम्, गङ्गायां घोषः इत्यत्र घोषस्यातिपवित्रत्वशीतलत्वसेव्यत्वादिकं प्रयोजनम्) शब्दस्य व्यापारं न स्वीकुर्वन्ति, तन्न समीचीनम्। पुनश्च तत्र प्रमाणान्तराणि अपि न सम्भन्ति। यदि गङ्गायां घोषः अस्मिन् स्थले अनुमानं स्वीक्रियते, तत्सामीप्यात् इति हेतोः, तर्हि अयं हेतुः अनैकान्तिकोऽस्ति। सिंहो वटुः इत्यस्मिन् स्थले वटोः सिंहशब्दवाच्यत्वमेव असिद्धम्। अतः एतेषु स्थलेषु यदि वयं व्याप्तिवाक्यं निर्मामः, तदा एवं भविष्यति– यत्र यत्र एवंशब्दप्रयोगस्तत्र तत्र तद्धर्मयोगः इति अनुमानम्। एतस्य वाक्यस्य व्याप्तिज्ञानाय धूमाग्निन्यायः सहकरोति। एतस्मिन् उपर्युक्तव्याप्तिग्रहणकाले मौलिकं प्रमाणान्तरं वाच्यम्, यत् नास्ति। अत्र स्मृतिरपि न भवितुमर्हति, व्याप्तेः अननुभूते अभावात्। हेत्वाभासात् अत्र अनुमानं नास्ति, अननुभूतविषयत्वात् अत्र स्मृतिरपि नास्ति, अतः अत्र शब्दव्यापारः एव स्वीकर्तव्यः, सोऽपि शब्दव्यापारः व्यञ्जना एव समीचीनः।

7. तच्छक्तित्रयोपजनितार्थावगममूलजाततत्प्रतिभासपवित्रितप्रतिपत्तृप्रतिभासहायार्थद्योतनशक्तिर्ध्वननव्यापारः[10]।

सः व्यापारः त्रीन् अपि अभिधालक्षणातात्पर्यव्यापारान् न्यक्कुर्वन् काव्यस्यात्मत्वेन प्रतिष्ठति। यद्यपि स्वच्छन्दविहारादिः प्रयोजनानि अत्र पारमार्थिकरूपेण व्यङ्ग्यानि सन्ति, परन्तु तस्य प्रयोजनविषयस्य प्रतीतिः निषेधमुखेन भवति, अतः अत्र निषेधः प्रतीयमानोऽस्ति इति व्यवहारः कृतः।

त्रयः अपि व्यापाराः व्यञ्जनाव्यापारे सहकारीणि कारणानि सन्ति, येन प्रधानभूतः ध्वननव्यापारः उदेति। यः जनः काव्यार्थस्य पुनःपुनः अनुसन्धानद्वारा संस्कृतः भूत्वा सहृदयः भवति, स एव ध्वननव्यापारेण ध्वन्यमानार्थस्य बोधं कर्तुं शक्नोति।

एवम् मण्डूकप्लुतिन्यायेन भ्रम धार्मिक. इत्यस्मिन् स्थले केचन लौकिकन्यायाः अस्माभिः दृष्टाः। एवमेव अन्येऽपि न्यायाः अत्र सम्भवन्ति। वस्तुतः अनेन उदाहरणेन रसध्वनिरपि सिद्ध्यति, परन्तु प्रथमतयैव रसस्य अवगमः सम्भवः नास्ति रसस्य अलौकिकत्वात्। अतः आदौ आचार्यानन्दवर्धनस्य प्रयोजनं वाच्ये व्यङ्ग्ये च भेदप्रदर्शनमासीत्, अतः वस्तुध्वनेः उदाहरणरूपेण इयं प्राकृतगाथा उल्लिखितास्ति।

दैनन्दिने जीवने सर्वेषां ये अनुभवाः भवन्ति, तेषां सारं संगृह्य न्यायाः भावान् प्रकटयन्ति। यथा कथाभ्यः सुभाषितेभ्यः च लोकजीवनस्य विवधतायाः ज्ञानं भवति, तथैव न्यायैरपि। लौकिकन्यायाः लौकिकाः उच्यन्ते, यतः ते लोके प्रसिद्धाः सन्ति। जनाः एतान् न्यायान् स्वकीये जीवने व्यवहरन्ति। शिक्षायाः उद्देश्यं यथा अस्ति सरलतायाः कठिनतां प्रति गमनम्। तदेव उद्देश्यमुररीकृत्य अस्मिन् शोधप्रबन्धे लौकिकन्यायमाध्यमेन गूढायाः अपि लोचनटीकायाः केषाञ्चन सिद्धान्तानामवगमनं कृतम्। एवमेव भविष्येऽपि लौकिकन्यायमाध्यमेन अनेके शास्त्रीयाः सिद्धान्ताः सरलरीत्या अवगन्तुं शक्यन्ते।

सन्दर्भ–सूची :–

1. योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः। वाच्यप्रतीयमानाख्यौ, तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।।
2. प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्। यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं, विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।
3. ध्वन्यालोकः, पृ. – 52।
4. ध्वन्यालोकः, पृ. – 52।
5. समयश्च तावत्येव, न विशेषांशे, आनन्त्याद्व्यभिचाराच्चैकस्य।
6. प्रतिपत्तिश्चान्वयस्य नाभिधाशक्त्या, तस्याः पदार्थप्रतिपत्त्युपक्षीणाया विरम्यव्यापारात्।
7. ध्वन्यालोकः, पृ.55।
8. सजातीये च कार्ये विरम्यव्यापारः शब्दकर्मबुद्ध्यादीनां पदार्थविद्भिर्निषिद्धः।
9. ध्वन्यालोकः, 56।
10. ध्वन्यालोकः, पृ. – 61।

सन्दर्भग्रन्थसूची :–

1. लोचनध्वन्यालोकः, आचार्यानन्दवर्धनः, चौखम्बाविद्याभवनम्, वाराणसी, 2019
2. ध्वन्यालोकः, बालप्रियासहितम्, चौखम्बासंस्कृतसंस्थानम्, वाराणसी, 2015
3. काव्यप्रकाशः, आचार्यमम्मटः, 2016।
4. लौकिकन्यायकोशः, डॉ. पेन्ना मधुसूदनः, संस्कृतभारती नवदेहली, 2018।

ꙮ★ꙮ

गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता सणावितिसूत्रस्यनियामकत्त्वविमर्शः

अश्वनीकुमारठाकुरः*
प्रो. विष्णुकान्तपाण्डेयः **

गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामिति षष्ठ्यन्तं पदम्, अणि इति लुप्तसप्तमीकं पदम्, कर्ता–इतिप्रथमान्तं पदम्, सइतिप्रथमान्तं पदम्, णौ इति सप्तम्यन्तं पदम्। एवञ्च पञ्चपदात्मकमिदं सूत्रम्। गतिश्च बुद्धिश्च प्रत्यवसानञ्च इति गतिबुद्धिप्रत्यवसानानि, इमानि अर्थाः येषां ते गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाः। शब्दः कर्म येषां ते शब्दकर्मकाः, अविद्यमानं कर्म येषां ते अकर्मकाः, गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाश्च शब्दकर्मकाश्च अकर्मकाश्च तेषामिति गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाशब्दकर्माकर्मकाणाम्। अणि इत्यत्र णि इति प्रत्ययमात्रबोधकं पदम्, यस्मात्प्रत्ययविधिरिति परिभाषया तदादेरुपस्थितिः, तथा च तदादिविशेष्यकतदन्तविधौ सति ण्यन्ततदादौ इत्यर्थः। अनेन ण्यन्तावस्था लक्ष्यते तथा च अणि इत्यस्य अण्यन्तावस्था इत्यर्थः। यत्तदोः नित्यसम्बन्धात् स इत्यनेन यः इत्यस्याक्षेपः। तथा चाऽर्थः अण्यन्तावस्थायां यः कर्ता स ण्यन्तावस्थायां कर्म सञ्ज्ञको भवति। यथा– देवदत्तः ग्रामं गच्छतीति अण्यन्तावस्थायाम् उत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापाराश्रयः देवदत्तः, सः गम्–धातोः णिचि सति कर्मसञ्ज्ञको भवति। तथा च वाक्यं यज्ञदत्तः देवदत्तं ग्रामं गमयति। ण्यन्तावस्थायां गम्धातोः उत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापारानुकूलव्यापारोऽर्थः। अत्र केचन मुख्यव्यापार–जन्य–प्रथमव्यापाररूपफलाश्रयत्वाद् देवदत्तस्य कर्मसञ्ज्ञा प्रथमव्यापारजन्यसंयोगरूपफलाश्रयत्वाच्च ग्रामस्य कर्मसञ्ज्ञा प्राप्ता, तथा च कर्तुरीप्सिततममिति[1] सूत्रेण प्राप्तायाएवकर्मसञ्ज्ञायाः विधानाय इदं सूत्रमारब्धम्। अतः "सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिः नियमाय कल्प्यते'' इति न्यायात् सूत्रमिदं नियमार्थम्।

केचन द्वितीयव्यापारजन्यफलाश्रयत्वात् कर्मसञ्ज्ञा प्राप्ता, प्रथमव्यापाराश्रयत्वाच्च स्वतन्त्रः कर्ता इति सूत्रेण कर्तृसञ्ज्ञा प्राप्ता, देवदत्तः ग्रामं गच्छतीति वाक्ये उभे सञ्ज्ञे चरितार्थे तथा देवदत्तः ग्रामं गच्छति, यज्ञदत्तः तं प्रेरयतीति विवक्षायां देवदत्तस्य कर्तृकर्मकसञ्ज्ञे प्राप्ते, कर्तृसञ्ज्ञायाः परत्वात्, तया कर्मसञ्ज्ञायाः बाधात् कर्तृसञ्ज्ञा प्राप्ता, तां प्रबाधितुं प्रकृतसूत्रारम्भः। अतः अपूर्वविधायकत्वात् सञ्ज्ञेयं विध्यर्थिका। उभयोः पक्षयोः समवस्थितयोः कतरः पक्षः ज्यायान् इति विचार्यते।

सिद्धान्तकौमुद्यां गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णाविति सूत्रस्य विध्यर्थकत्वं नियामकत्वं वेति विमर्शः–

द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते इति नियमात् गतिबुद्धिप्रत्यवसानानि इति द्वन्द्वसमीपे श्रूयमाणस्य अर्थेत्यस्य द्वन्द्वघटकैः गतिबुद्धिप्रत्यवसानैः प्रत्येकं सम्बन्धः। तथा च गत्यर्थः बुद्ध्यर्थः प्रत्यवसानार्थ इत्यर्थः। शब्दकर्म इत्यस्य शब्दः कर्म यस्य स शब्दकर्म इति विग्रहः। अत्र कर्म इत्यनेन कर्मकारकमर्थः। अणि–घटक–णि–इत्यनेन ण्यन्तावस्था विवक्षिता। स इत्यनेन अणिकर्ता परामृश्यते। तथा चार्थः गत्यर्थस्य बुद्ध्यर्थस्य प्रत्यवसानार्थस्य शब्दकर्मणः अकर्मकस्य च अण्यन्तावस्थायाः यः कर्ता, स कर्ता ण्यन्तावस्थायां कर्मसञ्ज्ञको भवति।

एतत्सर्वं समाहृत्याह मूले–गत्याद्यर्थानां शब्दकर्माकर्मकाणां चाणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात्[2]। उदाहरणानि क्रमेणाह–

शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्।
आशयच्चामृतं देवान्वेदमध्यापयद्विधिम्
आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः[3]।।

अत्र वृत्तेः एवपदाघटितेनास्य विध्यर्थकत्वं दीक्षितेन सम्मतमिति भाति। यत्र नियामकत्वं दीक्षितेनेष्टं तत्र एवघटितां वृत्तिं लिखति। यथा रोः सुपि इति सूत्रस्य सप्तमी बहुवचने परे रोरेव विसर्जनीयो नान्यस्य रेफस्य

*** अनुसन्धाता, केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, जयपुरपरिसरः।**
****शोधनिर्देशकः, केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, जयपुरपरिसरः।**

इति लिलेख। किञ्च स्वलिखिते प्रौढमनोरमायां नियमार्थं चैतत्सूत्रमिति प्राञ्च इति वदता स्वमते विध्यर्थकत्वं ध्वनितम्। पुनश्च तदग्रे "लक्ष्यस्य निर्बाधत्वाद् नियमसूत्रमिति ग्रन्थानां का गति[4]"रिति इत्यनेनापि नियामकत्वं परमतेनैवेति ध्वन्यते। स्वमते तु कण्ठरवेणास्य विधित्वं बोधयितुमाह–

परत्वादन्तरङ्गत्वादुपजीव्यतयापि च।
प्रयोज्यस्यास्तु कर्तृत्वं गत्यादेर्विधितोचिता[5]।। इति।।

अतः उक्तप्रामाण्येन दीक्षितमते विधित्वमस्य सूत्रस्य स्थितम्।

काशिकायां तट्टीकायाञ्च गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णाविति सूत्रस्य विध्यर्थत्वं नियामकत्वं वेति विमर्शः–

द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं प्रत्येकमभिसम्बद्ध्यते इति नियमं हृदि कृत्वाह गत्यर्थानां बुद्ध्यर्थानां प्रत्यवसानार्थानां च धातूनां तथा शब्दकर्माकर्मकाणां चाण्यन्तानां यः कर्ता, स ण्यन्तानां कर्मसञ्ज्ञो भवति। मूलेऽस्य नियामकत्वं विध्यर्थत्वं वेति न किमपि कण्ठरवेणोक्तवान्। यद्यपि एवाघटितवृत्तिलेखनेन विध्यर्थत्वं वक्तुं शक्यते तथापि यत्र एभिः नियामकत्वम् इष्यते तत्रापि वृत्तौ एवकारेण वृत्तिं लिखत्येव तथा नास्ति, यथा रोः सुपि इत्यस्य रु–इत्येतस्य रेफस्य सुपि परतः विसर्जनीयादेशो भवति इति वृत्तिं लिलेख। यद्यपि ततोऽग्रे सिद्धे सत्यारभ्यमाणोविधिः नियमार्थः रोरेव सुपि विसर्जनीयादेशः नान्यस्य इति लिखता कण्ठरवेण नियामकत्वं प्रतिपादितम्। तथा अस्मिन् सूत्रे अलेखनात् मूलकारमतेऽस्य नियामकत्वं नेति वक्तुं शक्यते। तथा न्यासटीकायां जिनेन्द्रबुद्धिना नियमार्थं वचनम् प्रयोजकव्यापारेण व्याप्यमानस्य कर्मसञ्ज्ञा तदा गत्यर्थादीनामेव नान्येषामिति इति वदता नियामकत्वमुक्तम्। पदमञ्जर्यां हरदत्तोऽपि प्रयोजकव्यापारस्य प्रधानत्वात् तेनाप्यमानस्य कर्तृसञ्ज्ञायाः कर्मसञ्ज्ञायां निमित्तत्वाद् अन्तरङ्गात् प्राप्तायाः कर्मसञ्ज्ञायाः बाधकत्वात् प्रधानकार्यं सर्वतो बलवद् इति नियमात् कर्मसञ्ज्ञा सिद्धा। तथापि सूत्रमिदं नियमार्थम् इति प्रतिपादयतोक्तम्– प्रयोजकव्यापारेणाप्यमानस्य यदि भवति गत्यर्थादीनामेव नान्येषामिति।

प्रक्रियाकौमुद्यां तट्टीकायाञ्च गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णाविति सूत्रस्य विध्यर्थकत्वं नियामकत्वं वेति विमर्शः –

अत्र मूले त्वस्य विध्यर्थकत्वं नियामकत्वं वेति न किमपि कण्ठरवेणोक्तम्, परं प्रसादटीकायां कर्तुरीप्सिततमं कर्मेति सूत्रेणास्य गतार्थत्वमाशङ्क्यास्य नियाकत्वं मुक्तकण्ठेन प्रतिपादितम्।

महाभाष्ये गतिबुद्धिप्रत्यवासानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामिति सूत्रस्य विध्यर्थकत्वं नियामकत्वं वेति विमर्शः–

यद्यपि भगवद्भिः भाष्यकारैः प्रकृतसूत्रभाष्ये विध्यर्थकनियामकत्वयोः चर्चा न विहिता तथापि भाष्यान्तरेणेदं निर्णेतुमवश्यं शक्यते। हेतुमति चेति सूत्रभाष्ये हेतुमतीति प्रकृत्यर्थविशेषणमुत प्रत्ययार्थविशेषणमिति विचारयामासुः। तत्र प्रत्ययार्थविशेषणपक्षे "पाचयति ओदनं देवदत्तो यज्ञदत्तेन" इति प्रयोज्ये कर्त्तरि कर्मसञ्ज्ञां प्राप्नोतीत्युक्तम्। तत्र कैयटे प्रकृत्यर्थस्य ण्यर्थे विशेषणत्वात् तदर्थव्यापारस्य प्रधानत्वात् तद्द्वारा प्रथमव्यापाराश्रयस्य ईप्सिततमत्वात् कर्मसञ्ज्ञायाः प्राप्तिरिति प्रतिपादितम्। तस्य समाधानभाष्ये भगवद्भिरुक्तम्– यत्तावदुच्यते पाचयत्योदनं देवदत्तो यज्ञदत्तेनेति प्रयोज्ये कर्त्तरि कर्मसञ्ज्ञां प्राप्नोतीति। गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ इति नियमार्थं भविष्यति – "एतेषां ण्यन्तानां यः कर्त्ता स णौ कर्मसञ्ज्ञो भवति नान्येषामिति।"पाचयति देवदत्तो यज्ञदत्तेनेति मुख्यव्यापाराश्रयस्य यथा कर्त्तृसञ्ज्ञा प्राप्ता तथैव प्रयोज्यस्यापि प्रथमव्यापाराश्रयत्वात्, कर्मसञ्ज्ञायाः परत्वात् कर्तृसञ्ज्ञा प्राप्तेति नाशङ्कनीयम्।यतोहि "अन्यानधीनत्वरूपमार्थप्राधान्यस्य शाब्दप्राधान्यस्य च प्रयोजकव्यापारे सत्त्वात्, प्रधानकार्यं सर्वतो बलवदित्यस्य जागरूकत्वात् तदनुरोधिन्याः सञ्ज्ञाया अपि बलवत्वात् प्राप्तां कर्मसञ्ज्ञां बाधनार्थं नियमार्थेयं सञ्ज्ञा। प्रधानकार्यस्य बलवत्ता कैयटेन "आ कडारादेका सञ्ज्ञा"इति सूत्रे प्रतिपादिता।तथाहि– प्रत्ययार्थस्य प्राधान्यात्तत्प्रयुक्तया कर्मसञ्ज्ञा प्रवर्त्या। गुणप्रधानसन्निधौ प्रधानस्य प्रयोजकत्वे सम्भवति पृथग्गुणास्तद्विरुद्धं स्वकार्यं न प्रयुञ्जते।"

अत्रायं विशेषः– भाष्ये शब्दायतेः योगे कर्मसञ्ज्ञाया निषेधः शब्दः कर्म क्रिया यस्य स शब्दकर्मेत्यस्मिन् पक्षे एव कृतः, न तु शब्दः कर्मकारकं यस्येत्यस्मिन् पक्षेऽपि। उभावपि पक्षौ भगवद्भिः प्रतिपादितौ। शब्दः कर्म क्रिया इत्यस्मिन् पक्षे "शृणोत्यादीनाञ्चोपसङ्ख्यानमशब्दक्रियत्वाद्[6]" इति वार्त्तिकं पठनीयम्। शब्दः कर्म कारकमित्यस्मिन् पक्षे शब्दकर्मण इति चेद् "जल्पतिप्रभृतीनामुपसङ्ख्यानमि[7]"ति वार्त्तिकं पठनीयम्। शब्दायतेः

निषेधोऽकर्मकत्वात्तु नाकार्षुः। अत्र कैयटस्तु शब्दायतेः विषयेऽकर्मकत्वादपि प्राप्तिं प्रदर्शितवान्। नागेशस्तु उद्योते "शब्दक्रियाणामिति चेद्धवयत्वादीनां प्रतिषेध" इति भाष्यप्रामाण्याद् अन्यादृशशब्दायतेः अकर्मकत्वाद्यदि प्राप्तिश्चेत्तत्र प्रतिषेधे मानाभावेन कैयटं चिन्त्यमुवाच।

युक्तायुक्तसमीक्षणम् –

हेतुमति च इति भाष्ये भगवन्तः भाष्यकाराः हेतुमति इत्यस्य प्रकृत्यर्थविशेषणत्वं प्रत्ययार्थविशेषणत्वं वेति विचारक्रमे यथाश्रुते प्रत्ययार्थविशेषणत्वस्य असन्दिग्धत्वेऽपि प्रमाणेद्वयसजित्यादि सूत्रे स्त्रियामित्यादिषु च यथा वाचकत्वरूपविषयत्वं सप्तम्यर्थः तथैवात्रापि वाचकत्वरूपविषयत्वं सप्तम्यर्थं स्वीकृत्य प्रकृत्यर्थविशेषणत्वमपि सम्भवतीति प्रतिपादितवन्तः। ततः प्रकृत्यर्थविशेषणे स्वीकृते 'उक्तः करोति''प्रेषितः करोति' इत्यत्र प्रयोजकव्यापारवाचकाभ्यां क्रमशः वच्–प्रेष्–इत्येताभ्यां णिच्–प्रसङ्गरूपो दोषः, स चानिष्टः। अस्य दोषस्य कारणं वाचकान्तरसत्त्वेऽपि उक्तार्थानामप्रयोग इति न्यायेन ध्वनितम्। पुनः दोषान्तरानपि प्राहुः–

पाचयत्योदनं देवदत्तो यज्ञदत्तेनेति इत्यत्र उभयोः प्रयोज्यप्रयोजकयोः कर्त्रोः प्रधानत्वाद् लेनाभिधानं प्राप्नोति। पुनश्च गमितो ग्रामं देवदत्तो यज्ञदत्तेन इत्यत्र उभयोरपि व्यापारयोः धातुवाच्यत्वात् तयोः अव्यतिरिक्तत्वाद्गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थाऽऽसवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च इति सूत्रेण कर्तरि क्तप्रत्ययापत्तिः।

व्यतिभेदयन्ते व्यतिच्छेदयन्ते इत्यादौ उभयोरपि व्यापारयोः प्रकृतिवाच्यत्वाद् न गतिहिंसार्थेभ्यः इति सूत्रेण कर्तरिकर्मव्यतिहारे इत्यनेन प्राप्तस्य आत्मनेपदस्य निषेधो भविष्यति। अतः प्रकृत्यर्थविशेषणपक्षं परित्यज्य प्रत्ययार्थविशेषणपक्षं प्रतिपादितवान्।

प्रत्ययार्थविशेषणपक्षेऽपि पाचयत्योदनं देवदत्तो यज्ञदत्तेनेतीत्यत्र प्रधानेन प्रयोजकव्यापारेण आप्यमानत्वात् कर्मसञ्ज्ञा प्राप्नोतीति दोषः उक्तः, तस्य समाधाने गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि इत्येतन्नियमार्थं भविष्यति– एतेषामेव ण्यन्तानां यः कर्ता स णौ कर्मसञ्ज्ञो भवति, नान्येषामित्यत्र भगवद्भिः मुक्तकण्ठेनास्य नियमार्थत्वं प्रतिपादितम्। अस्य नियमार्थत्वं हरिणाऽपि स्पष्टीकृतम्–

गुणक्रियायां स्वातन्त्र्यात् प्रेषणे कर्मताङ्गतः।
नियमात्कर्मसञ्ज्ञायाः स्वधर्मेणाभिधीयते[8]।।

अस्यार्थः– प्रयोजकप्रयोज्ययोः मध्ये प्रयोज्यव्यापारः गौणव्यापारः तदाश्रयस्य स्वातन्त्र्येण विवक्षायां कर्तृसञ्ज्ञा प्राप्ता, अथापि मुख्यप्रयोजकव्यापारेण आप्यमानत्वात् कर्मसञ्ज्ञा प्राप्ता। तत्र गतिबुद्धि–इत्यादिसूत्रस्य नियामकत्वाद् गत्याद्यतिरिक्तेषु स्थलेषु पाचयति देवदत्तेन यज्ञदत्त इत्यादिषु प्रयोज्यकर्तृनिष्ठं कर्तृत्वं स्वधर्मेण अर्थात् स्वोत्तरविधीयमानतृतीयाविभक्त्या अभिधीयते कथ्यते।

यद्यपि आकडारादेका सञ्ज्ञा इति सूत्रभाष्ये उभयथा हि आचार्येण शिष्याः सूत्रं प्रतिपादिताः इति द्विविधो न्यासः प्रदर्शितः आ कडारादेका सञ्ज्ञा, प्राक्कडारात् परं कार्यम् इति। ततः प्राक्कडारात् परं कार्यम् इति पक्षे दोषाः प्रदर्शिताः, तत्र गतिबुद्ध्यादीनि ण्यन्तानि कर्मकर्तृसञ्ज्ञां प्राप्नुवन्ति। आरम्भसामर्थ्यात् कर्मसञ्ज्ञा, परं कार्यत्वाच्च कर्तृसञ्ज्ञेत्युक्तम्। अत्र आरम्भसामर्थ्याद् इत्यस्य गतिबुद्धीत्यादिसूत्रारम्भसामर्थ्यादित्यर्थः। यदि सूत्रं नियामकं स्यात् तदा सूत्रस्य नियामकत्वात् कर्मसञ्ज्ञा इत्येव ब्रूयात्। अतः सूत्रं विध्यर्थकम्।

किञ्च कर्तुरीप्सिततममिति सूत्रेण यदा कर्मसञ्ज्ञा विधीयते तदा कर्तृत्वस्योपस्थितिः आदौ आवश्यकी। अतः पूर्वोपस्थितिरूपमन्तरङ्गं भवति कर्तृसञ्ज्ञा कर्मसञ्ज्ञापेक्षया अतः प्रयोज्यव्यापाराश्रयस्य कर्तृसञ्ज्ञा प्राप्ता, तां प्रबाध्य कर्मसञ्ज्ञां विधातुं प्रकृतं सूत्रमतः सूत्रमिदं विध्यर्थकम्।

किञ्च कर्तृसञ्ज्ञामन्तरा न कर्मसञ्ज्ञा सम्भवति अतः कर्तृसञ्ज्ञा कर्मसञ्ज्ञायामुपजीव्याऽपि अस्ति। अतः प्रकृतस्य सूत्रस्य विध्यर्थकत्वम्। अत एवोक्तम्–

परत्वादङ्गरत्वादुपजीव्यतयाऽपि च।
प्रयोज्यस्यास्तु कर्तृत्वं गत्यादेर्विधितोचिता[9]।।

एवं पूर्वोक्तप्रमाणेनास्य विध्यर्थकत्वं न। यतोहि प्रथमो यो हेतुः परत्वं तन्नयुक्तम्। आ कडारादेका सञ्ज्ञा इति सूत्रे कैयटेन प्रधानकार्यस्य सर्वतो बलवत्त्वं प्रतिपादितम्[10]। अतः प्रधानकार्यविषये परत्व–हेतुना कर्तृत्वापादनमयुक्तम्। प्रयोजकव्यापारे प्राधान्यञ्च अन्यानधीनञ्चरूपमार्थम्, शाब्दञ्च[11]। यद्यपि उद्देश्यत्वरूपमार्थप्राधान्यं प्रयोज्यव्यापारेऽपि अस्ति। तथापि प्रयोजकव्यापारे उभयविधस्यापि प्राधान्यस्य सत्त्वात्

तन्निरूपितसञ्ज्ञायाः प्राबल्यमङ्गीकार्यम्। किञ्च व्याकरणस्य शब्दशास्त्रत्वात् शाब्दप्राधान्यमेव मुख्यम्। तच्च प्रयोजकव्यापारेऽस्ति, अतः प्रयोजकव्यापारस्यैव प्राधान्यम्। अतः प्रथमो हेतुरसङ्गतः।

द्वितीयो हेतुरपि असमीचीनः। कर्तुरीप्सिततमं कर्मेति सूत्रे कर्तृपदेन न कर्तृसञ्ज्ञा गृह्यते, अपितु कर्तृपदं स्वातन्त्र्योपलक्षणम्। स्वातन्त्र्यञ्च प्रकृतधातूपात्तप्रधानीभूतव्यापाराश्रयत्वम्। अन्यथा यज्ञदत्तः देवदत्तं ग्रामं गमयति इत्यादौ देवदत्तस्य कर्तृसञ्ज्ञाभावात् तन्निष्ठव्यापारेणाप्यमानस्य ग्रामस्य कर्मसञ्ज्ञा न स्यात्। यदा कर्तृपदं स्वातन्त्र्योपलक्षणं स्वीक्रियते, तदा देवदत्तस्य कर्तृसञ्ज्ञाभावेऽपि तस्मिन् प्रकृतधातूपात्तप्रधानीभूतव्यापाराश्रयत्वमक्षतम्। अतः कर्तृसञ्ज्ञायाः कर्तुरीप्सितसूत्रेण कर्मसञ्ज्ञाविधानेऽहेतुत्वाद् द्वितीयोऽपि हेतुरसङ्गत एव। अनेनैव व्याजेन कर्तृसञ्ज्ञाया अनुपजीव्यत्वम् अपि सुस्थिरम्। अतः येन हेतुना पूर्वाचार्यैः प्रकृतसूत्रस्य विध्यर्थकत्वं प्रतिपादितं तत्सर्वम् आपाततः रमणीयमात्रम्। एवञ्च हेतुमति च सूत्रस्थभाष्यप्रामाण्येन आकडारादेका सञ्ज्ञा इति सूत्रे आरम्भसामर्थ्यादित्यस्य गत्यादिसूत्रस्यनियमसामर्थ्यादित्येवार्थोऽध्यवसेयः। हेतुमति च सूत्रे कैयटेनापि पाचयत्योदनं देवदत्तो यज्ञदत्तेनेति वाक्याय नियमेन तु प्रधानप्रयुक्तकार्यव्यावृत्तौ गुणनिमित्तकार्यसद्भावात्कर्तृत्वं भवत्येवेति वदता गतिबुद्धिसूत्रस्य नियामकत्वं प्रतिपादितम्। नागेशभट्टेनापि लघुशब्देन्दुशेखरे उक्तम्– कर्तुरित्येव सिद्धे णिजर्थेनाप्यमानस्य चेद् गत्यर्थादीनामेवेति नियमार्थम्।

अत्रायं विशेषः गतिबुद्धि–इत्यादिसूत्रे शब्दकर्मेत्यनेन शब्दः कर्मकारकं येषामिति विग्रहः स्वीक्रियते, व्याख्यानात्। व्याख्यानञ्च– यदि कर्मेत्यनेन क्रियारूपोऽर्थः विवक्षितः स्यात् तदा गतिबुद्धिप्रत्यवसानशब्दार्थेऽत्येवं सूत्रं न्यस्तं स्यात्, तथा न कृतमतः कर्मेत्यनेन कर्मकारकमित्येव विज्ञायते। न च संयोगादेः अभिधानियामकत्वेन प्रसिद्धत्वात् प्रकरणमपि अभिधानियामकम्। तथा च प्रकृते कारकाधिकाररूपस्य अस्ति ज्ञानरूपं प्रकरणम्। तथा च कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमस्यैव ग्रहणमिति न्यायेन कर्मेत्यनेन कर्मकारकस्यैव ग्रहणं भविष्यतीति वाच्यम्, संख्याया अतिशदन्ताया कन् इत्यनेन त्यन्तेभ्यः शदन्तेभ्यश्च सङ्ख्याशब्देभ्यः कन् प्रत्ययविधानेन, त्यन्तानां शदन्तानां च कृत्रिमसंख्यात्वाभावाद् इह व्याकरणशास्त्रे उभयगतिः अर्थात् कृत्रिमाकृत्रिमयोः उभयोरपि ग्रहणं क्रियते। अत एव प्रवृत्ता परिभाषा उभयगतिरिह भवति[12]। इह व्याकरणशास्त्रे उभयगतिः भवतीत्यन्वयः।

सूत्रे अणि इत्यनेन हेतुमति–सूत्रविहितस्य णेः ग्रहणं कर्तव्यम्। अत्र प्रमाणं भक्षेरहिंसार्थस्य न इति निषेधार्थकं वार्तिकम्। अन्यथा भक्ष्–धातोः चुरादिगणपठितत्वात्, कदापि ण्यन्ताभावो न स्यात्। तथा च अण्यन्तावस्थायाः कर्तुरभावात् कर्मसञ्ज्ञाया अप्राप्तेः तत्रकर्मसञ्ज्ञानिषेधाय वार्तिकारम्भः व्यर्थः स्यात्। तदेव ज्ञापयति यद् अण्यन्तावस्था–इत्यनेन हेतुमति च इति सूत्रविहित–ण्यन्ताभावावस्था एव गृह्यते। स णौ इत्यत्रापि हेतुमति च सूत्रविहितं णिजेव गृह्यते।

निष्कर्ष :– हेतुमति च सूत्रभाष्यप्रामाण्याद्, दीक्षितप्रभृतिभिः विध्यर्थकत्वे प्रदर्शितस्य हेतोः हेत्वाभासत्वात्, कैयटनागेशाभ्यामपि नियामकत्वस्य समर्थितत्वात् सूत्रमिदं नियामकम्। सूत्रे शब्दकर्मघटक–कर्मेत्यनेन कर्मकारकं गृह्यते न तु कर्तृकर्मव्यतिहारे–सूत्रवत् क्रियावचकम्। सूत्रेऽस्मिन् णि–इत्यनेन हेतुमति च सूत्रविहितं णिरेव गृह्यते।

सन्दर्भ–सूची :–

1. अष्टाध्यायी, १/४/४६.
2. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, पृ.सं ४०५.
3. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, पृ.सं ४०५.
4. प्रौढमनोरमा, पृ.सं १०८.
5. प्रौढमनोरमा, पृ.सं १०८.
6. महाभाष्यम्, पृ.सं. ३६७.
7. महाभाष्यम्, पृ.सं. ३६८.
8. प्रौढमनोरमा, पृ.सं१ ०८.
9. प्रौढमनोरमा, पृ.सं १०८.
10. लघुशब्देन्दुशेखरः, पृ.सं ६५.
11. लघुशब्देन्दुशेखरः, पृ.सं ६५.
12. परिभाषेन्दुशेखरः, पृ.सं ३२.

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. प्रौढमनोरमा, श्रीमद्भट्टोजिदीक्षितः, चौखम्बाविद्याभवनम्, वारणसी, २०१५.
2. लघुशब्देन्दुशेखरः, श्रीनागेशभट्टः, राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, तिरुपतिः, २००७.
3. व्याकरणमहाभाष्यम्, महर्षिपतञ्जलिः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नवदेहली, २००६.
4. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, श्रीमद्भट्टोजिदीक्षितः, चौखम्बासुरभारतीप्रकाशनम्, २०१२.
5. काशिका, वामनजयादित्यौ,ताराप्रिंटिंगवर्क्स, वाराणसी, १६८८.
6. प्रक्रियाकौमुदी, श्रीरामचन्द्राचार्यः, संस्कृतप्राकृतग्रन्थमालाधिकारी, १६२५.

Transforming Blended Learning with Artificial Intelligence : A Comprehensive Study

Dr. Archana Pandey*

Abtrac :- *Artificial Intelligence based technologies such as machine learning algorithms, natural language processing, and intelligent tutoring systems are providing automating administrative tasks and offering task completion in span of time. Blended learning combines traditional face-to-face instruction with online learning has gained significant attraction in educational settings. Artificial Intelligence in Education have the potential to transform education by providing personalized learning experiences to student performance. Understanding the relationship between blended learning and artificial intelligence (AI) is crucial as it has the potential to transform educational practices and improve learning outcomes. The study explored the theoretical underpinnings of the relationship between blended learning and AI, providing a foundation for future empirical research. The study comprehended that Integrating AI into blended learning environments has potential to significantly enhance the personalization and effectiveness of educational experiences.*

Introduction :- Blended learning is an educational approach that combines traditional face-to-face classroom methods with online digital media. By integrating various teaching modalities, blended learning aims to enhance student engagement, improve learning outcomes, and provide greater access to educational resources (Graham, 2016). Blended approach allows tailored learning experience, accommodating different learning styles and pace including a mix of synchronous and asynchronous activities. As educational institutions increasingly adopt blended learning models, understanding its components and benefits becomes crucial for educators and learners alike.

Artificial Intelligence in Education : Artificial Intelligence being integrated into educational settings, offering new possibilities for enhancing teaching and learning processes. AI technologies, such as machine learning algorithms, natural language processing, and intelligent tutoring systems, have the potential to transform education by providing personalized learning experiences, automating administrative tasks, and offering insights into student performance. In the context of blended learning, AI can be used to tailor educational content to individual learners' needs, predict learning outcomes, and provide real-time feedback and support. *Despite the advancements in AI, there is lack of comprehensive theoretical studies examining how AI can be effectively integrated into blended learning environments (Vincent & Vlies, 2024)* . As AI continues to evolve, its application in education promises to address some of the challenges faced by traditional and blended learning models, ultimately improving educational outcomes and accessibility.

Research Objectives

1. To examine the current applications of AI in blended learning environments.
2. To identify the benefits and challenges associated with its integration, and propose strategies for effectively leveraging AI to improve educational outcomes.

AI-Driven Personalization of Learning Experiences : Blended Approach :- By leveraging machine learning algorithms and data analytics, AI systems can tailor educational content to meet the unique needs and preferences of individual learners. These systems analyze a vast array of data

***Assistant Professor, Dr. Babasaheb Ambedkar Open University, Ahmedabad-Gujarat, 382481.**

points, including students' learning styles, past performance, and engagement levels, to create customized learning pathways (Pardos & Jarvela , 2023) . The personalization not only enhances the learning experience but also improves student outcomes by ensuring that learners receive content that is most relevant and challenging for their current level of understanding. AI-driven personalization fosters a more engaging and effective learning environment, allowing educators to focus on facilitating deeper learning and critical thinking skills.

AI in Student Assessment: Self Paced Blended Learning :- Automated grading systems, powered by AI, offer a scalable solution for evaluating student performance across various types of assessments, from multiple-choice questions to complex essays (Hao & Ma, 2021). These systems reduce time and effort required for grading and provide consistent and objective evaluations. Additionally, AI-driven feedback systems can offer personalized, real-time feedback to students, helping them understand their strengths and areas for improvement. The immediate feedback loop encourages self-reflection and fosters a growth mindset among learners (Siemens & Jonassen, 2018). By streamlining the assessment process and enhancing feedback quality, AI contributes to a more efficient and effective educational experience.

Leveraging AI for Blended Learning : Challenges and Opportunities

Technological Limitations and Ethical Considerations :- The integration of artificial intelligence (AI) into blended learning environments presents both significant challenges and opportunities. While AI has made remarkable strides, it still faces issues related to ***data privacy, algorithmic bias, and the need for vast amounts*** of data to function effectively. These limitations can hinder the seamless integration of AI into educational settings, where data privacy is paramount, and the diversity of learners must be respected (**Warschauer, 2019).** Moreover, ethical considerations arise concerning the use of AI in education, particularly regarding the transparency of AI decision-making processes and the potential for AI to perpetuate existing biases. Ensuring that AI systems are designed and implemented with ethical guidelines in mind is crucial to fostering trust and acceptance among educators and learners(**Iqbal & Memon,2023).**

Artificial Intelligence And Blended Learning: Future and Trends :- By leveraging data-driven insights, educators can create more effective and targeted learning experiences. The development of AI-driven adaptive learning platforms continuously evolve based on learner interactions and feedback (Azevedo & Silva, 2023). These platforms can provide a more dynamic and responsive learning environment, catering to the diverse needs of students. Additionally, advancements in natural language processing and machine learning are expected to enhance AI's ability to understand and respond to human language, making AI-driven educational tools more intuitive and user-friendly. As these trends continue to evolve, they will likely drive the widespread adoption of AI in blended learning, ultimately leading to more personalized and effective educational experiences (Zheng & Yang, 2023)

Effective Ai Implementation : Interdisciplinary Collaboration :- The successful implementation of AI in blended learning hinges on interdisciplinary collaboration among educators, technologists, and researchers. This collaboration fosters a comprehensive approach to integrating AI, ensuring that technological advancements align with educational needs and objectives. Educators provide insights into pedagogical strategies and learning outcomes, while technologists contribute expertise in AI development and deployment. Researchers play a critical role in evaluating the effectiveness of AI interventions and identifying areas for further exploration. This collaborative approach facilitates the development of AI systems that are not only technologically advanced but also pedagogically sound. Furthermore, interdisciplinary

collaboration encourages the sharing of knowledge and resources, promoting innovation and continuous improvement in AI-enhanced learning environments. By fostering a culture of collaboration, stakeholders can address challenges and leverage opportunities to enhance the quality and accessibility of blended learning through AI.

Conclusions :- The study explored the transformative role of artificial intelligence (AI) in enhancing the utilization of blended learning environments. Through a comprehensive analysis of current educational practices, the research identified key areas where AI technologies significantly contribute to the effectiveness and efficiency of blended learning. The findings highlighted that AI facilitates personalized learning experiences, optimizes resource allocation, and supports real-time feedback mechanisms, thereby improving student engagement and learning outcomes. The integration of AI in educational settings was shown to bridge gaps between traditional and digital learning methodologies, offering a more cohesive and adaptable learning experience.

Implications for Educators and Policymakers :- Educators and policymakers are encouraged to embrace AI-driven tools and platforms to maximize the potential of blended learning environments. It is recommended that educational institutions invest in AI technologies that support adaptive learning systems, enabling personalized education paths tailored to individual student needs. Policymakers should consider developing frameworks and guidelines that promote the ethical use of AI in education, ensuring data privacy and security. Furthermore, training programs for educators should be implemented to enhance their understanding and skills in utilizing AI tools effectively, fostering a culture of innovation and continuous improvement in teaching practices.

References :-

1. Azevedo, R., Leite, J. P., & Silva, J. P. (2023). The ethical implications of artificial intelligence in education: A critical review. *TechTrends*, *67*(6), 1-16.
2. Graham, C.R. (2016) 'Blended learning', *Education* [Preprint]. doi:10.1093/obo/9780199756810-0156.
3. Hao, K., & Ma, J. (2021). The impact of artificial intelligence on higher education: A review. *IEEE Access*, *9*, 101273-101285.
4. Iqbal, H., & Memon, A. A. (2023). Artificial intelligence in education: A review of challenges and opportunities. International Journal of Emerging Technologies in Learning (IJET)**,** *18*(10), 1-22
5. Pardos, Z. A., & Järvelä, S. (2023). Artificial intelligence in education: Promises and perils for teaching and learning. *International Journal of Educational Technology in Higher Education*, *20*, 1-22.
6. Siemens, G., & Jonassen, D. H. (2018). *Handbook of research on educational communications and technology*. Springer.
7. Vincent-Lancrin, S., & van der Vlies, J. (2024). Opportunities and challenges in higher education arising from AI: A systematic literature review (2020–2024). *Journal of Infrastructure Policy and Development*, *8*(11), 8390. Retrieved from ResearchGate.
8. Warschauer, M. (2019). *Technology and social inclusion: Rethinking the digital divide*. Routledge.
9. Zheng, Y., & Yang, Q. (2023). Artificial intelligence in education: A review of challenges and opportunities. *Frontiers in Artificial Intelligence*, *6*, 1173200.

The Diversity and Innovation inherent in The Antiquity of the Indian Knowledge System

Aziz Ibrahim Chhrecha*

Abstract :- Indian ancient traditional knowledge system is unique and has many roots of learning relevant to any time. It has evolved, and different chapters of ancient Indian Knowledge are classified into various sections. It has its history. Recently, interest in diagnosing such Knowledge to find out the most relevant forever is increasing and is necessary for sustainability. That would help us to improve our efforts to enhance human welfare. Therefore, there is a need to analyze the nature and history of those Knowledge, philosophy and values related to human welfare. Such an attempt to analyze the history of the ancient Indian knowledge system is made in this paper.

The primary purpose of this paper is to analyze the evolution of the ancient Indian knowledge system and related philosophy relevant to human welfare. The paper reviews different sections of the ancient Indian knowledge system, the associated philosophy, and how they evolved. Indian ancient Knowledge and education system was strongly built by philosophy for human welfare. In fact, it was more concerned with seven Janmas (Births) rather than the current living in the world. The Indian knowledge system had two critical concepts, "Jnana" and "Ajnana" which may be referred to as concurrent with Vedanta and Vyavahara (Business). All these issues are discussed in the paper.

Key Words: Ancient Knowledge, Birth and Rebirth, Vedanta and Business, Philosophy

Introduction : Indian ancient traditional knowledge system is unique and has many roots of learning relevant to any time. It has evolved, and different chapters of ancient Indian Knowledge have been classified into various sections over time. It has its history. Recently, interest indiagnosing such Knowledge to find out the most relevant forever is increasing and is necessary for sustainability. That would help us to improve our efforts to enhance human welfare. Therefore, there is a need to analyze the nature and history of those Knowledge, philosophy and values related to human welfare. India is the land where the hopes and aspirations of humankind have always been nurtured. Science, medicine, mathematics, philosophy, religion, and astronomy may all trace their roots to India. India is often referred to be "the cradle of human civilization," "the mother of speech," "the grandmother of stories and customs," and similar titles. India is a very unique country. Each state has its culture, attire,food, environment, nature etc. However, something is still familiar in the entire Indian religion, and that common factor is the culture of India. Indian culture is the oldest living culture in the whole world. Many civilizations and cultures were at their prime at some point but are no more there. Either they are not living or have not been practised. Then what makes it the oldest living culture in the whole world? The foundation or base makes Indian culture strong. The basis of Indian culture or civilization is Knowledge. Knowledge is abundant in our Indian culture.Objectives: The primary purpose of this paper is to analyze the evolution of the ancient Indian knowledge system and related philosophy relevant to human welfare. The specific objectives are;

1. To review the literature on the ancient Indian knowledge system.
2. The philosophy of the Indian ancient knowledge system. (Ethics)
3. To identify the relevance of the potentials of the Indian knowledge system in the present context.

The paper reviews different sections of the ancient Indian knowledge system, the associated philosophy, and how they evolved. Indian ancient Knowledge and education system was strongly built by philosophy for human welfare. It was more concerned with seven Janmas (Births) rather than the current living in the world. The Indian knowledge system had two critical concepts, "Jnana" and "Ajnana" which may be referred to as concurrent with Vedanta and Vyavahara(Business). all these issues are discussed in the paper.

*** Ph.d. Scholar, Department of Arts, Hemchandrachry North Gujarat University -Patan**

Some important places of Knowledge (Vidyastanas): There are 14 places of Knowledge. They are called Chaturdasha Vidyastana. Vedas It is well known that the Vedas are the oldest surviving literary works in the whole world. The experiences of the Rishis (sages) poured out in the form of poetry came to be known as Mantras, which make up the content of the Vedas. Veda means 'knowledge'. 'Veda' is derived from the Sanskrit word 'vid'. As knowledge Veda is one. Vedas are called 'Apaurusheya, which means not created by men. These are revelations of different Rishis (Sages-Whom we can refer to as subjective scientists) to students. Vedas are also called Shruthi and Smriti. Shruti means heard, and Smriti means memory. From generation to generation, this Knowledge is handed over orally. When he found it to be written, Veda Vyasa met different Rishis, received this Knowledge orally, and began to write it. It may be the right time to preserve Knowledge because of reduced memory capacity. His work helped in the preservation of Knowledge. It helped in the production of Textbooks which are called Vedas. There are four Vedas: Rig Veda, Sama Veda, Yajur Veda and Atharvana Veda. All this effort in preserving the Vedas shows how much our ancestors cared for Knowledge and tried to preserve every letter. Due to such perfect preservation of the Vedic texts, the Vedas may be considered good archaeological sources of evidence for conducting research. Vedangas: They are six beautiful sciences that must be studied to understand Vedas correctly.

Puranas: They are 18 in number.

Mimamse: One of the six systems (Darshanas) of Indian Philosophy.

Dharmashastras: A Brahmanical collection of rules of life often in the form of metrical law book.

Darshanas: The six principal Hindu Darshanas are Samkhya, Yoga, Nyaya, Vaisheshika, Mimamsa, and Vedanta.

Upavedas (When Upavedas are added with this Knowledge, it is called Ashtadasha Vidyasthana.

Every place of Knowledge is beautifully documented and taught as a formal education. When we speak about the Indian knowledge system and education, we see Knowledge by itself, which deals with a different aspect of Life or which is necessary information or subjects to be studied by one individual. However, the deep purpose of it was human welfare.

Indian Ancient Philosophy :- Indian ancient knowledge system was value-based and more philosophical. One of the most notable aspects of the ancient Indian philosophy of Life is that despite attaching slight importance to physical beings, the significance of action in this material world is not undervalued. The physical universe serves as the laboratory of the human soul, where the person must receive methodical instruction to promote self-development. Life's simplicity and moral education's value for one's development are most highly valued in India's ancient civilization.

Karma Yoga :- The Indian philosophy was more concerned about the seven Janmas (Births) than the present birth or Life. So Indian philosophy emphasizes the theory of Karma. The Purusharthas are mentioned in the section on Karma. The term Purusharthas means "man's property" in the original Sanskrit. It is central to Hindu thought and describes the four noble pursuits one should make throughout their lifetime. Dharma (righteousness), Artha (wealth), Kama (desire), and Moksha (liberation) are the four Purusharthas (Liberation). Our Karma is dependent on these Purusharthas. It means all human endeavours are certainly meant for ultimate liberation. To find true freedom, we must cultivate a profoundly and comprehensively rewarding life. The Purusharthas offer a way to evaluate our Life and make good decisions. When we do our deeds, we should be harmonized between the three Purusharthas, which would help us achieve the ultimate goal of Moksha or Liberation.Karma or deeds decides our lives to come. If our Karma were evil in previous Janma (Births) then we suffer in our present Janma (Births). So in the present Janma (Births) itself, we must prepare for the next Janma (Births) by doing good deeds. Our deeds or Karma are responsible for Athma or soul suffering in the cycle of Life and death cycle.

Jnana and Ajnana: (Knowledge and Ignorance) :- Along with the seven Janma (Births) theories, our Indian Knowledge also speaks about Jnana (Knowledge) and Ajnana(Ignorance). These two aspects are concurrent with Vedanta and Vyavahara (Business). We need a guru there when we try to know about his Jnana and Ajnana. With the help of a guru, we can destroy the Ajnana, which is ignorance and attain

Jnana, that is, Knowledge, proper Knowledge. Let us try to differentiate between Jnana and Ajnana in the light of Vedanta. Lord Krishna in Geeta speaks about Dehamand Dehi. The concept of Deham is ignorance, and the concept of Dehi is Knowledge. For example: If an individual thinks he is a body, that is called Ajnana; that is ignorance. Moreover, if he thinks I am the Dehi who resides in the Deha, that is Jnana.Let us know the usefulness of Jnana. Whenever there is a thought that I am the body in us, we shall have birth and death,sufferings, miseries, difficulties, worldly bondage, and everything. We should liberate our souls from the circle of suffering. Just like we shall discard old clothes, we shall put on new ones. We enjoy changing clothes. The weapon cannot pierce through the body, fire can't burn it, water cannot do anything, and air cannot do anything. Panchabhutas cannot do anything to Atman. Panchabutas are powerless. When we realize we are the Dehi, not Deham that is called Jnana. Jnana is covered by Ajnana. That is why all are being deluded.

People fall into delusion because of this. The person who removes Ajnana with the help of Jnana attains Atma Jnana. To attain this, Ajnana should be removed. To get rid of Ajnana, the light of Jnana is essential. So here the question arise which should be first? Is either going or coming? To remove or to get rid of Ajnana, light is essential. Moreover, that light is 'Jnana'. Moreover, for this, we need one person's help, and he was called a Guru ("Gu" means ignorance and "Ru' means destroyer).Ignorance is seen as an obstacle to freedom in all schools of Hindu thought (Moksha). This lack of understanding is due to people confusing their sense of identity with their physical bodies. Our immoral, self-centred actions and the resulting pain result from our inability to break the cycle of enmity and dependence. Absolute freedom from the bonds of the senses and relief from all pain is only possible upon realization of the actual self (God, Brahman, Consciousness). It is believed that under the light of Vedanta, one can remove ignorance and liberate one's soul from the circle of Life and death. Not only that one can reform the society in which he lives and the religion which he follows. The three Acharyas- Shanakarachary in his Advaita (absolute Monism) philosophy, Madwacharya in his Dwaita (Dualism) philosophy and Ramanujacharya in his Vishistadvaita (qualified Monism) philosophy speaks about the relationship between Atman and Paramatman, that is the individual soul and supreme soul and suggests a different path for the Moksha or salvation. (Karma Marga, Jnana Marga, Bhakthi Marga).

Salvation or Moksha is either the complete merging of Athman (individual soul) with Paramathma (Supreme soul) or attainment of nearness with Supreme soul in which the relationship between Athma and Paramathma will be like Guru, his disciple or like master and his servant. One of the socio-religious reformers of 19th century India, Swami Dayananda Saraswathi, gave a call 'Go back to the Vedas' to say that the light of Vedas will help in the reformation. Vedantists believe that there is only one Purusha (Sanskrit for "spirit," "Person," "Self," or "awareness") and that everything else, including the mind and its many permutations, is only a superimposition onto this one Reality. Superimposition, also known as Maya, is the cause of the one seeming as many. This is because of the inherent ignorance (avidya) associated with it (illusion).

Importance of the study of Indian ancient Knowledge :- What can we learn about an inquiry from India's ancient texts? How exactly? If so, how much? The finest method of learning—inquiry into a topic of interest—has been supplanted in modern classrooms by organizing knowledge content (or "What to know"). How, rather than what, has always been the primary emphasis of India's knowledge heritage. Humanity has gotten itself into many problems because of all this new technology. The very survival of humanity is in jeopardy. Humanity's innate abilities are in jeopardy. To effectively deal with this challenge, a new educational system must be implemented that emphasizes the development of relevant new skill sets. Life skills that allowone to put Knowledge to practical use are just as crucial as the technical abilities necessary to access and utilize that information. The balancing act relies heavily on ancient Indian Knowledge. The principles of "Vasudhaiva Kutumbakam," which translates to "the entire world is a family," and "Sarve Bhavanthu Sukinah," which translates to "may everyone be happy," may be traced back to the Vedas. Since our forebears went to such lengths to protect it, maybe we should shift our focus from preservation to use. The mission of establishing Bharat as a hub for cutting-edge research will be realized. Indian Knowledge encompasses a vast array of disciplines,

including but not limited to astronomy, ayurveda, yoga, mathematics, computing, language and linguistics, metalworking, Rashi shastra (the science of Indian astrology), public administration, military technology, management science, and many others.Indians have made significant contributions to many different areas of study, including astronomy (through their understanding of planetary motions, the solar system, and the Earth's shape and diameter), botany (through their understanding of the properties of plants and herbs), medicine (through their discovery of zero and the decimal system, as well as approximation algorithms for computing Pi), linguistics (through their mastery of steelmaking), administration (through their grasp of taxation), and statistics (through their grasp of grammar).The fast expansion of human Knowledge, thanks to scientific and technological progress, has had far-reaching consequences for civilization. India has broken new ground in every sphere, including trade, technology, and development. However, this success has come with a price: a loss of spiritual connection and a decline in moral standards. Keeping the Upanishads' philosophy on Brahman (the global soul) and Atman (the individual soul) and the Bhagavad Gita's teachings on Karma yoga, Bhakti yoga, and Gyan yoga (the yoga of Knowledge) intact is crucial at such a time and place. The world looks to India for leadership, and we must find our identity in that tradition.As it is, our educational system is affected by Westernization ideas, too privatized and stripped of its traditional beauty. We focus only on literacy goals in the existing educational system.

However, this alone is not enough to bring about proper intellectual illumination in a person. Education must include Indian culture and history so that it may be internalized as a way of Life. By providing engaging courses on the Indian knowledge system to kids at a young age, the Indian educational system can ensure that all students get a high-quality education and a solid moral foundation from which to make ethical choices.We may fortify our feeling of who we are as Indians by learning about our ancestors via the study of India's ancient knowledge system and using that Knowledge in the modern world. Culture is significant in the larger social context. Our culture is heavily influenced by the books we read and the information we learn from them; "accepted wisdom" benefits greatly from the insights of the past. This is the continuity of ideas and values from generation to generation. It also includes concepts developed by appreciating our history, heritage, and primary cultures. Having this information inspires original thinking and fresh approaches. It makes sense for a nation like India, which has preserved much scientific Knowledge from the ancient world, to adopt this approach.The 2020 National Education Policy seeks to reorganize India's educational infrastructure within the context of the country's indigenous knowledge system. Values like modesty, honesty, discipline, independence, and respect for everything were stressed in our old educational system, which sought to nurture a whole person. All areas of Life were considered in the classroom as students were taught according to the Vedas and the Upanishads precepts. India's educational system has a long history of being user-friendly, realistic, and relevant.The New Education Policy 2020 acknowledges ancient India's illustrious history and calls attention to the current curriculum's integration of the works of ancient Indian academics like Charaka, Susruta, Aryabhata, etc.

Conclusion :- India should provide serious attention to preserving and promoting its cultural heritage, which is essential to the country's sense of self. India's new education policy aims to give pupils a sense of independence and a deep appreciation for India's complex and fascinating history, cultural heritage, and contemporary knowledge base and practices. The policy'sgoal is to help students become "true global citizens" by helping them gain the information, skills, values, and attitudes necessary to commit responsibly to issues like human rights, sustainable development and living, and global well-being.

References :-

1. Dr Vishwamithra Pandey: The essentials of Indian philosophy; CVG Publications, Bengaluru. First edition,2017
2. *Prof. Shrinivasa Varakhedi: Integration of IKS and ILs in Indian* ***Education through NEP2020; Central Sanskrit University, New Delhi***
3. ***M Raghavendra Prabhu: History of ancient India.***
4. ***Friedrich Max Muller: The six Systems of Indian Philosophy; Publisher, University Press of the Pacific, September,5, 2003.***

ꕥ★ꕥ

A Case Study on Accesibility and Tourism Related Problems Faced by International Tourists in Udaipur

Mr. Satish Singh**

Mr. Charu Dutt Sharma**

Abstract: Udaipur, also known as "the city of lakes" is one of the India's most beautiful and culturally rich destination. It has many stunning places like city palace, Lake Pichola, Saheliyon ki bari garden, Jagdish temple and so much more. The city also has lively festivals and traditional shopping markets. The outbound tourists often face certain challenges while traveling in India due to the language barriers and other problems, which could hinder their overall travel experience. The purpose of the paper is to assess the accessibility and tourism related challenges that outbound tourists might encounter. . A descriptive as well as research design which includes qualitative and quantitative methods are used. Outbound travelers are asked to complete an online survey in order to gather data. Bar graphs are used to assess the survey once it has been produced using Google Forms. There were open-ended questions. The Ministry of Tourism, reports, and reference websites were used to gather the secondary data. Future work may extend the current study to other tourist attractions in India to compare the difficulties that outbound tourists experience. Future research could also center on how such improvements have been made and assessed with regards to Udaipur's improvement over the years.

Keywords: Challenges, Factors, Outbound Tourists, Inflow and outflow, Udaipur

Introduction: Udaipur is another city in Rajasthan and also called the "City of Lakes" it was established in 1559 A.D by the King Udai Singh II. Being recognized as the former capital of the Mewar kingdom the place is located near the Aravalli range which acts as a barrier between it and the Thar Desert. It is situated very close to Gujarat and is well linked by Airways, Roads and Railways with cities like Delhi, Mumbai and Jaipur. Being a culturally and aesthetically diverse city the tourism potential if the city is immense; for this reason, it has been christened the 'Venice of the East' because of the elaborate water system.

Tourism can be said to be one of the main sources of income in the city of Udaipur with people visiting places like the City Palace, Jag Temple, and Lake Pichola among others. The city is well known tourist destination center of romantic city and it has honored awards such as the Best Travel Destination Award. Travel also with agricultural and handmade items is benefit in the making of the financial income of the city. Five star hotels like Taj, Oberoi and Trident add more charm to this city and have richly benefited the economy of Udaipur.

The Rajasthan government has focused in the development of basic amenities for Udaipur and policies favorable to industrial and economic growth. In recent years, the focus for the development of Udaipur has been shifted to tourism, agriculture and industrial sectors which makes the city a favorable destination for investors and startups that can expect rapid growth in the future and projected figures. These factors compiled with its historical and aesthetically appealing and a growing economy it has the potential to attract tourists as well as investors.

Literature Review: (Rahman, 2015) Identified that tourism enhanced the living standard, business links and new business opportunities, increased investment in infrastructure, employment. However, it also increases the land and rent price, price of essential commodities and services, seasonally effect leakage issue. (Sawant, 2017)Suggested that local people should be provided awareness about tourism entrepreneurship to motivate and create interest to become an entrepreneur. Further, he mentioned that

---

*** Lecturer, IHM Ahmedabad.**

****(Lecturer, IHM Ahmedabad.**

academicians can play a vital role by introducing short term courses or training programs on tourism entrepreneurship. For this proper collaboration between academicians and industry can take place. **(Gnanapala & Sandaruwani, 2016)** Analyzed the local's attitude and perceptions on tourism development projects, it was found that developmental projects were essential for regional development. They proposed to implement the small scale tourism project by involving local people under the monitoring of government. It can be implemented in systematic way by forming community-based organizations.

Research Gap: Few Researchers studied tourism destinations in terms of socio-economic, social, economic and environmental impacts of tourism on host communities in developing countries. Few studies have been done in India. However, no one has taken Udaipur as a study area for the current research topic And Udaipur is one of the most attractive places to visit by both domestic and international tourists. Researchers should do a comprehensive research to find out the problems faced by the international tourist along with domestic and tourism brings a great revenue to the country

Significance of study: The importance of this research is in its ability to contribute to the existing theme of enhancing the total tourist experience in Udaipur for the international visitors. This research shall help the local authorities, businesses and other related sectors in understanding the factors that make tourists to visit their city and at the same time identify key factors that may pose challenges such as; physical barriers, language barriers as well as infrastructure barriers to tourists' access during their visit. Solving these problems will make not only the foreign tourist to visit Udaipur but also their pleasant stay will enhance the visibility of Udaipur on a worldwide level.In the same context, it will also necessary, for the purpose of future planning and development to study the trends of tourist inflow in the region over the last one decade. This research is also to identify the need for enhancement in transport, accommodation and other services for tourism and offer recommendations for the improvement of sustainable tourism development. In the end, this study helps sustained the growth of travel industry of Udaipur helping the local burger and in the same way facilitates the travel industry community all over the world.

Objectives of study:

1. To study the different factors which attract tourists to Udaipur.
2. To study and understand the problems faced by international tourists of Udaipur.
3. To explore the various kinds of development required by tourists in Udaipur.
4. To explore the inflow of domestic and international tourists of Udaipur in last 10 years.

Methodology: The primary data used for this research. Data is collected through online survey by sending it to outbound tourists. The survey is prepared through google forms and then analyzed through bar graphs. The questions were closed ended. The secondary data was collected through the reference websites, reports and ministry of tourism.

Year	Domestic	International
2010	582297	173016
2011	575444	177699
2012	588239	189373
2013	662092	185313
2014	720120	166936
2015	727266	165525
2016	756440	183964
2017	830784	190521
2018	929931	207016
2019	996718	188528
2020	355884	44588
2021	995563	5025

Sample Size: This survey was conducted among the international tourists of Udaipur on the voluntary basis through semi-structured questionnaire and interviews. Sample (n) = 66 persons. The data collected from this survey is presented, studied and analyzed for this research project.

The inflow of domestic and outbound tourists in Udaipur in last 10 years: This objective focuses basically on the number Domestic and International tourists visiting Udaipur in last 10 years. It is important that we know the statistics as this helps the government to focus how much development has to been done in the city according to the need of the people visiting Udaipur.

SOURCE: https://www.tourism.rajasthan.gov.in/annual-progress-report.html

Survey Analysis: The data analysis was based on answers of the structured questionnaire given to the outbound tourists. The interpretation based on each question is given below it.

1. What is your age group?

In response to above question maximum of the tourists are Between 18-30

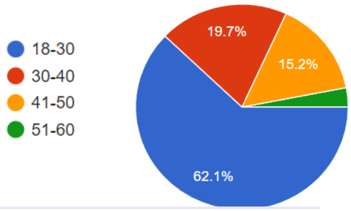

2. Which country are you travelling from?

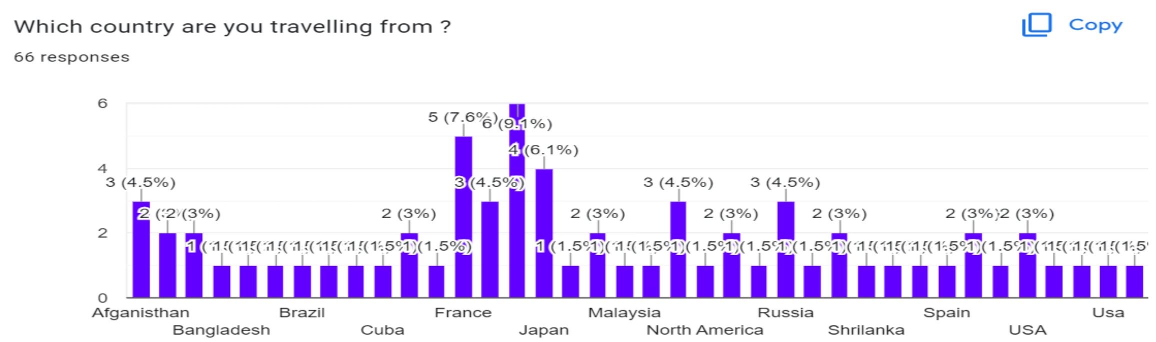

The following factors attract the outbound tourists to visit Udaipur:

1. **Historical Stories:** 54.5 % found it highly influential, 28.8 found it influential and 13.6% found it neutral.
2. **Culture**: 50% found it highly influential, 30.3% found it influential, 13.6% were neutral, 4.5% found it slightly influential and 1.5% found it not influential.
3. **Architecture:** 69.7% found it highly influential, 16.7% found it influential, 10.6% were neutral, 1.5% found it slightly influential and 1.5% found it not influential.
4. **Lakes:** 63.6% found it highly influential, 22.7% found it influential, 9.1% were neutral, 4.5% found it slightly influential and 0% found it not influential.
5. **Hotels:** 57.6% found it highly influential, 22.7% found it influential, 16.7% were neutral, 1.5% found it slightly influential and 1.5% found it not influential.
6. **Museums, National Parks and Aquarium:** 47% found it highly influential, 31.8% found it influential, 16.7% were neutral, 3% found it slightly influential and 1.5% found it not influential.
7. **Temples:** 53% found it highly influential, 21.2% found it influential, 24.2% were neutral, 0% found it slightly influential and 1.5% found it not influential.
8. **Rich Indian Hospitality:** 62.1% found it highly influential, 22.2% found it influential, 12.1% were neutral, 3% found it slightly influential and 0 % found it not influential.
9. **Street and antique Shopping:** 48.5% found it highly influential, 31.8% found it influential, 10.6% were neutral, 6.1% found it slightly influential and 3% found it not influential.

The factors contributing to challenges and negative experiences faced by the outbound tourists:

1. **Transportations:** 42.4% found it highly influential, 34.8% found it influential, 18.2% were neutral, 4.5% found it slightly influential and 0% found it not influential.
2. **Medical facilities:** 33.3% found it highly influential, 28.8% found it influential, 30.3% were neutral, 4.5% found it slightly influential and 3% found it not influential.
3. **Facilities for specially abled person:** 42.4% found it highly influential, 28.8% found it influential, 19.7% were neutral, 9.1% found it slightly influential and 0% found it not influential.
4. **Hygiene and cleanliness:** 39.4% found it highly influential, 34.8% found it influential, 13.6% were neutral, 9.1% found it slightly influential and 3% found it not influential.

5. **Car Parking:** 53% found it highly influential, 15.2% found it influentia0l, 24.2% were neutral, 7.6% found it slightly influential and 0% found it not influential.
6. **International Flight connectivity:** 45.5% found it highly influential, 30.3% found it influentia0l, 19.7% were neutral, 4.5% found it slightly influential and 0% found it not influential.
7. **Frauds:** 39.4% found it highly influential, 28.8% found it influentia0l, 24.2% were neutral, 3% found it slightly influential and 4.5% found it not influential.
8. **Infrastructure:** 40.9% found it highly influential, 37.9% found it influentia0l, 15.2 were neutral, 3% found it slightly influential and 3% found it not influential.
9. **Racism:** 45.5% found it highly influential, 18.2% found it influentia0l, 25.8% were neutral, 1.5% found it slightly influential and 9.1% found it not influential.

Findings: As we can observe based on the above survey the major factors which contribute to attracting outbound tourists in Udaipur are historical stories, architecture, hotels, lakes, Rich Indian Hospitality and culture. The major factors which contribute to challenges are facilities for especially abled person, car parking, international flight connectivity and public transportations.

Suggestions:

1. **Better Connectivity:** Improving the air and railway connectivity to Udaipur to make it easier for tourists to travel as international flights are not available at Udaipur airport.
2. **Accessible Tourism:** Provide facilities and services in ways which can be experienced by differently abled travelers for example tourists guides could learn sign language at city palace in case there is a hearing impaired person.
3. **Enhanced Local Transportations:** More options for local travelling and well maintained public transport like bus and train.
4. **Environmental Awareness:** Promoting ecofriendly practices in hotels and tourism activities also ensuring that nobody hampers the lake water quality.
5. **Marketing:** The marketing could be done by making the local people as the face of Udaipur and also targeted digital marketing could increase the tourism in Udaipur.
6. **Traffic and Road Infrastructure:** Better roads construction and traffic management on busy days. Lights must be switched on of the main roads for safety.

Conclusion: Through this research project we came to know the factors which attract the international tourists to Udaipur. We also got to know about different tourist attractions in Udaipur and the history behind it. We also got to see the culture of Udaipur and lifestyle of people living in Udaipur. We got to interact with foreign tourists and we understood the issues they have while travelling in Udaipur. We interacted with some tourists who were from countries which dint speak English so it was really hard to communicate with them. We understood the average number of international and domestic tourists travelling in Udaipur in last 10 years. We understood the various problems faced by international tourists and various solutions to them and the actions taken by Udaipur government for it.

References:

1. Kieti, J. S. (2007). Tourism and Socio-economic development in developing countries. Journal of sustainable tourism, 15(6), 735-748. doi:doi: 10.2167/jost543.0
2. Rahaman M. M. (2015). Impact,expoling the socio economic. Cardiff School of Management.
3. Sawant, D. M. (2017). Socio – Economic impacts of Tourism development at Aurangabad District. reseaerch gate . Retrieved 2020, from https://www.researchgate.net/publication/315492199
4. https://en.wikipedia.org/wiki/Udaipur
5. https://www.udaipuronline.in/city-guide/economy-of-udaipur
6. https://www.macrotrends.net/cities/21425/udaipur/population#:~:text=The%20c urrent%20metro%20area%20population,a%201.93%25%20increase%20
7. https://timesofindia.indiatimes.com/travel/destinations/7-interesting-facts-that-is/aricleshow/66007388.cms#:~:text=An% 20iconic%20wall%20that%20is%20n ext%20best%20to%20the%20Great% 20Wall%20of%20 China&text=Udaipur's%20Kumbhalgarh%20fort%20is%20a,the%20fort%20extends%2036%20km
8. https://www.welcomerajasthan.com/economy-rajasthan.htm

Occupational Stress, Job Satisfaction & Loyalty

A Comparative Case Study of Select Five – Star Hotels in Ahmedabad

Mr. Satish Singh**

Mr. Charu Dutt Sharma**

Abstract- The cutting-edge cadence of life is progressively requesting for numerous individuals. Considering that most individuals are investing a critical sum of time at work, their working conditions and their common physical and mental state at the working environment are playing a progressively critical part. Hence, work-related stretch has ended up a critical and pertinent issue for the representatives, causing physiological, mental, or indeed mental wellbeing issues. Word related push among workers can moreover contrarily influence their proficiency, efficiency, and increment turnover rates, which in turn will infer costs for the company. Work related stretch may be a complex and multifaceted concept and it should be examined not as it were as such, but moreover in connection to other vital variables affecting work conditions, such as work fulfilment and representative dependability. Neighbourliness industry as a working environment has higher dangers of word related push due to the nature of the benefit division and the passionate work. At the same time, individuals are one of the foremost important resources within the lodgings. Whereas there is an assortment of a research around word related stretch, work fulfilment, and worker devotion within the neighbourliness industry as such, the potential contrasts in these components between chain and autonomous lodgings are insulant considered. In this manner, the current investigate is pointing to address this understudied issue. Occupational Stress, Job Satisfaction, Loyalty. A comparative case study on selects five-star hotels of Ahmedabad.

Key Words: - Progressively, Numerous, Physiological, Autonomous, Investigate

Introduction: The current study intends to evaluate key workplace-related aspects and difficulties with relation to variations between chain and independent hotels, such as employee loyalty, job satisfaction, and occupational stress. This chapter explains the research's goals and objectives, provides an overview of the study's background and earlier research, and research issues and ideas that need to be investigated.

Eating and health are an integral part of our lives. Medical and scientific breakthroughs have made it possible to treat many serious diseases. However, people are now facing new challenges in terms of mental and physical health. The modern rhythm of life, characterized by globalization, urbanization, and intensive technological development, is increasingly demanding for many people. Given that most people are spending a significant amount of time at work, their working conditions, and their general physical and mental state at the workplace, this role is becoming increasingly important.

It can have a negative impact on the health and wellbeing of employees, including physical, psychological, emotional, and even mental health issues. Furthermore, it can negatively impact their work efficiency, performance, and service quality, and increase turnover rates, resulting in higher

However, occupational stress is a complex and multifaceted concept; therefore, it needs to be investigated not only as such, but also in relation to the other factors influencing the job situation of an individual.In any case, these vital components affecting representatives in diverse ways in the lodging industry are remaining understudied. In addition, the investigate on these subjects in terms of contrasts among different sorts of lodgings are missing and needs advance improvement.

*** Lecturer, IHM Ahmedabad.**

****(Lecturer, IHM Ahmedabad.**

Communication challenges within the hierarchical structure of hotels can also contribute to stress. Front-line staff may feel disconnected from decision-making processes, leading to a lack of control over their work environment. Effective communication channels and employee involvement in decision-making can help alleviate this stressor by fostering a sense of empowerment and shared responsibility.

Furthermore, the physical demands of certain hotel jobs, such as housekeeping, can contribute to stress-related issues. Repetitive tasks, strenuous activities, and exposure to various cleaning chemicals may pose health risks and increase the likelihood of musculoskeletal problems. Addressing these physical challenges is crucial to ensuring the well-being of employees engaged in physically demanding roles.

In conclusion, occupational stress in the hotel industry is a multifaceted issue influenced by several factors ranging from the demanding nature of the work to organizational dynamics and external challenges. Recognizing and addressing these stressors is crucial for promoting the well-being of hotel employees. Implementing supportive policies, fostering effective communication, and promoting a positive organizational culture are essential steps toward creating a healthier and more sustainable work environment in the hotel industry.

LITERATURE REVIEW

1. Occupational Stress:

- Research by Cooper and Marshall (1976) highlights the detrimental effects of occupational stress on employee well-being and job performance.
- Michie and Williams (2003) emphasize the importance of organizational factors such as workload, role ambiguity, and lack of support in contributing to occupational stress.
- Lee and Ashforth (1996) discuss the concept of role overload and its impact on stress levels among hotel employees.

2. Job Satisfaction:

- Herzberg's Two-Factor Theory (1959) suggests that job satisfaction is influenced by both intrinsic and extrinsic factors, such as recognition, achievement, and working conditions.
- Hoppock (1935) conducted early research on job satisfaction, highlighting the significance of factors like salary, supervision, and interpersonal relationships.
- Locke's Range of Affect Theory (1976) suggests that job satisfaction is influenced by the gap between individual expectations and actual job experiences.

3. Staff Loyalty:

- Meyer and Allen's Three-Component Model of Organizational Commitment (1991) suggests that staff loyalty is influenced by affective, continuance, and normative commitment.
- Schneider's Attraction-Selection-Attrition Theory (ASA; 1987) posits that organizational culture attracts and retains individuals who fit its values, leading to higher levels of loyalty.
- Research by Allen and Meyer (1996) explores the relationship between organizational commitment and turnover intentions, indicating that higher levels of commitment lead to lower turnover rates.

These studies provide a foundational understanding of the factors influencing occupational stress, job satisfaction, and staff loyalty within the context of the hospitality industry, particularly in five-star hotels. However, it is essential to conduct further research to explore these relationships in more detail and to identify specific interventions that can improve employee well-being and organizational outcomes.

Objectives Of The Reserch

1. To Study the several factors responsible for occupational stress among the staff of select five-star hotels in Ahmedabad.

2. To study the impact of these factors on employee's behavior and productivity.
3. To examine the level of satisfaction of employees working in select five-star hotels.
4. To study the employee loyalty towards the organization in context with occupational stress and Job satisfaction.
5. To suggest various methods to reduce occupational stress, enhance job satisfaction and loyalty towards the organization.

Research Methodology :- This research primarily relies on primary data. Information is gathered through an online survey by distributing questionnaires via email and social media platforms. The questionnaire is designed using an online survey tool. Data is analysed using pie charts and tables, which effectively supports achieving the desired outcomes. The questions are close-ended, encouraging respondents to share their experiences. Additionally, secondary sources such as reports, thesis, and books are used to reference previous studies on occupational stress, job satisfaction, and employee loyalty in five-star hotels.

Sample Size: To achieve the stated objective, data was collected from 27 respondents (working professionals) comprising 33.3% females and 66.7% males. The majority of respondents were aged between 18 and 24, with 3 individuals falling in the 25-40 age group. Students and the self-employed made up the largest portion of participants in the survey.

Data Collection

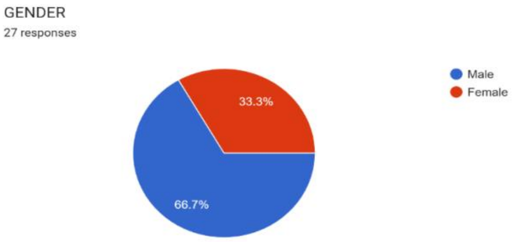

FIG NO.1 Male: The blue segment occupies approximately 66.7% of the chart. Female: The red segment represents around 33.3% of the responses.

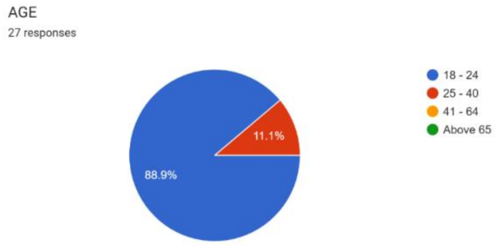

FIG NO.2 88.9% Most participants in this survey or study are within the 18-24 age range

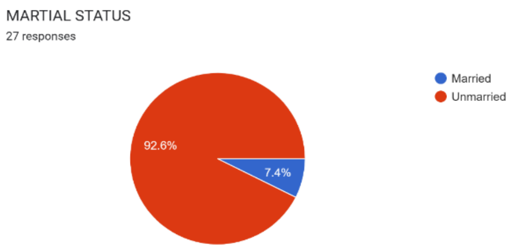

FIG NO.3 Unmarried: The large blue segment occupies approximately 92.6% of the chart. Married: The smaller orange segment represents around 7.4% of the responses.

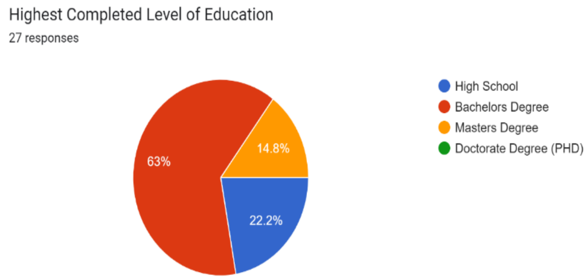

FIG NO.4 Most respondents have completed high school, while a smaller percentage hold bachelor's or master's degrees. Interestingly, there are no participants with a doctorate degree in this sample.

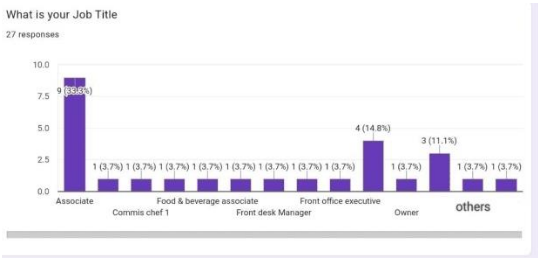

FIG NO.5.**Associates**: The largest group of

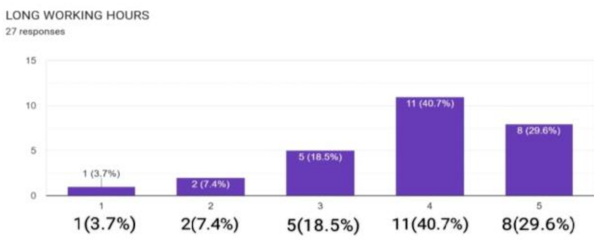

FIG NO.6 Eleven people 11(40.7%), most respondents are

respondents holds the job title of **"associates"**. They constitute the majority in this sample

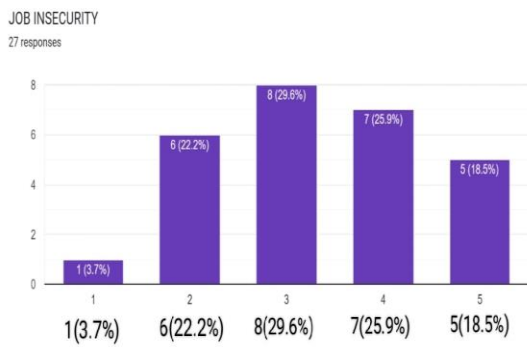

FIG NO.7 Eight people (29.6%), most respondents are neutral towards Job insecurity

agreeing towards Long Working Hours.

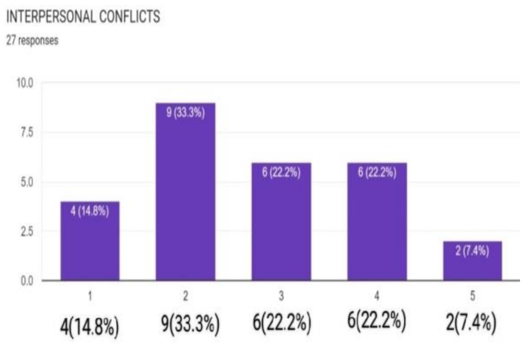

FIG NO. 8 Nine people (33.3%), most respondents disagree about it.

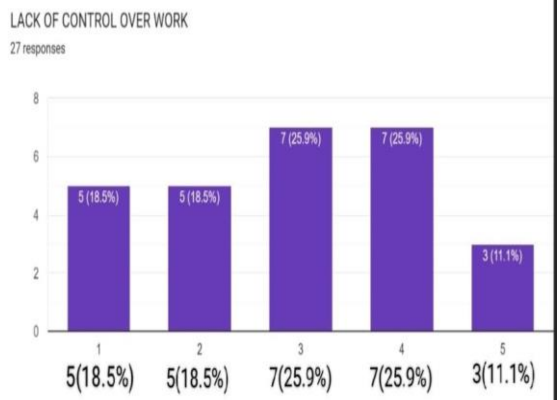

FIG NO.9 Seven people (25.9%), most respondents are neutral or do agree about lack of control over work.

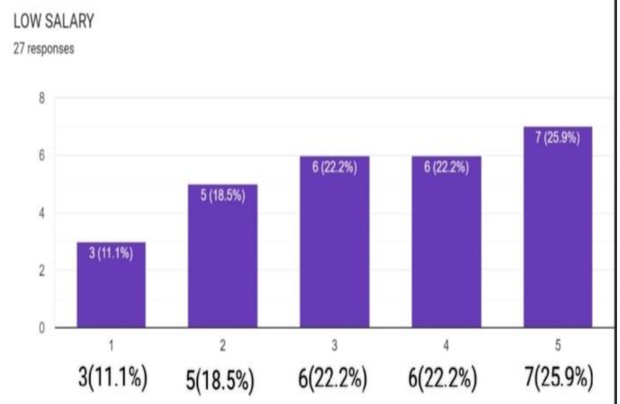

FIG NO.10 Seven people (25.9%), most respondents strongly agree about low salary.

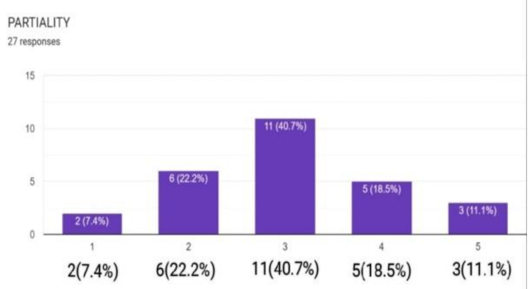

FIG NO. 11 Eleven people (40.7%), most respondents are neutral about partiality

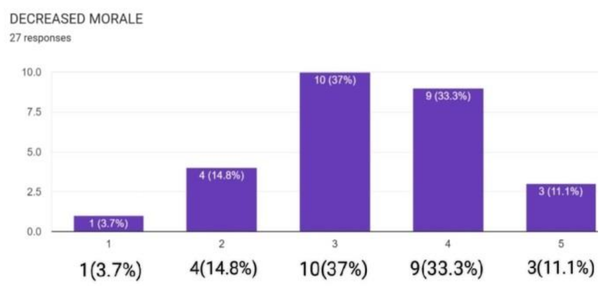

FIG NO.12Ten responses (37%), most respondents rated their morale at level 3 or 4, indicating a significant concern about decreased morale.

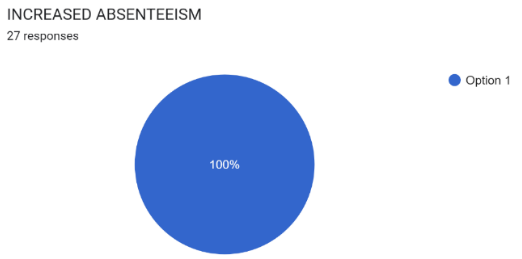

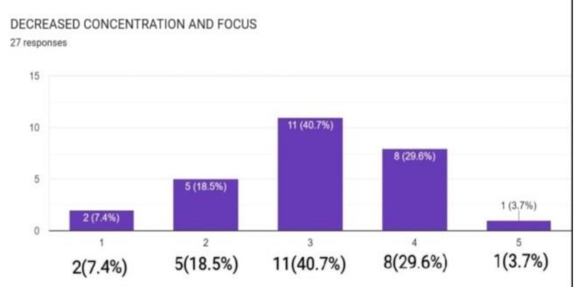

FIG NO.13

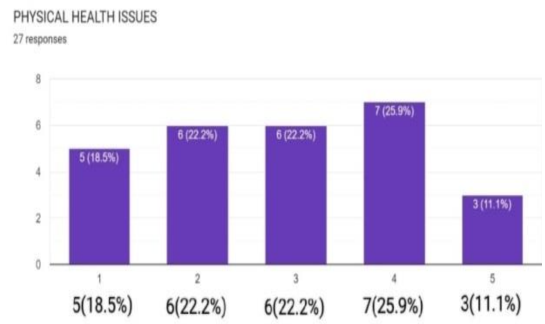

FIG NO. 14 Eleven people (40.7%), most respondents neutral about it.

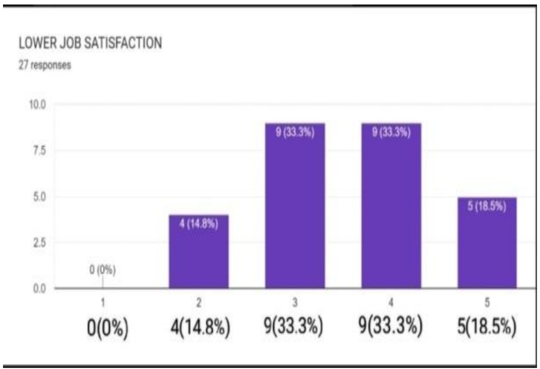

FIG NO.15 Seven people (25.9%), most respondents agree about it.

FIG NO. 16 Nine people (33.3%), most respondents are neutral or do agree about lower job satisfaction.

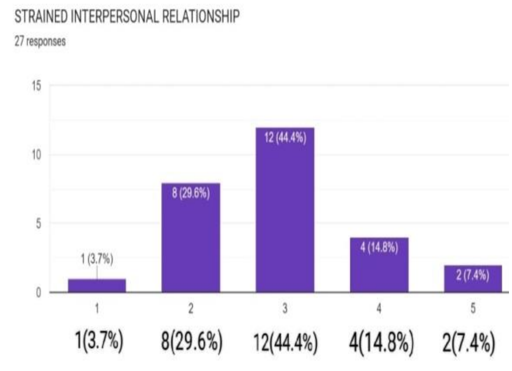

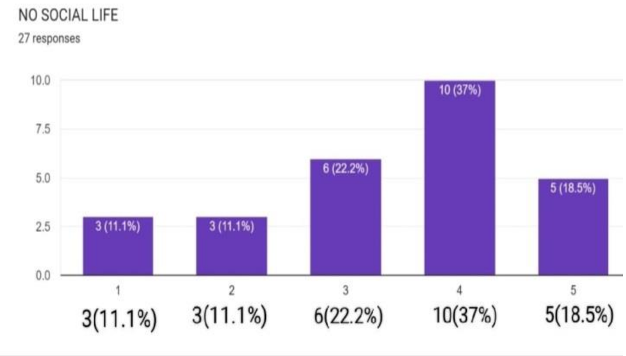

FIG NO.17 Twelve people (44.4%), most respondents are neutral about it.

FIG NO.18 Ten people (37%), most respondents do agree about

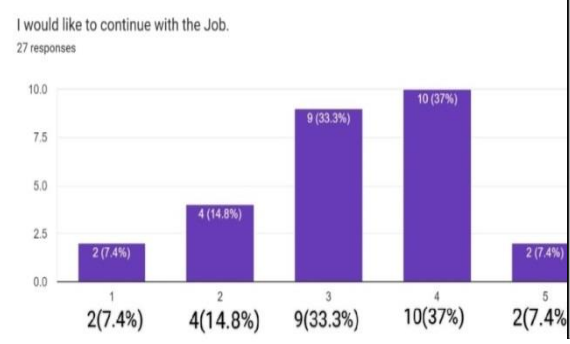

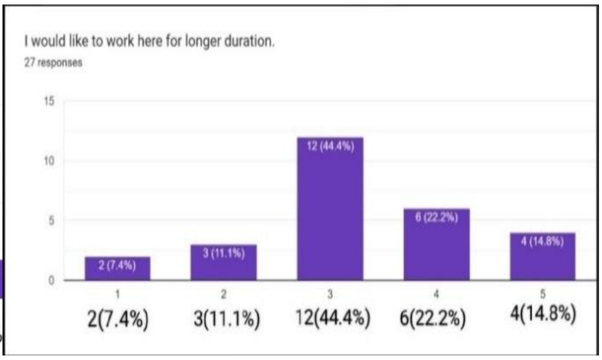

FIG NO. 19 Ten people (37%), most respondents do agree about it.

FIG NO. 20 Twelve people (44.4%), most respondents are neutral about working at their current workplace for a longer

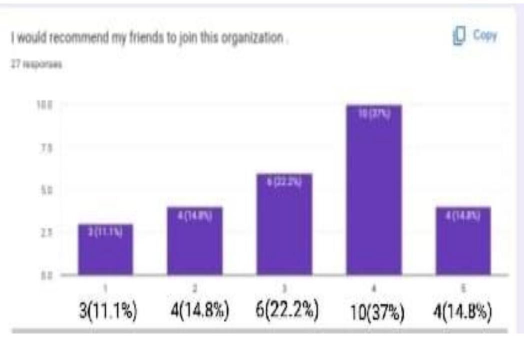

FIG NO 21Ten people (37%), most respondents do agree about it.

FIG NO. 22 Eight people (29.6%), most respondents are neutral about it.

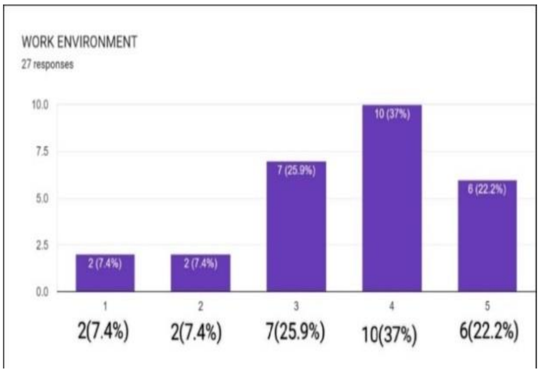

FIG NO. 23 Ten people (37%), most respondents do agree about it.

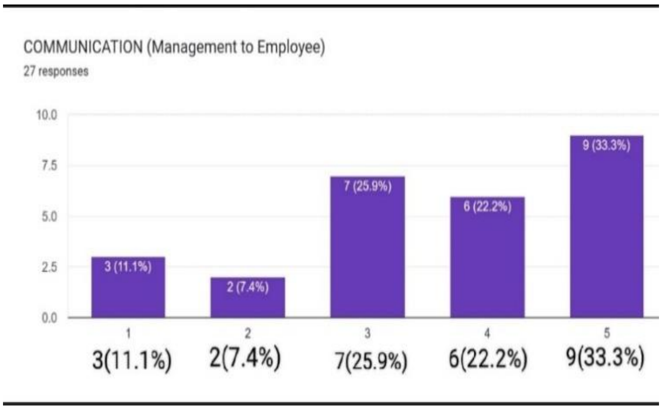

FIG NO. 24 Nine people (33.3%), most respondents do strongly agree about communication that it is an important part between management and employee.

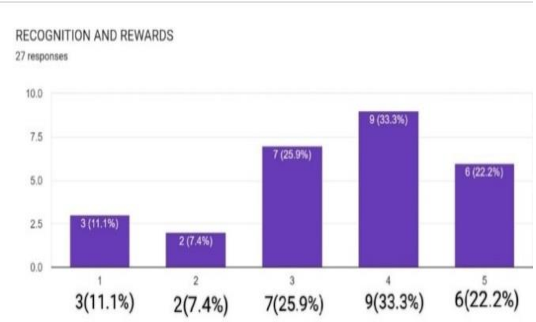

FIG NO.25 Nine people (33.3%), most respondents do agree about it

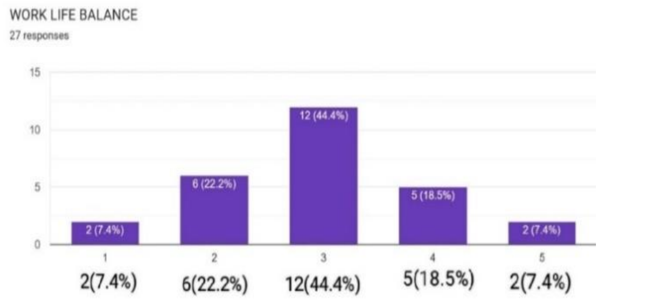

FIG NO.26 Twelve people (44.4%), most respondents have neutral thought about it

NO.27 Ten people (37%), most respondents do agree about it.

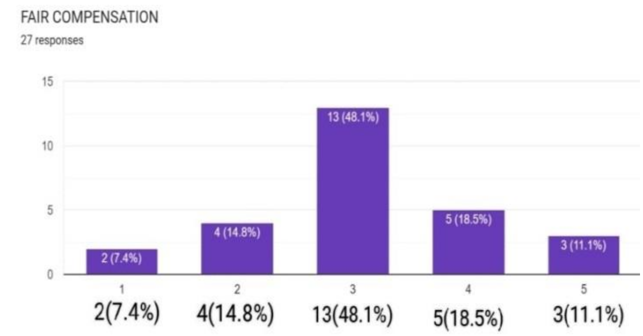

FIG NO. 28 Thirteen people (48.1), most respondents have neutral thought about it.

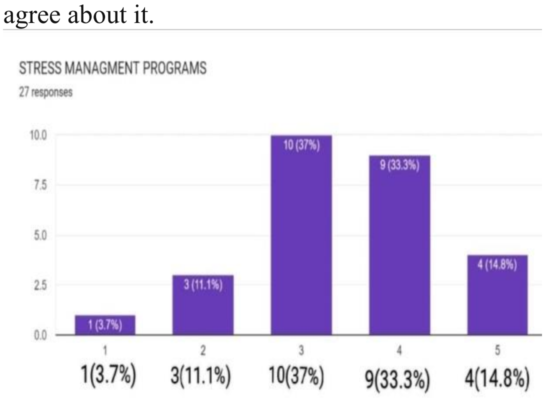

FIG NO. 29 Ten people (37%), most respondents have neutral thought about it.

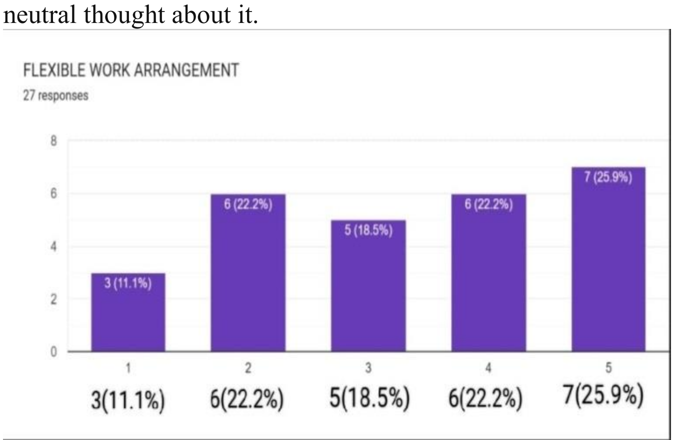

FIG NO.30 Seven people (25.9%), most respondents strongly agree about flexible work arrangement.

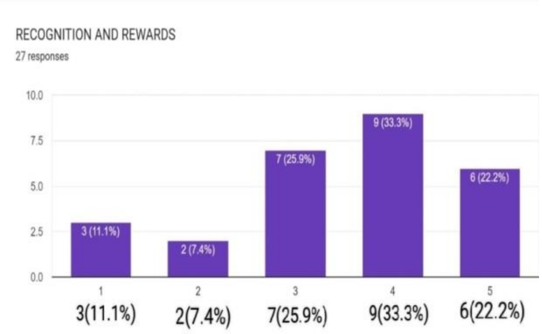

FIG NO. 31 Nine people (33.3%), most respondents do agree about recognition and rewards

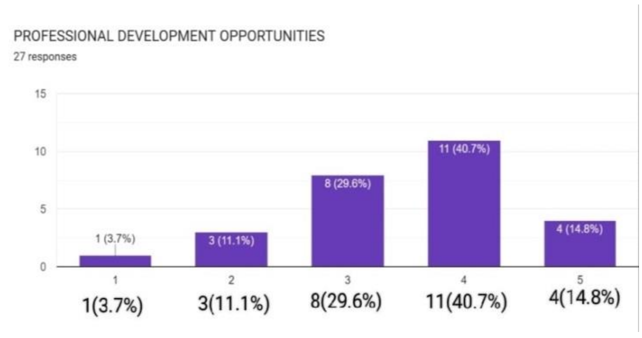

FIG NO. 32 Eleven people (40.7%), most respondents do agree about it.

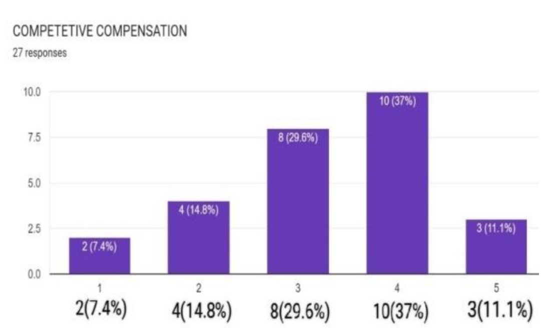

FIG NO. 33 Ten people (37%), most respondents do agree about it

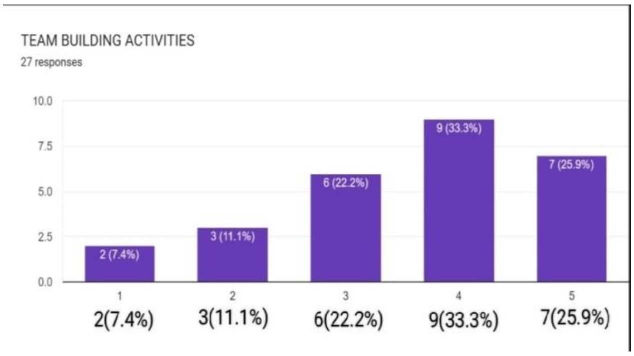

FIG NO. 34 Nine people (33.3%), most respondents do agree about it.

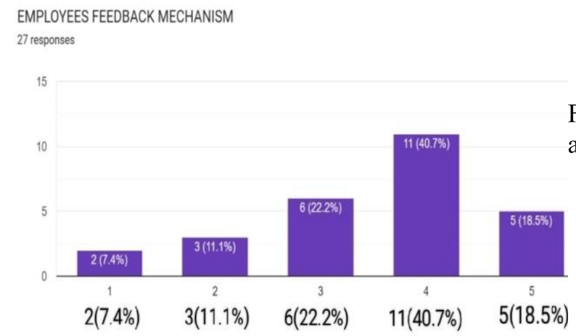

FIG NO. 35 Eleven people (40.7%), most respondents do agree about employee's feedback mechanism

FINDINGS

- Male: 66.7% of the chart. Female: 33.3% of the responses. Most of the participants are male, while the female representation is smaller.
- 88.9% of respondents fall within the 18-24 age group. The remaining 11.1% are aged 25-40; there are no respondents in other age groups. Most participants in this survey are within the 18-24 age range, highlighting a lack of diversity in age among respondents.
- Unmarried: The large blue segment occupies approximately 92.6% of the chart. Married: The smaller orange segment represents around 7.4% of the responses.
- Most respondents have completed high school, while a smaller percentage hold bachelor's or master's degree. Interestingly, there were no participants with a doctorate degree in this sample.
- The most common job title among the participants is **"Associate,"** while other roles are less frequently represented.
- A huge portion of respondents experience long working hours, as indicated by the higher ratings (4 or 5). Many people in the survey face extended working periods.

- It seems that the number of people in the survey face job insecurity.
- Moderate levels of interpersonal conflicts are prevalent, while severe conflicts are rare.
- A moderate to elevated level of lack of control over work is prevalent among the group surveyed.
- The moderate to high perception of low salary is prevalent among the group surveyed.
- Most respondents (11 out of 27, which is approximately **40.7%**) choose **category 3**. This suggests that a massive portion of the survey participants perceive some degree of partiality.
- Most respondents fall into categories three and four, suggesting that a huge portion of the surveyed group experiences some degree of decreased morale.
- A significant portion of the group surveyed experiences notable declines in concentration and focus. This information could be relevant for discussions on mental health, productivity, or strategies to improve focus.
- The group surveyed experiences notable physical health issues at a moderate to severe level.
- The largest group of respondents (33.3%) rated their job satisfaction as 3 or 4 out of 5, indicating mixed feelings.
- The largest group of respondents (44.4%) falls into **Category 3**, indicating a **common level or type of strain** experienced by respondents
- A bar graph representing people's responses to a survey on having no social life, highlighting that the majority feel strongly represented by **category 4.**

SUGGESTIONS

Occupational stress, job satisfaction, and loyalty are crucial factors in the hospitality industry, which relies heavily on the performance and well-being of its staff to deliver quality service. Here are some suggestions to address these aspects:

1. Reduce Occupational Stress:
    - Implement stress management programs: Offer workshops, training sessions, or access to resources aimed at teaching employees stress management techniques such as mindfulness, relaxation exercises, or time management skills
    - Provide adequate staffing levels: Ensure that staffing levels are sufficient to handle the workload, preventing employees from becoming overwhelmed and stressed due to excessive work demands
    - Foster a supportive work environment: Encourage open communication, provide opportunities for feedback, and promote a culture of collaboration and support among colleagues and management
    - Offer flexibility: Allow for flexible scheduling or remote work options where feasible, enabling employees to better balance work and personal responsibilities.
2. Enhance Job Satisfaction:
    - Recognize and reward achievements: Implement an employee recognition program to acknowledge outstanding performance, efforts, and contributions. This can include verbal praise, awards, or tangible rewards such as bonuses or additional time off.
    - Provide opportunities for career development: Offer training programs, mentorship opportunities, or tuition assistance to help employees develop their skills and advance in their careers within the organization.
    - Ensure fair compensation and benefits: Conduct regular salary reviews to ensure that employees are fairly compensated for their work. Additionally, provide competitive benefits packages that address employees' needs and priorities.
    - Foster a positive work culture: Promote a positive and inclusive work environment where employees feel valued, respected, and empowered to voice their opinions and ideas.
3. Promote Staff Loyalty:

- Invest in employee well-being: Demonstrate a commitment to employee well-being by offering wellness programs, employee assistance programs, or access to mental health resources.
- Provide opportunities for advancement: Create clear pathways for career progression within the organization, offering promotions or lateral moves based on employees' skills, performance, and aspirations.
- Encourage employee engagement: Involve employees in decision-making processes, seek their input on matters affecting their work, and provide opportunities for them to contribute to the organization's success.
- Build strong relationships: Foster strong relationships between employees and management, and among colleagues, through regular communication, team-building activities, and social interaction opportunities.

By addressing occupational stress, enhancing job satisfaction, and promoting staff loyalty, hospitality organizations can create a positive work environment that fosters employee well-being, engagement, and retention, leading to improved performance and customer satisfaction.

Conclusion :- The hotel industry faces significant challenges related to occupational stress, job satisfaction, and employee loyalty. Occupational stressors such as long hours, demanding guests, and high-pressure environments contribute to employee dissatisfaction and burnout. However, addressing these stressors through effective management strategies, training programs, and employee support systems can enhance job satisfaction and foster greater loyalty among hotel staff. Investing in employee well-being, providing opportunities for skill development, and creating a positive work environment are crucial steps for improving job satisfaction and reducing turnover in the hotel industry. Additionally, recognizing and rewarding employee contributions, promoting work-life balance, and fostering a culture of open communication can further enhance employee loyalty.

By prioritizing the mental and emotional health of employees and implementing strategies to improve job satisfaction, hotels can create a more supportive and productive workplace environment, leading to greater employee loyalty and enhancing the overall success of the organization.

References :-

1. Aalochan Drishti, A Study on The Initiatives Undertaken by Human Resources Department to Reduce the Stress Level of Employees with Reference to Taj Skyline Ahmedabad Year -8, Vol.- 31 (January-March 2023), ISSN: 2455-4219
2. Cooper, C.L., Dewe, P.J. and O'Driscoll, M.P. (2001). Organizational Stress: a review and critique of theory, research, and applications. Thousand Oaks: Sage.
3. Dewe, P.J., O'Driscoll, M.P. and Cooper, C.L. (2012). Theories of Psychological Stress at Work. In Gatchel, R.J., Schultz, I.Z. (eds.), 'Handbook of Occupational Health and Wellness'. (pp.23-38). New York: Springer Science.
4. Kuong, M.N. and Tien, B.D. (2013). Factors influencing employee loyalty directly and indirectly through job satisfaction – A study of banking sector in Ho Chi Minh City. International Journal of Current Research and Academic Review, Vol. 1, N. 4, pp.81-95.
5. O'Neill, J.W. and Davis, K.D. (2011): Work Stress and Well-being in the Hotel Industry. International Journal of Hospitality Management, Vol. 30, ISS. 2, pp. 385-390.

Webliography

- [American Psychological Association (APA) - Stress in the Workplace] (https://www.apa.org/topics/stress/workplace)
- [Deloitte -Building Employee Loyalty] (https://www2.deloitte.com/global/en/pages/about-deloitte/articles/employee-loyalty.html
- [Gallup - Employee Engagement and Job Satisfaction] (https://www.gallup.com/workplace/232190/why-job-satisfaction-low-turnover-increasing.aspx
- [Harvard Business Review (HBR) - Building Customer Loyalty] (https://hbr.org/2019/07/the-customer-love-equation)
- [Hospitality Net - News and Resources for the Hospitality Industry] (https://www.hospitalitynet.org/)
- [Occupational Safety and Health Administration (OSHA) - Stress at Work] (https://www.osha.gov/stress)
- [Society for Human Resource Management (SHRM) - Job Satisfaction] (https://www.shrm.org/hr-today/trends-and-forecasting/research-and-surveys/pages/job-satisfaction-and-engagement-report.aspx)

'कबीर की विरासत'पुस्तक की समीक्षा

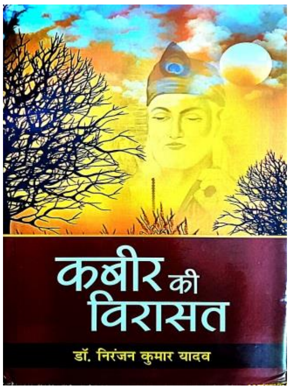

डॉ. सुनील कुमार मानस

कबीर की विरासत' डॉ. निरंजन कुमार यादव की एक महत्वपूर्ण आलोचनात्मक पुस्तक है। यह पुस्तक रचनाकार पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली से 2022 में प्रकाशित हुई है। डॉ. यादव एक बेहद संजीदा किस्म के इंसान हैं और मानवीय चिंतन के सजग व्यक्तित्व के रूप में जाने जाते हैं। अध्ययन और अध्यापन, दोनों क्षेत्रों में उन्होंने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। पिछले लगभग एक दशक से प्राध्यापन कार्य कर रहे हैं और इस दौरान उन्होंने कई महत्वपूर्ण कार्यक्रम आयोजित किए और करवाए हैं। अपने मित्रों के बीच वे हमेशा से एक मिलनसार और सहयोगी व्यक्तित्व के रूप में जाने जाते हैं।डॉ. यादव की यह पुस्तक समकालीन सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में कबीर के साहित्य और उनके विचारों को विश्लेषित करती है। यह पुस्तक न केवल कबीर की रचनात्मकता का गहन अध्ययन प्रस्तुत करती है, बल्कि उनके दार्शनिक और नैतिक दृष्टिकोण को आज के समय में समाधान के रूप में प्रस्तुत करती है। लेखक ने अपनी गहन शोध दृष्टि और मानवीय चिंतन के माध्यम से कबीर के विचारों की गहराई और उनकी सामाजिक प्रासंगिकता को सरल और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है।

पुस्तक का पहला अध्याय "मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कछु है सो तेरा" कबीर के अद्वैतवादी दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करता है। लेखक ने कबीर की आध्यात्मिकता को उनके जीवन दर्शन से जोड़ते हुए यह स्पष्ट किया है कि उनके विचार व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर समग्रता में समाज के कल्याण की प्रेरणा देते हैं। कबीर का यह विचार कि मनुष्य को अपनी अहंकार प्रवृत्ति छोड़कर ईश्वर और समाज के प्रति समर्पित होना चाहिए, आज के स्वार्थी और विघटनकारी माहौल में बेहद प्रासंगिक प्रतीत होता है। दूसरा अध्याय, "जल में कुंभ कुंभ में जल," सह–अस्तित्व और सामाजिक समरसता पर केंद्रित है। लेखक ने कबीर की रचनाओं में निहित इस विचार को स्पष्ट किया है कि समाज के सभी अंग आपस में जुड़े हुए हैं और इनका सह–अस्तित्व ही वास्तविक विकास की कुंजी है। कबीर के इस दर्शन का उल्लेख करते हुए लेखक ने वर्तमान समय में समाज में बढ़ते भेदभाव, अलगाव और विघटन को रोकने के लिए इसे आवश्यक बताया है। "कबीरा आप ठगाइए और न ठगिए कोय" नामक अध्याय में कबीर की नैतिकता का विश्लेषण किया गया है। लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि कबीर के नैतिक आदर्श एक सरल, निष्कपट और ईमानदार जीवन की ओर प्रेरित करते हैं। इस अध्याय में यह तर्क दिया गया है कि कबीर का यह नैतिक दृष्टिकोण वर्तमान समय में नैतिकता के ह्रास को रोकने और समाज में ईमानदारी और पारदर्शिता स्थापित करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।"हम तौ एक एक करि जाना" अध्याय में कबीर की आत्मीयता और उनकी मानवतावादी दृष्टि को रेखांकित किया गया है। लेखक ने कबीर की कविताओं में निहित मानवीय संवेदनाओं को गहराई से समझने का प्रयास किया है। कबीर का यह दृष्टिकोण कि हर व्यक्ति में समानता और प्रेम निहित है, आज के सामाजिक भेदभाव और वर्ग–संघर्ष को समाप्त करने का मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है। पुस्तक का पांचवां अध्याय "बोलना का कहिए रे भाई" कबीर साहित्य के अध्ययन की परंपरा पर केंद्रित है। लेखक ने इस अध्याय में कबीर के साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट किया है कि कबीर के विचार समय के साथ कैसे व्याख्यायित और प्रासंगिक बनाए गए। यह अध्याय साहित्यिक अनुशीलन के माध्यम से कबीर के महत्व को समझने का प्रयास है। "हम न मरिहै मरिहै संसारा" अध्याय में आधुनिक रचनाशीलता में कबीर की प्रासंगिकता पर चर्चा की गई है। लेखक ने कबीर के साहित्य में निहित विचारों को वर्तमान साहित्य और सामाजिक संरचना के लिए प्रेरणास्रोत के रूप में प्रस्तुत किया है। यह अध्याय विशेष रूप से इस बात पर बल देता है कि कबीर के विचार आज के समय में सृजनात्मकता और सामाजिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। पुस्तक के अंत में परिशिष्ट में गोरखनाथ के व्यक्तित्व और उनके विचारों पर चर्चा की गई है। लेखक ने गोरखनाथ और कबीर के विचारों में संवाद स्थापित करने का प्रयास करते हुए यह दिखाया है कि दोनों संतों के दर्शन में भारतीय समाज की गहरी समस्याओं के समाधान की संभावना निहित है।

कबीर की विरासत एक महत्वपूर्ण पुस्तक है, जो कबीर की विचारधारा और उनकी रचनाओं को एक नई दृष्टि से प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक कबीर की काव्यात्मकता और उनके दार्शनिक विचारों को आज के जटिल सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में प्रासंगिक बनाने का प्रयास करती है। लेखक ने गहन अध्ययन और सटीक विश्लेषण के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि कबीर का समतामूलक दृष्टिकोण, सह–अस्तित्व की भावना और नैतिकता का आग्रह आज भी समाज को एकजुट करने और प्रगति की दिशा में ले जाने में सहायक हो सकता है। समग्र रूप से, यह पुस्तक न केवल कबीर को समझने का एक माध्यम है, बल्कि उनके विचारों के माध्यम से समाज में सकारात्मक बदलाव लाने का एक प्रयास भी है।

सुप्रसिद्ध गीतकार माहेश्वर तिवारी को भावभीनी-श्रृद्धांजलि

जन्म :- 22 जुलाई 1939, बस्ती (उ. प्र.) निधन :- 16 अप्रैल 2024, मुरादाबाद (उ. प्र.)

माहेश्वर जी का निधन- एक बड़े गीतकार से हमेशा के लिए- जुदा हो जाना है।... आपसे 3-4 बार मुलाकात का अवसर भी प्राप्त हुआ था, कुछ महत्वपूर्ण विचारों पर आपसे चर्चाएँ भी हुई थीं, लेकिन जितना आपसे जानना और सीखना चाहता था, उसका दशांश भी पूरा नहीं हो पाया। जितनी गहरी और विस्तृत बातचीत आपसे होनी चाहिए थी, उतनी संभव नहीं हो पाई।... इसके बावजूद आपसे बहुत कुछ सीखा और बहुत कुछ जाना, खासकर आपके गीतों को सुनकर। आपकी गायन-शैली की अभिव्यक्ति में- अर्थ-भरे-शब्दों की संवेदनात्मक और भावात्मक गहराई होती है। मैं आज भी आपके गीतों से प्रेरणा लेता हूँ।...

जो लोग गीत लेखन या प्रस्तुतिकरण में रुचि रखते हैं, उन्हें तिवारी जी के वीडियो अवश्य देखने चाहिए। उनके गीतों में सुर, लय, तुक, ताल, गति, यति का अद्वितीय समन्वय मिलता है, जो जन-जीवन की रागात्मक- भावनाओं और मानवीय संवेदनाओं के साथ घुल-मिल जाती है। आपकी यह गहरी भावनात्मक अनुभूति- श्रोताओं को अभिभूत कर देती है। ऐसा रागात्मक और भावनात्मक संतुलन अब दुर्लभ है, वह अन्य गीतकारों के यहाँ नहीं मिलता।...

आपकी आत्मीयता एवं सहृदयता- को कभी भुलाया नहीं जा सकता। आपके देवलोक-गमन के बाद आपके विषय में कुछ कह पाने के लिए शब्द नहीं मिल पा रहे हैं।... सिर्फ जो मेरे अंतर के भाव हैं, जो आपके प्रति आदर और श्रद्धा है, बस वही मेरी आपके प्रति श्रृद्धांजलि है। साथ ही, मैं ईश्वर से...

- डॉ. सुनील कुमार मानस

आलोचन दृष्टि,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद-फतेहपुर, उ0प्र0-212635
ई-मेल : aalochan.p@gmail.com
वेबसाइट : **https://aalochandrishti.org/**

Website QR Code